The Opinion V.13, N. 26 J-D 2024 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.0(IIFS)

मार्कण्डेय की कहानियों में स्त्री–पुरूष समानता

अवनीश राय,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज आजमगढ़।

सारांश

नारी परिवार और समाज की रीढ़ होती है। इस कारण भी उसकी स्थिति सामाजिक संरचना के अन्तर्गत श्रेष्ठ मानी जानी चाहिए, किन्तु वास्तविकता ठीक इसके उलट है। सदियों से भारतीय समाज में नारी की स्थिति दयनीय रही है। धर्म, परम्परा, नीति–विधान की आड़ में उसकी स्वतन्त्रता, समाज में पुरूष से उसकी समानता के मुद्दे को बार–बार दबाने का प्रयास होता रहा है। परिणाम स्वरूप भारतीय समाज में नारी अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त रही है। एक ओर पुरूषों को स्वच्छंद जीवन भोगने के लिए अनेक सामाजिक सुविधाएँ उपलब्ध रहीं, दूसरी तरफ नारी घर में बंद, पुरूषों के हाथों की कठपुतली बना दी गई। प्राचीन धर्मशास्त्रों ने तो आजीवन पुरूषाधीन कर नारी–जीवन को अभिशापित–सा बना दिया। समाज तथा परिवार में नारी को पुरूषों की तुलना में हेय समझकर उन्हें समानाधिकारों से वंचित रखा गया। जिसका कहने का अभिप्राय यह है कि सामाजिक संरचना में स्त्री सदा हीन समझी जाने के कारण शोषित होती रही है।

शब्द कुंजीः– स्त्री–पुरूष, मध्यम वर्गीय, प्राचीन, जीवन, सम्पूर्णता, धर्मशास्त्रों, प्रमाण स्वरूप।

प्रस्तावनाः–

सामाजिक संरचना में आर्थिक–सामाजिक विषमता से ग्रस्त स्त्री की अवस्था ज्यादा दयनीय है, क्योंकि स्त्री हर वर्ग में पुरूषों द्वारा शोषित होती आई है। डॉ0 शुषमा प्रियदर्शिनी के निम्न मंतव्य को उक्त संदर्भ में पढ़ा जा सकता है–सामाजिक विषमता का मूल आधार है आर्थिक विषमता। इस विषमता का शिकार मुख्यतया निम्न–मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग हो रहा है किन्तु नारियाँ तो सभी वर्गों की शोषित है।[1] जिससे यह समझता जा सकता है कि स्त्री हर वर्ग के द्वारा प्रतीड़ित होती है। मध्यम वर्गीय स्त्री का पति जो मानसिकता रखते हैं, वह दोहरा मानदण्ड ही है। इस वर्ग के पुरूष का स्त्री के प्रति रखे जाने वाले नजरिये के माध्यम से भी मध्यमवर्गीय संस्कार की उन कमजोरियों से अवगत हुआ जा सकता है, जो उसे सामाजिक जीवन के संघर्ष और परिवर्तन के मध्य आने से सशंकित हुए रहती है। यहाँ इस सन्दर्भ में, मार्कण्डेय की कहानियों का प्रमाणस्वरूप जिक्र किया जा सकता है।

यहाँ सर्वप्रथम मार्कण्डेय की कहानी मिस शांता का उल्लेख स्वाभाविक लगता है। आलोच्य कहानी में स्त्री के प्रति मध्यमवर्गीय संस्कार–बोध का वह चेहरा उभर कर आता है, जो कहीं परम्परागत दिखता है तो कहीं दोहरे मानदण्ड को प्रतीकित करता हुआ। प्रस्तुत कहानी की मिस शांता मध्यम वर्ग की एक शिक्षित आत्मनिर्भर एवं आजाद खयाल की नारी हैं। जिसे परम्परागत संस्कारों से ग्रस्त मध्यमवर्गीय पुरूष (बरोरा) एकबारगी स्वीकार नहीं कर पाता है। वह मिस शांता के स्वतंत्र और अकेले रहने की स्थिति को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाता है, क्योंकि वह स्त्री को उस परम्परागत रूप में देखता है जो स्त्री को घर की चहारदीवारी की शोभा समझता है। वह इसी कारण मिस शांता के बारे में जो धारणा बनाता है, वह वस्तुस्थिति का उचित संज्ञान लिए हुए नहीं होती है, बल्कि उसकी अपनी कल्पना द्वारा गढ़ी हुई होती है। दिलचस्प बात तो यह होती है कि वह अपनी काल्पनिक धारणा को दूसरों के समक्ष एक गहरे सच के रूप में जाहिर करता है–'यही यार! कि उसे अनेकों से सम्पर्क रखने में कोई संकोच नहीं। वह आदी है। उसके

जीवन का पहला विकास ही यही था।''—'अपने अठारहवें वर्ष में यह एक ऐसे लड़के के चक्कर में फँस गयी, जिसके लिए यह और उसका एक मित्र एक जैसे ही थे[2]। जिससे यह समझा जा सकता है कि मध्यमवर्गीय व्यक्ति स्त्री की जो छवि प्रस्तुत करता है, उससे यही संकेतित—ध्वनित होता है कि मिस शांता, ऐसी स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके जीवन में घर, परिवार, पुरूष और समाज के प्रति कोई एकनिष्ठता की भावना नहीं होती है।

कहानी से पूरी तरह गुजरने के उपरान्त देखा जाता है कि वस्तुस्थिति कुछ और ही है। मिस शांता कहानी 'मैं' के परिवार के प्रति जो सद्भावना, समर्पण और त्याग प्रदर्शित करती है वह उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व और आजाद ख्याल वाली स्त्री—छवि को सम्पूर्णता प्रदान करती है।—''एक दिन सुबह मैं सोकर उठा ही था कि बाहर बरामदें में शांता और खंजन की फुसफुसाहट सुन पड़ी... मैं बिस्तर से उठ खड़ा हुआ और धीरे—धीरे चौक की ओर गया, तो शांता दूध का गिलास और अण्डे लेकर पत्नी की ओर देने जा रही थी।''[3] यहाँ देखा जाए तो मार्कण्डेय की यथार्थ—दृष्टि बरेरो जैसे पात्र के माध्यम से मध्यमवर्गीय पुरूष की दकियानूसी सोच से ग्रस्त उस निगाह को दर्शाती है, जो नारी की स्वाधीन और आत्मनिर्भर छवि को सहजता से स्वीकार करने में असमर्थ दिखाती है। पर, यही पुरूष उसके साथ घूमना चाहता है, मौज—मस्ती करना चाहता है, उसकी खुली देह को भोगना चाहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मध्यमवर्गीय जीवन—बोध में समायी पितृसत्तात्मक सोच के कारण नारी शोधित—पीड़ित—लांछित होती है। यही सोच मध्यमवर्गीय जीवन को प्रतिगामी बनाती है, वस्तुस्थिति से दूर ले जाती है। उल्लेखनीय है कि मध्यमवर्गीय व्यक्ति (पुरूष) नारी को उसकी सम्पूर्णता समझने का दावा बराबर करता है पर हकीकत में समझ नहीं पाता है। उसका बौद्धिक कोरापन नारी की सतही व्याख्या ही करके थम जाता है। मार्कण्डेय मध्यमवर्गीय जीवन के उक्त बोध को उस कला प्रेमी लेखक—व्यक्तित्व के माध्यम से दिखलाने की कोशिश करते हैं, जो नारी से सम्बन्धित जीवन को सम्पूर्णता में चित्रित करने का दावा करता है। पर हकीकत में, वह उसकी भावनाओं को समझ नहीं पाता है।

मार्कण्डेय की एक दिन की डायरी कहानी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। आलोच्य कहानी में लेखक (पात्र) शील नामक एक स्त्री से परिचित रहता है, वह भी उससे परिचित—प्रभावित रहती है। शील के मन में उसके प्रति प्रेम—भाव रहता है जिसे लेखक नहीं समझ पाता है और शील संकोचवश कह नहीं पाती है। एक दिन, शील लेखक को अपने घर अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु बुलाती है, पर लेखक नहीं आता है। उसी दिन से शील की जिंदगी दूसरी ओर मुड़ जाती है। उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हो जाता है जिसके साथ वह खुश नहीं रह पाती है, क्योंकि वह अपने हृदय में लेखक के प्रेम को बसाए रखती है। उसके अत्यंत गम्भीर और मौन रहने के स्वाभाव का पता उसके पति को उसकी डायरी पढ़ने के बाद होता है। पति उसके प्रेम को जानने के बाद उसे अपने जीवन से परित्यक्त कर देता है और वह समाज में एक परित्यक्ता बन कर रह जाती है। यहाँ मार्कण्डेय की यथार्थ—दृष्टि यह दिखलाना चाहती है कि समाज में अपनी पहचान एक लेखक के रूप में बनाने वाला मध्यमवर्गीय व्यक्ति, जो अपनी बौद्धिकता के सहारे कोरे कागज पर नारी—जीवन का चित्रण तो कर जाता है पर उसके प्रेम की गहराई को नहीं समझता है। वह शायद समझना नहीं चाहता है, वस्तुस्थिति का सामना करने के बजाय वहाँ से भाग खड़ा होता है।

गौरतलब है कि मध्यमवर्गीय संस्कारों से ग्रस्त पुरूष नारी से प्रेम तो करना चाहता है, छिपछिप कर करता है, पर समाज के समझ उसे स्वीकार करने या उस प्रेम का उत्तरदायित्व लेने से घबराता है। उसके भीतर बैठा कायरता बोध (मध्यमवर्गीय संस्कार) उसे वस्तुस्थिति से पलायन करने को बाध्य करता है। मध्यमवर्गीय संस्कार को प्रतीकित करने वाली यही कारयता बोध, व्यक्ति को सामाजिक जीवन के संघर्ष और परिवर्तन से दूर ले जाता है। यहाँ मार्कण्डेय की एक अन्य कहानी 'माही' का भी जिक्र किया जा

सकता है जिसमें मध्यमवर्गीय संस्कार के रूप में व्यक्ति की कायरता बोध स्पष्ट रूप से उद्घाटित होता है। आलोच्य कहानी में माही नाम की एक लड़की अपने प्रेमी प्रीतिश को समर्पण की हद तक चाहती है, पर प्रीतिश उसके प्रेम को जानते–समझते हुए भी उससे उदासीन बना रहता हैं और एक दिन, वह एक गैर जिम्मेदार व्यक्ति की भाँति अपने प्रेम का उत्तरदायित्व निर्वाह करने से घबराकर भाग जाता है। वह एक पत्र के जरिए इसकी सूचना देता है–'इसलिए अब कभी नहीं लिखूँगा, मेरी अंतरंग! तुम्हे कष्ट देना मुझे जरा भी प्रिय नहीं। मुझे न लिखना, पत्र नहीं मिलेंगे। मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ और यह भी तय नहीं कि कब तक लौटूँगा।...अलविदा![4] जिससे यह समझा जा सकता है कि मध्यमवर्गीय संस्कार से ग्रस्त पुरूष चुनौतियों का सामना करने से घबराता है। उसका कायरता–बोध उसे प्रभावित–परिचालिक करता है। इस कहानी में मध्यमवर्गीय सरकार के उक्त सच को मार्कण्डेय प्रीतिश की निम्न स्वीकारोक्ति के माध्यम से कुछ इस प्रकार दर्शाते हैं– मैं जानता हूँ कि अब हमारा प्यार एक ऐसी सच्चाई बन गया है, जो हमारे झुठलाने की सीमाओं से पार हो गया है। अब कोई बड़ी–से–बड़ी बाधा भी हमारे मन को मोड़ पाने में असमर्थ हैं फिर भी मैं अशक्त और बेचैन हो उठा हूँ वैसे तुम्हारा प्यार मेरे जीवन का सहारा बना हुआ है, पर उस सहारे में कमजोरियों के ऐसे भयानक कीटाणु छिपे हैं, जो मेरे मन को निरन्तर कटु बनाते जा रहे हैं, मैं खूब समझता हूँ, पर उससे मुक्त हो पाना मेरे अपने बूते के बाहर की चीज है।[5]

इस प्रकार मार्कण्डेय की कहानियाँ मध्यम वर्गीय जीवन में स्त्री के प्रति पुरूषों की सोच के माध्यम से मध्यमवर्गीय उन संस्कारों को दर्शाने की चेष्ट करती हैं, जो मध्यमवर्गीय व्यक्ति को सच्चाई का सामना करने के बजाय उससे दूर ले जाता है। उसका स्त्री के प्रति होने वाला दोहरा मापदण्ड उसे बरेरा (कहानी के पात्र) की भाँति जीवन में दिशाहीन बनाता है तो उसका बौद्धिक कोरापन उसे वस्तुस्थिति को समझने में असमर्थ सिद्ध करता है, तो कहीं, उसके भीतर का कायरता–बोध उसे सामाजिक चुनौतियों और प्रश्नों से दूर ले जाता है। सार रूप में कहा जाए तो मार्कण्डेय की कहानियाँ मध्यमवर्गीय संस्कारों के जरिए स्वातंत्र्योत्तर मध्यमवर्गीय जीवन बोध और यथार्थ को रेखांकित करती है।

स्वतंत्रता उपरान्त औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में, जो तीव्र शहरीकरण होता है, वहाँ द्रुत परिवर्तन देखा जाता है। इसी शहरीकरण की प्रक्रिया में, जो आधुनिकीकरण होता है, वहाँ 'स्व' तथा 'अर्थ' तत्व की प्रधानता हो जाती है। 'स्व' तथा 'अर्थ' तत्व की जीवन में प्रधानता सम्बन्धों, मूल्यों और नैतिकताओं को लेकर एक नई बहस को जन्म देती है। जिसका नतीजा इस रूप में होता है कि परिवार और समाज की संरचना में एक विघटन की प्रक्रिया स्वाभाविक हो जाती है। एक ओर सदियों से चला आया पारम्परिक पारिवारिक ढाँचा (संयुक्त परिवार का) बिखरकर पति–पत्नी तक सीमित होने लगता है, तो दूसरी ओर, पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्ध में तनाव की सृष्टि होती है, जो वैवाहिक जीवन को एक विडम्बना का रूप देती है। इसका प्रमुख कारण पति–पत्नी का अपने–अपने 'स्व' को लेकर अति–सजगता होती है। व्यक्ति स्वातंत्र्य के इस जमाने में हर स्त्री–पुरूष अपने–अपने अस्तित्व के प्रति अतिरिक्त सजग हैं, अस्तित्व को आत्मसात करने वाली स्थिति से पुरूष किसी भी शर्त पर समझौता नहीं कर पाता है।[6] यहीं नहीं, स्वातंत्र्योत्तर नगरीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, उनक जुड़े कानूनी अधिकार, तथा उनका आर्थिक स्वावलम्बन आदि उन्हें वह सम्बल प्रदान करता है जो उन्हें उनसे जुड़े सम्बन्धों, परम्पराओं, आस्थाओं और संस्थाओं को नये सिरे से देखने–सोचने की ओर प्रवृत्त करता है। जिसका स्पष्ट प्रभाव स्त्री–पुरूष के दाम्पत्य सम्बन्ध पर पड़ता है।

स्वातंत्र्योत्तर नगर और कस्बे के जीवन को उज्जीवित करने वाले कहानीकार–चिंतक कमलेश्वर उक्त दाम्पत्य सम्बन्ध को बड़ी नजदीकी से देखते हैं। उनका इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहना होता है–'पति और पत्नी के बीच सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन हुआ है नारी अब कानूनी तरीके से भी ज्यादा सुरक्षित है

और आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त करती जा रही है। इन दोनों कारणों से पति–पत्नी सम्बन्धों को ज्यादा बदला है, जिससे विवाह की परम्परागत संस्था के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया है।[7] जिससे यह समझ में आता है कि स्वातंत्र्योत्तर मध्यमवर्गीय जीवन में स्त्री–पुरूष के पारस्परिक दाम्पत्य सम्बन्धों में एक बदलाव या एक तनाव की स्थिति जन्म लेती है। नारी–पुरूष दोनो, अब अपने व्यक्तित्व के अनुरूप अपने तरीके से जीने और जीवन में अपने अस्तित्व को लेकर सजग हो आगे बढ़ने हेतु तत्पर हो उठते हैं। जिसका परिणाम प्रायः वैवाहिक जीवन की बिडम्बना होता है। श्री रामचन्द्र माली उक्त संदर्भ को कुछ इस प्रकार स्पष्ट करते हैं पति–पत्नी के सम्बन्ध काँच के बर्तन के समान हो गए हैं, जो पुराने होने के बाद मैंले तथा दरारों से युक्त हैं। समाज में आज पति–पत्नी के सम्बन्ध औपचारिकताओं से मुक्त होकर तनावग्रस्त बन गये हैं। दोनो समझौता करना नहीं चाहते।[8] जिसके कहने का अभिप्राय यह है कि स्वातंत्र्योत्तर मध्यमवर्गीय जीवन के दाम्पत्य सम्बन्ध पूर्ववत नहीं रहते हैं। उनमें आया तनाव–बदलाव नई स्थितियों की ओर संकेत करता है।

उल्लेखनीय है कि मार्कण्डेय की कहानियाँ मध्यमवर्गीय दाम्पत्य सम्बन्धों के उक्त पक्ष को उज्जीवित करने का प्रयास करती है, साथ ही साथ यह संकेत भी करती है कि स्वातंत्र्योत्तर उभरा और विकसित मध्यम वर्ग कहीं–न–कहीं कछुए की भाँति अपनी ही व्यक्तिगत सीमाओं के खोल से अपने को कैद कर लेता है। यहाँ प्रमाण स्वरूप मार्कण्डेय की कहानियों का जिक्र और विश्लेषण किया जा सकता है। इस संदर्भ में उनकी 'दूध और दवा कहानी' का उल्लेख स्वाभाविक लगता है। इस कहानी में एक मध्यमवर्गीय लेखक के परिवार की अभावपूर्ण जीवन स्थितियों को भली–भाँति दर्शाने का प्रयास होता है। प्रस्तुत कहानी में परिवार के भीतर व्याप्त अर्थाभाव सम्बन्धों को जटिल मोड़ पर पहुँचा देता है। जहाँ दाम्पत्य सम्बन्धों में एक प्रकार की उदासीनता की स्थिति निर्मित हो जाती है। इस कहानी का पुरूष अपनी पत्नी से काम सम्बन्धों में अपनी तृप्ति न होते देख, पर स्त्री मुखापेक्षी होता है। उसे ऐसा करते वक्त अपने दाम्पत्य सम्बन्ध के प्रति अपनी निष्ठा या ईमानदारी की तनिक भी परवाह नहीं रहती है।

अर्थात् मध्यमवर्गीय कामातुर पुरूष अपने जीवन में उत्पन्न तनाव और अवसाद से मुक्त होने की प्रेचष्टा में विवाह रूपी सामाजिक संस्था की अवहेलना करता है। जबकि, परिवार के अर्थाभाव में रोज पिसती स्त्री (गृहणी)–'क्या सोच रहे हो? मैंने तो समझा कोई कहानी लिख रहे थे। आज किसी को देकर कुछ रूपये लाते तो अच्छा था। कल दो रूपये का सामान मँगाया था, आज–भर और चलेगा।[9] गृहस्थी को संभालने की जद्दोजहद में अपने जीवन की यौनेच्छा को ही खो देती है। वह अपने दाम्पत्य जीवन के मधुर काम–सम्बन्ध से कुछ इस प्रकार विरक्त हो जाती है–''वह बटन बन्द करते–करते बोलने लगती है, 'अब इसके सुख की कल्पना मेरे पास नहीं है, न ही तुम्हारे मन में है और अगर है, तो नहीं होनी चाहिए.....। मेरे सीने में एक बंद ज्वालामुखी है, जो कभी नहीं भड़केगा, यह मैं जानती हूँ।[10] इससे यह जाहिर होता है कि स्वातंत्र्योत्तर मध्यमवर्गीय दात्पत्य सम्बन्ध में विपरीत परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव दम्पत्ति के वैवाहिक जीवन को एक बिडम्बना के लिए पुरूष कामातुर मन कहीं–न–कहीं जिम्मेवार होता है।

इसी तरह कहीं, एक स्त्री की अति–महात्वाकांक्षा भी दाम्पत्य सम्बन्ध को उसकी विडम्बना की ओर ले जाती है। मार्कण्डेय की 'तारो का गुच्छा' कहानी में मध्यमवर्गीय जीवन के उक्त सच का अवलोकन किया जा सकता है। आलोच्य कहानी में एक ऐसी मध्यमवर्गीय स्त्री की छवि देखने को मिलती है जिसके लिए विवाह रूपी सामाजिक संस्था कोई मायने नहीं रखती है। वह विवाह से पहले ही मातृत्व का सुख प्राप्त करने की अति महात्वाकांक्षा को लिए हुए जीती है–'रोली को अपनी पिछली रात याद आ गयी.... मसीहा की हत्या, प्रार्थना, कुमारी माँ, बच्चा, बच्चों की एक कतार.... उसने बच्चे के माथे को चूम लिया और उसे कंधे से सटा लिया।[11] जिससे यह सिद्ध होता है कि रोली जैसी स्त्रियाँ, अपनी शर्तों पर जीवन जीने

की इच्छुक होती हैं। इसी कारण विवाह–संस्था या उससे जुड़े मूल्य उसके लिए कोई मायने नहीं रखते हैं। वह अपनी मातृत्व की दुर्निवार इच्छा के आगे किसी भी सामाजिक–नैतिक मान्यताओं के पार जाने से नहीं हिचकती है। यहाँ तक कि, किसी दाम्पत्य सम्बन्ध में अनाधिकृत प्रवेश करने में भी वह तनिक नहीं हिचकिचाती है–'उसने कितनी बार सोचा था कि अगर वह मेरे प्रेम को स्वीकार नहीं करेगा, उपेक्षा से मुझे ठुकरा देगा, तो कभी निर्लज्ज हो कर उससे एक बच्चा माँगेगी–गोल–मटोल, प्यारा–प्यारा और वह देर तक लिहाफ के अँधेरे में अपना मातृत्व खोजती रही। एकदम अनोखा मातृत्व, लांछन और समाज की प्रताड़ना के दुख में डूबा हुआ।[12] जिससे यह समझा जा सकता है कि कौमार्य अवस्था में रोली (एक स्त्री) की माँ बनने की तीव्र कामना उसके दिलो–दिमाग पर इस कदर हावी होती है कि वह सब जानते हुए भी एक शादी–शुदा व्यक्ति से सम्बन्ध बनाने हेतु बेचैन रहती है। जबकि दूसरी ओर, पहले से ही विवाहित पुरूष अपने जीवन के तनाव और ऊब से मुक्त होने हेतु भीतर ही भीतर कुंठित रहता है'' – ओह, तुम कितनी असंभव हो मेरे लिए रोली कितनी विचित![13] जो यह जाहिर करता है कि मध्यमवर्गीय जीवन में स्त्री–पुरूष के समक्ष, विवाह–संस्था कितना अर्थहीन हो जाता है। किसी के लिए विवाह जरूरी ही नहीं प्रतीत होता है तो किसी के लिए एक बाधा।

इसी तरह 'तारों का गुच्छा' कहानी की रोली की भाँति एक पत्नी (स्त्री) की माँ बनने की तीव्र इच्छा उसके वैवाहिक जीवन को किस प्रकार असंतुलित कर देती है, उसे मार्कण्डेय की 'पक्षाघात' कहानी में देखा जा सकता है। कहानी के दर्शन और पति–पत्नी होने के बावजूद एक–दूसरे के लिए जैसे अधूरे होते हैं। रीना मातृत्व का सुख प्राप्त करने हतु व्यथित रहती है तो अपनी जिंदगी को अपने तरीके से जीने में व्यस्त। जिसका नतीजा यह होता है कि उनके दाम्पत्य सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न होता है और उनका वैवाहिक जीवन एक ऊबन में परिगत हो जाता है। रीना को जब अपने मातृत्व सुख की इच्छा अपने पति के द्वारा पूरी होते हुए नहीं दिखायी देती है, तो वह सारे सामाजिक मूल्यों और वैवाहिक नैतिकताओं के पार जाने का संकल्प ले लेती है। वह अपने मातृत्व के सुख को पाने की चाहत में अपने पति के मित्र परेश के साथ अनैतिक सम्बन्ध बनाने तथा उसे स्वीकारने में तनिक भी नहीं हिचकती है। उसकी इस स्वीकारोक्ति को निम्न मंतव्य में लक्ष्य किया जा सकता है–'नहीं परेश, अब रहने दो... मुझे कोई डर नहीं परेश! दर्शन बिल्कुल नाराज नहीं होगा। मैं बचपन से यही सोचती हूँ कि माँ बनू और किसी बच्चे के साथ खेलूँ। सिर्फ एक इच्छा को मारते–मारते मैं एकदम मर गयी, लेकिन यह आज तक नहीं मरी।[14] स्पष्ट है कि मध्यमवर्गीय जीवन में स्त्री–पुरूष की अपनी–अपनी सोच और उसके तद्नुरूप जीने की ललक, उनका व्यक्ति स्वातंत्रय तथा एक–दूसरे को बेहतर ढंग से देखने, जानने और समझने हेतु दिए जाने वाले समय का अभाव, न सिर्फ उनके दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव की सृष्टि करता है, बल्कि उसके वैवाहिक जीवन को एक विडम्बना का रूप देता है।

दरअसल मध्यमवर्गीय जीवन की उक्त जीवन शैली उनकी छद्म आधुनिकता वादी सोच का परिणाम होती है, जो उनके व्यक्ति स्वातंत्र्य से प्राबल्य में, उनकी उच्चाकांक्षा में, उनकी तीव्र यौनाकांक्षा में स्पष्ट लक्ष्य की जाती है। यहाँ मार्कण्डेय की एक अन्य कहानी 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए' का जिक्र स्वाभाविक प्रतीत होता है, जिसमें चित्रित ग्रामीण जीवन के संदर्भ में मध्यमवर्गीय जीवन की उन सच्चाईयों से अवगत हुआ जा सकता है, जहाँ जीवन में छद्म आधुनिकता का ओढ़ा हुआ रूप वैवाहिक जीवन की विडम्बना को साफ जाहिर करता है। आलोच्य कहानी में एक स्त्री की उच्चाकांक्षा, उसका व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा पुरूष का उन्मुक्त यौन जीवन जीने की जिद दोनो के जीवन को विडम्बना का रूप देती है।

प्रस्तुत कहानी की रमोला एक आधुनिक शिक्षित स्त्री है। वह एक ऐसे व्यक्ति में अपना प्रेम ढूँढ़ती हैं, जो पहले से शादीशुदा और उसके पिता की अवस्था का होता है। जो यह दर्शाता है कि रमोला जैसी

स्त्रियाँ जान–बूझ कर अपने व्यक्ति स्वातंत्र्य को उपलब्ध करने की फिराक में वह सब–कुछ करने में अपने को सहज महसूस करती है, जो सामाजिक परम्परा और नैतिकता के दायरे से बाहर होता है। यहाँ तक कि यह जानते हुए भी कि जिस रिश्ते का कोई भविष्य नहीं है, वह दूसरी स्त्री के वैवाहिक जीवन में घुसपैठ करती है। यहाँ रमोला का जो तर्क होता है वह कुछ इस प्रकार होता है–'मैं जब–जब पूँछता हूँ वह यही कहती है कि उस नीच प्रोफेसर ने मुझे अनेक प्रलोभन दिये। मुझे पुत्री तक माना.... और एक दिन घर, रीतिकालीन श्रृंगारिक सूक्तियों का अर्थ समझाते–समझाते मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे खींच कर, अपने पास कर लिया। मैं समझती थी वह बुरा नहीं हो सकता..... क्योंकि प्रोफेसर विवाहित था, लेकिन उसका यह व्यवहार बढता गया। उसने धीरे–धीरे मेरे स्त्री–मन को अपनी प्रेम और स्नेह से छलछलाती हुयी मीठी–मीठी बातों से जकड़ लिया...मैं उसके साथ घूमने जाती और देर तक लौटती। फिर, रात तक, उसकी प्रेममय वाणी में उहापोह होकर, उसके बाजुओं में खेलती रही।[15] यहाँ यह समझा जा सकता है कि स्त्री के रूप में रमोला की महत्वाकांक्षा तथा अपने व्यक्ति स्वातंत्र्य को उपलब्ध कराने वाली प्रेमाकांक्षा उसे उस पुरूष की ओर ले जाती है जिसके लिए वैवाहिक जीवन, दाम्पत्य सम्बन्ध या सामाजिक नैतिक मान्यताएँ कोई मायने नहीं रखती हैं। वह तो स्त्री को एक देह मात्र समझता है, जिसे वह सिर्फ भोगना चाहता है। उसके लिए स्त्री एक देह होती है, रमोला भी, जिसे वह अपनी महात्वाकांक्षाओं को पूरा करने हेतु किसी भी के समक्ष परोस देने में नहीं हिचकता है। जैसा कि, उकत महानी में वह रमोला के साथ करना चाहता है। इस प्रकार यहाँ प्रोफेसर के रूप में शिक्षित मध्यमवर्गीय पुरूष की उस उत्कृष्ट यौनाकांक्षा को भी देखा जा सकता है, जो वैवाहिक जीवन को एक विडम्बना के रूप में परिणत कर देती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मार्कण्डेय की कहानियाँ मध्यमवर्गीय जीवन के दाम्पत्य सम्बन्धों को भली–भाँति उकेरने का प्रयास करती है। उनकी कहानियों में दाम्पत्य सम्बन्धों के चटखने तथा वैवाहिक–जीवन को एक विडम्बना में परिणत होते हुए साफ देखा जाता है। उनकी कहानियाँ स्त्री पुरूष के व्यक्ति–स्वातंत्र्य, स्त्री–पुरूष का अपने–अपने तरीके से जीने की तीव्र इच्छा, एक–दूसरे के साथ संवादहीनता, एक–दूसरे के लिए समर्पण करने की त्याग–भावना का अभाव, किसी एक की समझौता न करने की मानसिकता, स्त्री की उच्चाकांक्षा, स्त्री की प्रेमाकांक्षा, पुरूष की उत्कृष्ट यौनेच्छा, स्त्री को देह मात्र समझने की पुरूष मानसिकता आदि को मध्यमवर्गीय दाम्पत्य सम्बन्धों के चटखने–टूटने तथा वैवाहिक जीवन को विडम्बना का रूप लेने के प्रमुख कारणों के रूप में दिखलाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) प्रियदर्शिनी, डॉ0 सुषमा (सम्पादक), हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 59
(2) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–126
(3) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–128
(4) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–343
(5) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–342
(6) उद्धृत, माली, प्रो0 रामचन्द्र, श्रीकान्त वर्मा की कहानियों में यथार्थ बोध, अमन प्रकाशन कानपुर, 1997, पृ. 48
(7) कामलेकर, नयी कहानी की भूमिका, ईशान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1970 पृ. 133
(8) माली, प्रो0 रामचन्द्र, श्रीकान्त वर्मा की कहानियों में यथार्थ बोध, अमन प्रकाशन कानपुर, 1997, पृ. 61

(9) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–300
(10) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–327
(11) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–366
(12) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–361
(13) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–367
(14) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–388
(15) मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ–81

सामाजिक विज्ञान विषयों में मूल्यपरक शिक्षा : एक विश्लेषण

डॉ0 कंचन
एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र
स्वामी करपात्री जी महाराज राजकीय पी0जी0 कालेज
रानीगंज, प्रतापगढ़

सारांश :
मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। व्यक्ति अपना जीवन एकान्त में नहीं व्यतीत कर सकता। सभी व्यक्ति समाज से किसी न किसी प्रकार संबंधित अवश्य हैं। यहाँ तक कि सन्यासी का जीवन भी समाज से परे नहीं है। समाज में मान्यता प्राप्त आदर्श एवं व्यवहार प्रतिमानों द्वारा व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है जिन्हें हम उस समाज का मूल्य कहते हैं। मनुष्य के प्रत्येक चयन, निश्चय, निर्णय तथा कार्य में मूल्य की अवधारणा अन्तर्निहित रहती है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य, सामाजिक विषयों में निहित मूल्य शिक्षा के द्वारा मनुष्य की भावनाओं का निर्माण इस प्रकार करना है कि वे समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सके। मनुष्य के अन्दर मानवीयता का विकास एवं चरित्र निर्माण का कार्य भी शिक्षा के अन्तर्गत पढ़ाये जाने वाले विषयों का होता है।

मुख्य शब्द :– सामाजिक विज्ञान, सामाजिक मूल्य, चरित्र निर्माण, कल्याणकारी, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा, लोकतंत्र, नैतिक मूल्य, शिक्षा।

प्रस्तावना :– मनुष्य की जन्मजात एवं स्वाभाविक प्रवृति सामाजिकता है। समाज व्यक्तियों के पारस्परिक एवं जागरुक संबंधों का परिणाम होता है। समाजशास्त्री मैकाइवर एवं पेज के अनुसार ''समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।'' इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक जागरूकता, समानता व भिन्नता, सहयोग व संघर्ष तथा अन्योन्याश्रितता पर आधारित सम्बन्धों के पुंज को समाज कहा जा सकता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट सामाजिक संरचना तथा कार्यविधियां होती है। जिनमें समयानुसार परिवर्तन होता रहता है।

सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। शिक्षा द्वारा वांछित दिशा में परिवर्तन की प्रक्रिया को गतिमान किया जा सकता है। नियोजित ढंग से समाज में वांछित परिवर्तन लाने का सशक्त माध्यम भी शिक्षा है। सामाजिक विषयों से शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों के ज्ञान, कौशल, रुचि, मूल्य, विचार प्रक्रिया एवं अभिवृत्ति आदि को वांछित दिशा में मोड़ा जा सकता है।

वास्तव में शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपने कर्तव्यों के प्रति न तो जागरूक हो पाता है और न ही उसे ठीक ढंग से समझ पाता है। वह अपने अधिकारों व सुविधाओं का समुचित ढंग से उपयोग भी नहीं कर पाता है। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक उन्नति, खुशहाली तथा समृद्धि लाने की दिशा में शिक्षा अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

वर्तमान समय के परिवर्तनशील सामाजिक वातावरण में भौतिकवादी संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप मनुष्य के जीवन मूल्यों में विचलन तथा अस्थितरता आ गयी है। जिसकी वजह से मनुष्य आचरण हेतु सुदृढ एवं सामाजिक प्रतिमानों के अनुकूल मानदण्डीय एवं प्रतिमानित आधार खो रहा है।
संघर्ष, आतंक, अन्तर्द्वन्द्र, विरोध और क्रान्ति के वर्तमान सामाजिक परिवेश में मूल्य शिक्षण का प्रथम दायित्व है, कि वह सत्यनिष्ठापूर्वक हमारी मान्यताओं, निष्ठाओं और विश्वासों का परीक्षण, पुनर्दृढ़ीकरण, संशोधन एवं पुनर्निर्माण करना बन गया है।

जीवन मूल्यों का प्रभाव जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित करता है। यथा, समाज, राजनीति, अर्थनीति और सबसे अधिक शिक्षा के क्षेत्र को प्रभावित करता है। इसलिए समाजशास्त्रीयों, इतिहासकारों, शिक्षाविदों तथा राजनीतिज्ञों का यह दायित्व है कि वह वर्तमान संक्रमणकालीन परिस्थितियों में इन विविध पक्षों के संदर्भ में अपनी स्पष्ट एवं यथेष्ट सम्मति दें तथा ऐसे सम–सामयिक जीवन मूल्यों का प्रतिपादन करें जिनके प्रति समाज का व्यस्क वर्ग आस्थावान हो तथा शिक्षा स्थलों की भूमिका मानव निर्माण स्थली के रूप में देश और समाज की नई पीढ़ी के अंदर सामायिक जीवन मूल्यों का आविर्भाव एवं संचार कर सकने में हो।

वैश्वीकरण के इस दौर में मानव मूल्यों का विघटन और इसके परिणामस्वरूप उपजी अराजकता एक विश्वव्यापी समस्या बन गया है। इसलिए समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों, भूगोलवेत्ताओं, दर्शनशात्रियों और तत्ववेत्ताओं या यह परम दायित्व है कि वे व्यापक आधार वाले सांस्कृतिक जीवन–मूल्यों का सृजन करे जिनसे वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ–2, मनुष्य में नैतिकता का विकास किया जा सके जिससे ''सर्वजन हिताय'' एवं ''सर्वजन सुखाय'' के साथ ही ''सबका साथ सबका विकास'' की कल्याणकारी भावना समाज में चरितार्थ हो सके ।

सामाजिक विज्ञान/समाजशास्त्र :

सामाजिक मूल्यों का निर्माण व विकास समाज में ही होता है। सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया एवं समाजीकरण द्वारा नैतिक विकास होता है। मानव की आधारभूत इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने में मूल्यों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। डॉ0 राधाकमल मुकर्जी का मत है कि कोई भी समाज यदि अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है तो उसे व्यक्तित्व के सर्वोच्च मूल्यों की नियमित रूप से पूर्ति करनी चाहिए। मानव समाज एवं मानव कल्याण के लिए मूल्यों का पालन एवं संरक्षण आवश्यक है। सामाजिक मूल्य सामाजिक नियन्त्रण का सशक्त साधन है। सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन अनुरूपता अथवा विपथगमन के आधार पर किया जाता है। समाज में अनुरूपता एवं विपथगमन का अध्ययन सामाजिक मूल्यों के ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है।

इस प्रकार सामाजिक विघटन पर नियन्त्रण, सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं सामाजिक पुननिर्माण हेतु मूल्य आवश्यक है। यदि मूल्य समय एवं परिस्थिति के साथ परिवर्तित न हो या समाज के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक होते हैं, तो लोग विद्रोही होकर ऐसे मूल्यों को तोड़ने लगते हैं, जो एक विघटनकारी दशा है। अतः मूल्यों में समयानुसार परिवर्तन भी आवश्यक है। जिससे समाज आदर्श नियमों एवं प्रतिमानों के अनुकूल आदर्श समाज की संकल्पना को पूरा कर सके । क्योंकि मूल्य समाज के मेरुदण्ड के समान है। जिनके अभाव में कोई भी समाज व्यवस्थित, रूप से खड़ा नहीं हो सकता। समाजविज्ञान के रूप में महत्वपूर्ण समाजशास्त्र विषय अपने विषय–वस्तु की दृष्टि से समाज को मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करने में विशेष स्थान रखता है। इसमें समाजशास्त्री अपनी महती भूमिका निभा सकते है।

इतिहास :– इतिहास में अतीत की घटनाओं का वर्णन एवं मूल्यांकन होता है। इतिहास में महापुरूषों के जीवन संघर्ष और उनके आदर्शों से विद्यार्थियों को सत्य अहिंसा, सहनशीलता तथा त्याग जैसे मूल्य सीखने को मिलते हैं। इतिहास की घटनाओं से विद्यार्थियों में राष्ट्रभक्ति और नागरिकता, संस्कृति और परम्परा की समझ, सामाजिक समरसता तथा महापुरुषों के व्यक्तित्व से सकारात्मक सोच और प्रेरणा मिलती है। इतिहास न केवल अतीत की जानकारी देता है बल्कि यह मूल्य आधारित शिक्षा का सशक्त माध्यम भी है। इतिहास शिक्षण में विद्यार्थियों में नैतिकता, सहनशीलता, नेतृत्व और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्य विकसित होते है। सामाजिक मूल्य अपने सामाजिक परम्पराओं के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गतिमान हो पाता है। इतिहास शिक्षण द्वारा मूल्य शिक्षा की निरन्तरता को बनाये रखा जा सकता है।

भूगोल :– मूल्य–शिक्षा प्रदान करने में विभिन्न विषयों का अपना निजी स्थान है जिसमे भूगोल का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह विषय हमारे दृष्टिकोण को विशाल तथा उन्नत बनाता है। स्थानीयता के संकीर्ण दायरे से से जाकर यह हमें वैश्विक परिदृश्य में उदार बनाता है। इस विषय के द्वारा हम अन्योन्याश्रितता के भाव को सीखते हैं। भूगोल एक सामाजिक तथा मानवीय विषय है। भूगोल हमें अच्छी नागरिकता की शिक्षा ही नहीं देता वरन विश्व नागरिकता की ओर ले जाकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम, सहयोग और सद्भावना की ओर अग्रसर करता है। इस विषय ने भारत के ''वसुधैव कुटुम्बकम'' के आदर्श को चरितार्थ करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

नागरिक शास्त्र :– वर्तमान आधुनिक युग में नागरिक शास्त्र अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वस्थ सामाजिक जीवन के विकास के लिए, समाज के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान कराने, सामाजिक चेतना का विकास के साथ ही अधिकार एवं कर्तव्यों का ज्ञान प्रदान करने, राजनैतिक चेतना का विकास, नेतृत्व का विकास तथा लोकतंत्र की सफलता के लिए नागरिक शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। इस विषय के अध्ययन से हम नागरिकता सम्बन्धी मूल्यों की शिक्षा प्राप्त होती हैं। नागरिक शास्त्र और मूल्य शिक्षा मिलकर एक ऐसे समाज की रचना करते हैं जहाँ नागरिक अपने अधिकारों के प्रति सजग हों, कर्तव्यों का परिपालन पूर्ण कर्तव्यनिष्ठा के साथ ही नैतिक मूल्यों के साथ व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भलीभाँति कर सकने में समर्थ हो पाता है।इसलिए नागरिकशास्त्र का अध्ययन भी समाज में मूल्य शिक्षण के माध्यम से मूल्यों की स्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

राजनीति विज्ञान :– राजनीति विज्ञान एक सामाजिक विज्ञान है, जो राज्य, सरकार, राजनीति, नीतियों और सत्ता के सिद्धान्तों का अध्ययन करता है। यह विषय छात्रों को राजनीतिक चेतना, संविधानिक ज्ञान और लोकतांत्रिक मूल्यों से परिचित कराता है। इसके अलावा एक व्यक्ति राष्ट्रीय एकता, कर्तव्यनिष्ठा, नैतिक नेतृत्व एवं सहिष्णुता जैसे नैतिक मूल्यों से भी परिचित होता है। राजनीति विज्ञान का शिक्षण न केवल विद्यार्थियों को शासन और संविधान की जानकारी देता है, बल्कि उन्हें एक जिम्मेदार, मूल्यनिष्ठ और सक्रिय नागरिक भी बनाता है। यह विषय सामाजिक सद्भाव और लोकतान्त्रिक संस्कृति को मजबूत करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजनीति विज्ञान शिक्षण एक लोकतांत्रिक देश की रीढ़ है। जिस प्रकार रीढ़ में विकृति आने से एक व्यक्ति को स्वस्थ्य नहीं कहा जा सकता है ठीक उसी प्रकार विकृत शिक्षा व्यवस्था से देश का निर्माण नहीं हो सकता। शिक्षा में नैतिकता का समावेश होने से ही मनुष्य एक सभ्य नागरिक के रूप में विकसित होता है। और समाज से अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, शोषण, पापाचार और पक्षपात जैसी बुराइयों का अंत होता है। वास्तव में मूल्य शिक्षा का बीजारोपण प्राथमिक स्तर से ही होना चाहिए । लेकिन इसका प्रसार माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा तक भी अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक विषयों के शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण, सामाजिक चेतना के विकास, लोकतांत्रिक नागरिक बनाने, इतिहास से प्रेरणा मिलने और सहिष्णुता और समावेशिता के विकास में सहायता मिलती है। समाज में राजनीतिक मूल्यों की स्थापना में राजनीति विज्ञान शिक्षण का विशेष स्थान है।

निष्कर्ष : सामाजिक विषय न केवल जानकारी का माध्यम हैं बल्कि वे मूल्यनिष्ठ, उत्तरदायी और संवेदनशील नागरिक निर्माण के आधार भी हैं। इसलिए सामाजिक मूल्यों के विकास के लिए शैक्षणिक संस्थानों में सामाजिक विषयों के प्रभावशाली शिक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान विषयों के अध्ययन–अध्यापन के लिए अलग से विश्वविद्यालयों की स्थापना वर्तमान समय की सामाजिक समस्याओं के मौलिक कारकों को ढूंढने एवं उसका निदान करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इसके लिए सरकार एवं आमजन को एक साथ मिलकर सार्थक प्रयास करने होंगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. Shukla R.P., "Value education: A study of selected schools in India "Sarup & sons, New Delhi,2004.
2. UNESCO, "Education in values : A source book", National council of educational research and training (NCERT), New Delhi, 2002.
3. Chand, Jagdish," Value education: The need of the hour, Authorpress New Delhi, 2010.
4. लूनिया, बी. एन. प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 2020
5. तिवारी, बालगोविन्द, शिक्षा की दार्शनिक प्रणालियां, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2022
6. गुप्ता, डॉ. एस. पी, 'शिक्षा की समस्याएं', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013
7. तिवारी, डॉ. राजश्री, 'मूल्य शिक्षा,' राखी प्रकाशन प्रा0लि0, 2016
8. पाण्डेय, राजकमल, शिक्षा : वर्तमान सन्दर्भ में, बोहरा पब्लिशर्स, इलाहाबाद

The Impact of Domestic Labour on the Academic Performance of Female Students of Goliya Jetmal Village in Barmer District.

KHUSHI PATEL
Research Scholar, Department of Sociology
Mohanlal Sukhadiya University, Udaipur
(khushipatelblt2017@gmail.com)

ABSTRACT:
According to the International Labor Organization (ILO) Child Domestic Labor refers to those circumstances where children either willingly or unwillingly are compelled to accomplish domestic responsibilities, not only in their own house but also in their family business. It is very common tradition amongst Indian families that they engage their children to do household tasks, especially girls. This paper tries to investigate the impact of domestic labor on the academic performance of female students of Goliya Jetmal, a small village in Barmer district of Rajasthan. In this cross-sectional study, descriptive research methodology is used to collect primary data through both online and offline survey method from the sample of 114 students enrolled in both Govt. Sr. Sec. School and Govt. College of Goliya Jetmal village. The results of the survey depict that domestic work does not affect the academic performances of the girls studying in Goliya Jetmal. In spite of performing several domestic tasks, 71% of the respondents scored above first division in their academics. Moreover, the results claim that even the uneducated parents belonging to the deserted regions of Barmer are very supportive in imparting education to the girls and consider both education as well as household tasks to be equally important for girls. However, the present study also remarkably contributes in detecting the prevalence of child marriage practice in the remote regions of Barmer district thereby addressing another major social issue.

KEY WORDS: Domestic Labour, Academic Performance, Female Education, Barmer, Child Marriage.

INTRODUCTION

In this research paper, Domestic work refers to those tasks which are performed in a household. The researcher has included the following tasks under the category of domestic work, namely working in their own farms, working as a tenant in other's farms, working at construction sites as an unskilled labor, stitch clothes for the family, household work such as cooking and cleaning the house, take care of younger siblings, assist parents at home or at work place. According to the International Labor Organization (ILO), Child Domestic Labor refers to those circumstances where children either willingly or unwillingly are compelled to accomplish domestic responsibilities, not only in their own house but also in their family business. It is very common tradition amongst Indian families that they engage their children to do household tasks, especially girls. Parents consider it very obvious for their girls to master in household

responsibilities. In such case their education gets affected which could be reflected through their academic performance, i.e., marks or percentage.

Goliya jetmal is a small village in the Nokhra block of Guda Malani tehsil of Barmer district in Rajasthan, India. It is situated 50 km towards south east of the district headquarter. As per 2009 statistics, Goliya Jetmal is also a gram panchayat with total geographical area of 481 hectares. As per 2009 statistics, this village comes under Gudamalni Vidhan Sabha constituency and Barmer-Jaisalmer Lok Sabha constituency. It has adverse climatic conditions of Thar Desert with a dispersed population and inadequate infrastructural facilities. As per the census of 2011, total literacy rate in Rajasthan is 66.11%, female literacy rate stands at 52.12% in contrast to male literacy at 79.19%. Barmer has an alarming total literacy rate i.e., 56.63% in which female literacy rate is 40.60% while male literacy rate is 70.09%. The literacy rate of Goliya Jetmal is 52.21% out of which 64.99% males and 38.01% females are literate.

	al Literacy	le Literacy	male Literacy
jasthan	11%	19%	66%
rmer District	63%	09%	60%
liya Jetmal	21%	99%	01%

Over the years many research papers have addressed the critical social problem of child labor and child domestic labor across the world. Multiple studies like that of Sheldon X .Zhang, Meredith Dank, Kyle Vincent, Pradeep Narayanan, Sowmyaa Bharadwaj & Sudharsanam Manni Balasubhramaniam (2019) estimated the prevalence of worst forms of child labor in Bihar state of India. Jennie Gamlin, Agnes Zenaida Camacho, Michelle Ong & Therese Hesketh (2015) studied the psychosocial effects of child domestic labor. Yamini Choudhary (2022); Sadia Barrech, Muhammad Din, Allauddin (2019) highlighted the causes of child labor. In spite of several researches done in this field, the impact of domestic work on the academic performance of girls is widely ignored, especially in the backward and less developed Barmer district of Rajasthan, particularly disregarded in Goliya Jetmal village where the female literacy is 38.01% as per the census 2011.

This paper tries to investigate whether domestic work affects the academic performance of the girls studying in Govt. Sr. Sec. School as well as Govt. College of Goliya Jetmal village. Moreover, this paper also tries to assess the parents' perspective regarding girl child education. The present study attempts to discover the multiple household tasks performed by the girls of Goliya Jetmal along with continuation of their studies. In addition this study also detects the prevalence of child marriage particularly in the remote regions of Barmer district thereby addressing another major social issue.

LITERATURE REVIEW

In 2006 Devendra Mishra and Prem Arora conducted an informal verbal survey amongst 83 doctor colleagues to determine the prevalence of domestic child labor. No association was observed between the domestic child labor practice and the medical speciality or work setting of the employer. It is also found that the practice of employing child as domestic labor was common amongst doctors.

In 2015Jennie Gamlin, Agnes Zenaida Camacho, Michelle Ong & Therese Hesketh studied the psychosocial effects of child domestic labor in 6 countries (i.e., India, The Philippines, Togo, Tanzania, Peru, Coasta Rica) and the relevance of their findings to international legislations. The data was collected through questionnaire and interview techniques from 3062 samples. The multi-site study suggests that child domestic labor is highly heterogenous. Some workers work for long hours, suffer physical punishment and are at high risk of psychosocial harm whereas some workers are able to attend the school and benefit from good relationships with their employers and supportive networks. Child domestic labor in India and Togo were at high risk of psychosocial harm. The study concludes that it is inappropriate to classify child domestic labor as hazardous and claim that child domestic labor could be counterproductive. This paper proposes that the legislation should focuses on protective factors such as social and community support.

In 2021 Simon Feeny, Alberto Posso, Ahmed Skali, Amalendu Jyotishi, Shyam Nath, P.K.Viswanathan investigated the effect of child labor on child's psychosocial wellbeing with 947 children aged 12-18 years from 750 households in 20 villages across 5 districts of Tamil Nadu. It had holistically analyzed the wellbeing of child by enumerating the levels of hope, happiness, emotional wellbeing, fear, self efficacy and stress. This paper documents negative association between child labor and psychosocial wellbeing.

In 2006 Devendra Mishra and K. Aggarwal explained that the culture of child labor is so deeply ingrained in Indian society that majority of people consider child labor to be normal.

In 2022 Yamini Choudhary highlighted the causes of child labor such as poverty, lack of access to quality education, poor access to decent work, limited understanding of child labor, natural disaster and climate change, conflicts and mass migration, etc. in Indian society. This paper concludes by suggesting various proactive measures to handle this issue.

In 1995 UA Segal determined the prevalence of child abuse among middle class parents. This study suggests social sanctions on employing domestic child workers.

In 2019 Sadia Barrech, Muhammad Din, Allauddin examined the socio-economic background of the people which ultimately causes child domestic labor. The universe of the study was Quetta city and 120 samples were selected through snowball sampling technique. The target population was domestic workers below the age of 18 years. Out of total samples, 60 were males and 60 were females. The study assessed the difficulties of child labors such as long working hours along with low wages, physical abuse and sexual abuse by their employers. This study emphasized on the need to execute the labor laws to protect children from domestic labor. It also offered suggestions to overcome these issues.

In 2019 Sheldon X .Zhang, Meredith Dank, Kyle Vincent, Pradeep Narayanan, Sowmyaa Bharadwaj & Sudharsanam Manni Balasubramaniam rigorously attempted to estimate the prevalence of worst forms of child labor in Bihar state of India. This study gave a detail note on the profiles of the victims. It also provides the limitations of the employed methods and possible recommendations for future research efforts.

RESEARCH OBJECTIVES

- To investigate whether domestic work affects the academic performance of the girl students of Goliya Jetmal.
- To evaluate academic performances of girl students belonging to BPL families.
- To identify whether married girls are still continuing their studies.
- To assess the parent's perspective regarding their girl child's education and domestic work.
- To determine whether the occupational and educational background of the parents of respondents affect their studies.
- To discover different domestic tasks that the girl students perform along with their studies.
- To find out which domestic task is performed the most among the girl students.
- To ascertain whether the girl students willingly perform their domestic tasks or their parents force them.
- To detect the prevalence of child marriage in Goliya Jetmal.

RESEARCH METHODOLOGY

This paper is a cross sectional study that employs descriptive research design. Primary data is collected through both offline and online survey method from 114 students enrolled in both Govt. Sr. Sec. School, Goliya Jetmal and Govt. College, Goliya Jetmal. A structured questionnaire was created in pen and paper as well as using a Goggle form. The offline data was collected through printed questionnaire from Govt. Sr. Sec. School of Goliya Jetmal on 29 August 2024. The online data was collected from Govt. College of Goliya Jetmal through a Google form. The link to fill up the Google form was sent through Whatsapp from 29 August 2024 to 31 August 2024.

Population and Sample

In the present study, the population of the research topic includes all the school and college girls of the village Goliya Jetmal in Barmer district. The study is conducted using voluntary participation sampling method.

The data is collected from the girls residing in rural areas of Goliya Jetmal in Barmer district. The participants include 90 school going and 24 college going girls of Goliya Jetmal. The participation was done on entirely voluntary basis. The sampling frame was of 167 respondents which constitutes 109 girls enrolled in class 9th to 12th of Govt. Sr. Sec. School, Goliya Jetmal and 58 girls enrolled in the B.A 1st and B.A. 2nd semester of humanities stream of Govt. college, Goliya Jetmal. The sample size includes 114 volunteer students studying in these government institutions. 68.26% of sample size was drawn from the sampling frame.

Pilot Study and Pre Test

Before designing a structured questionnaire, the researcher carried out a pilot study and pre test among 45 students using printed questionnaire and interview as the method of data collection to ascertain the reliability and validity of the research. These tests helped to design a final questionnaire that suits the expected purpose of the study and remove irrelevant questions. It also helped to understand the willingness and attitude of the respondents towards the questions.

Methods and Tools of Data Collection

A structured questionnaire was created both in the printed format as well as in the format of google form. The questionnaires were in Hindi language. The printed questionnaire was given to the girl students of the Govt. School and the Google form link was sent to the WhatsApp group formed by the Govt. College. The samples were asked to fill in the questionnaire voluntarily and by free will. They were assured that the data is confidential and the details of the respondents could not be identified. Also the respondents were forbid to write their names on their printed questionnaire and in the Google form, the responses were managed in such a way that it did not collect the email addresses of the respondents.

In the questionnaire the respondents were asked to fill up their socio-demographic details such as their age, class, marital status, different domestic tasks that they perform along with their studies, whether they learn their lessons regularly on daily basis, no. of learning hours per day, their suitable time to study at home, whether domestic work affect their studies, previous class percentage, family's perspective towards their girl child's education and domestic work, whether the respondent herself likes to do domestic work or not, education status and occupation of parents of the respondents.

ETHICS: The researcher has completely followed the ethical code of research while administering the sampling. She has taken prior permission from the authorities of both Govt. Sr. Sec. School and Govt. College of Goliya Jetmal. An informed and conscious consent of the respondent was obtained.

RESULT AND DISCUSSIONS

Age of the respondents

Age	No. of Respondents	Percentage
Below 18	**91**	**79.8%**
18	**16**	**14%**
19	**5**	**4.3%**
20	**2**	**1.7%**

As per the examination of socio-demographic data filled by the 114 respondents, 91 respondents are below 18 years of age, 16 respondents belong to the age group of 18 years,5 respondents belong to the age group of 19 years and only 2 respondents belong to the age group of 20. Thus it is clear from the chart that 80% of the samples belong to the age group of below 18 years.

Class of the respondents

Class	No. of students	Percentage
9th	27	23.6%
10th	17	14.9%
11th	24	21%
12th	19	16.6%
B.A. 1st sem.	8	7%
B.A. 2nd sem.	19	7.8%

According to the collected data, out of 114 respondents, 27 respondents are from 9th class, 17 respondents are from 10th class, 24 respondents are from 11th class and 19 respondents are from 12th class of Govt. Sr. Sec. School of Goliya Jetmal and 8 respondents are from B. A. 1st semester batch and 19 respondents are from B. A. 2nd semester batch of Govt. College of Goliya Jetmal. Thus it could be inferred that the maximum respondents are school going girls i.e., 90 respondents.

Marital status of the respondents

Status	No. of respondent	Percentage
Married	27	23.6%
Unmarried	87	76.3%

When the respondents are questioned about their marital status, 87 respondents are single and only 27 respondents are married. On the basis of collected data, it can be understood that almost 23.6% of the respondents are married and they are still continuing their studies even after their marriage. Out of these 27 married respondents, 22 girls are below 18 years. That is almost 81.5% of married respondents have undergone child marriage. This indicates towards the high prevalence of child marriage in rural Barmer.

rried respondents	dergone child respondents	centage
		5%

BPL card holders

	. of respondents	centage
BPL card holders	49	42.9%
Non BPL card holders	65	57%

From the table it is clear that, out of 114 respondents, 49 respondents are BPL card holders whereas 65 are not. However 41 BPL respondents have scored above 60% in their previous academic year. Thus it is evident that BPL families are interested in their girl child education.

BPL card holder	BPL scored 1st division	Percentage
49	41	83.6%

Domestic work by the respondents

The students are enquired about the different domestic tasks that they perform along with their studies. This question has multiple options that can be selected by the respondent. These multiple tasks include working in their own farms, working as a tenant in other's farms, working at construction sites as an unskilled labor, stitch clothes for the family, household work such as cooking and cleaning the house, take care of younger siblings, assist parents at home or at work place.

As per the data collected from 114 respondents, each respondent perform several domestic tasks. 86 respondents are engaged in the field work and 7 respondents of them also work in other's field, 6 respondents work at the construction sites, 25 respondents stitch clothes for the family, 90 respondents perform household work such as cooking and cleaning the house, 35 respondents take care of younger siblings, 114 respondents assist parents at home or at work place. On analyzing this data, it is clear that each and every respondent is entitled to perform multiple domestic tasks in a day. Maximum no. of respondents are engaged in field work as well as household work such as cooking and cleaning and very few respondents work as an unskilled labor at the construction site. However every respondent agreed that they all assist their parents both at home and at the work place.

Learning lessons daily

When the respondents are asked whether they learn their lessons on a regular and daily basis, 108 respondents replied in affirmative and the remaining 6 respondents replied in negative.

Number of learning hours at home

Hour	No. of the respondents	Percentage
0	10	8.7%
1	16	14%
2	42	36.8%
3	15	13.1%
4	19	16.6%
More than 4	12	10.5%

When the respondents are asked about the number of hours they spend at home reading their lessons, 10 respondents replied that they do not spend time reading their lessons at home. 16 respondents answered that they spend one hour at home for their studies. 42 respondents replied that they spend two hours. 15 respondents replied that they spend three hours learning their lessons. 19 students said that they spare four hours for their studies. 12 respondents replied that they spend more than 4 hours.

Thus it can be concluded that almost 91% of the respondents are studious and they are also interested in learning their lessons on daily basis. This shows the sincere environment of girl child education in Goliya Jetmal.

Suitable time to study

	No. of respondent	Percentage
Morning	7	6.1%
Afternoon	22	19.2%
Evening	18	15.7%
Night study	67	58.7%

The respondents are asked about their suitable time for learning in their busy day. 7 respondents told that they study in the mornings, 22 respondents replied that they study at noon, 18 respondents in the evening and the rest 67 respondents agreed that they study at night. It is

concluded that majority of the respondents prefer night study after completing their assigned domestic tasks of the day.

Domestic Work affect their studies

When the students were enquired whether domestic work affects their studies, 23 out of 114 respondents replied in positive and the remaining 91 had a negative reply. Thus it can be deduced that household work does not affect the studies of majority of respondents as they are scoring well in their academics.

Previous year academic performance in percentage

Academic scores	No. of respondents	Percentage
Below 50%	1	0.8%
50-60%	32	28%
60-70%	38	33.3%
70-80%	32	28%
Above 80%	11	9.5%

In the questionnaire students are asked about their previous year academic performance in percentage. There is only 1 respondent who is below 50%, 32 respondents scored within the range of 50%-60%, 38 respondents scored between 60%-70%, 32 respondents scored within the range of 70%-80%, 11 respondents scored above 80%.

Thus it is clear from the above figure that in spite of performing several domestic tasks, 71% of the respondents scored above first division in their academics. It is also noted here that out of 49 BPL girls, 41 have attained above 1st division in their academics. Almost 84% of the BPL girls are interested as well as excellent in their studies.

Parents' perspective

The students are inquired about the different perspectives that their parents have regarding their girl child's education and domestic work. 27 respondents said that their parents motivate them to study hard and make career, only 2 respondents told that their parents consider domestic tasks as the first priority for the girls and push them towards domestic work, and 85 respondents said that their parents hold both perspectives significant.

This data drives us to understand that almost 98% of the respondents' parents are very supportive in their girl child education. 75% of the respondents' parents hold the perspective of balanced life for their girl child .i.e., they consider that both education and domestic work equally important for their girl child.

Respondents' choice

When the respondents are asked whether they like to perform domestic work out of 114 respondents, 90 respondents agreed that they like to perform domestic work whereas 24 respondents told that they don't like to perform. This is clear from the above data that almost 78% of the respondents are happily performing their household tasks along with their studies and they are flawlessly balancing both the domestic work and their studies.

Parents' educational status

When the respondents are enquired about their parents' education status, father of 71 respondents are educated and father of 43 respondents are uneducated and 90 respondents' mothers are uneducated whereas only 24 respondents' mothers are educated.

These figures exhibit that most of the fathers are educated and mothers are uneducated in the Goliya Jetmal but they encourage their girl child to persue their complete education.

Parents' occupation

When the respondents are appealed to tell about the occupational status of their parents, 111 respondents' mothers are housewives, 2 respondents had lost their mothers in their early age and only 1 respondent's mother is a teacher. 83 respondents' fathers are farmers, 2 respondents' fathers are barber, 7 respondents' fathers are vehicle drivers, 3 respondents agreed that their fathers are goldsmiths, 4 respondents' fathers are carpenters, 3 respondents' fathers are shopkeepers, 4 respondents' father work at construction sites as unskilled laborers, 2 respondents told that their fathers are shepherds and 6 respondents had lost their father in their early age. It can be concluded that majority of mothers are housewives and fathers are farmers. But the occupation of the parents does not affect the studies of the respondents.

CONCLUSION

This study aims to examine the relation between the domestic work and academic performance of the girls studying in Goliya Jetmal. The results of the survey depict that household work does not affect the academic performances of the girls studying in Goliya Jetmal. In spite of performing several domestic tasks, 71% of the respondents scored above first division in their academics and almost 84% of the BPL girls are interested as well as excellent in their studies. Even all the 27 married respondents are still continuing their studies even after their marriage. Moreover, 75% of the respondents' parents hold the perspective of balanced life for their girl child .i.e., they consider both education and domestic work equally important for their girl child. This proves that educational status and occupation of the parents do not affect the studies of the respondents. Through this paper we have found that 75% of the respondents are engaged in the fields as well as household work such as cooking and cleaning and very few respondents work as an unskilled labor at the construction site. And 78% of the respondents are happily performing their household tasks along with their studies and they are effortlessly balancing both the domestic work and their studies. This demonstrates that Goliya Jetmal village is sincere enough towards the relevance of girl child education but they are still backward regarding the issue of child marriage. Almost 81.5% of married respondents have undergone child marriage. This is an alarming situation which even reciprocates their girl child educational progress.

This document makes valuable contribution to the better understanding of the effects of domestic work on the academic performance of female students of Goliya Jetmal. Instead of performing numerous domestic tasks girls are scoring well in their academics. This paper also attempted to assess the parent's perspective regarding the relevance of girl child's education and domestic work and prevalence of child marriage in less developed and deserted regions of rural Barmer.

LIMITATIONS AND RECOMMENDATIONS

This study is limited to only the Goliya Jetmal village. This study does not consider the motivation behind the better academic achievement in spite of performing various domestic tasks. It does not take in to account the socio-economic background of the students. Also, the validity of the data depends on the honest disclosure of the participants.

Despite these limitations, this study makes an important contribution by collecting primary data from 114 participants. As such, it is suggested that research studies can further be conducted to examine both positive and negative factors that influence their academic performances. An additional study can be conducted to determine their aspirations that motivate them to continue their studies despite of having a huge burden of domestic work over them.

ACKNOWLEDGMENT: K.P. thanks to all the students of Govt. School and Govt. College of Goliya Jetmal who have participated and provided their data. She extends heartfelt and sincere thanks to the Principal of Govt. Sr. Sec. School, Goliya Jetmal for supporting her in the collection of data and completion of this study.

CONFLICT OF INTEREST: The researcher has no conflict of interest to declare.

REFERENCES

1. Feeny, S., Posso, A., Skali, A., Jyotishi, A., Nath, S., & Viswanathan, P. K. (2021). Child labor and psychosocial wellbeing: Findings from India. Health Economics, 30(4), 876-902. http://doi.org/10.1002/hec. 4224
2. Zhang, S. X., Dank, M., Vincent, K., Narayanan, P., Bharadwaj, S. & Balasubhrsmsniam, S. M. (2019). Victims without a Voice: Measuring Worst Forms of Child Labor in the Indian State of Bihar. Victims & Offenders, 14(7), 8322-858. http://doi.org/10.1080/15564886.2019. 1660289
3. Gamlin, J., Camacho, A. Z., Ong, M., Hesketh, T. (2015). Is domestic work a worst form of child labor?The findings of a six-country study of the psychosocial effects of child domestic work. Children's Geographies, 13(2), 212-225. http://doi.org/10.1080/14733285.2013.829660
4. Barrech, S., Muhammaddin, Allauddin. (2019). Sociological Analysis Of Domestic Child Labor. Pakistan Journal of Gender Studies, 19, 149-162.
5. Choudhary, Y., (2022). Child labor in Indian society. National Journal of Advanced Research, 8(1), 45-50.
6. Mishra, D., Arora, P. (2007). Domestic Child Labor. Indian Pediatrics,(44), 291-291
7. Segal, U. A. (1995). Child abuse by middle class professionals in India. Child Abuse and Neglect, (19), 217-231.
8. Mishra, D., Aggarwal, K. (2006). Child Abuse and Neglect.
9. Posso, A. (2019). The health consequences of hazardous and non-hazardous child labor. Review of Development Economics, 23(2), 619-639.
10. Parker, D. L. (1997). Child Labor: The Impact of economic exploitation on the health and welfare of children. Minnesota Medicine, 80, 10-12.

11. Llena-Nozal, A., Lindeboom, M., & Portrait, F. (2004). The effect of work on mental health: Does occupation matter? Heath Economics, 13, 1045-1106.
12. ILO. (2015). Child labor and education: Progress, challenges and future directions. International Labor Organisation, Geneva. Retrieved from http://www.ilo.org/ipec/Informationresources/WCMS_IPEC_PUB_26435/lang-en/index.htm
13. ILO. (2019a) What is child labor? International Labor Organisation, Geneva, Retrieved from http://www.ilo.org/ipec/facts/lang-en/index.htm
14. ILO. (2019b). Child labor in agriculture. International Labor Organisation, Geneva. Retrieved from http://www.ilo.org/ipec/areas/Agriculture/lang-en/index.htm
15. Banerjee, S. R. (1995). Child Labor in India. Indian Pediatrics, 32, 403-408.
16. Banerjee, S. R. (1993). Agricultural Child Labor in West Bengal. Indian Pediatrics, 30, 1425-1428.
17. Banerjee, S. R. (1990). Female working children. Indian Pediatrics, 27, 3-6.

A Study of Self Help Group Lead Women Empowerment

Pratiksha Mishra
Research scholar, Department of sociology
Maharaja Balwant Singh P.G College Gangapur,Varanasi
(Affiliated to Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith)

Prof. Alok Kumar Kashyap
Research Supervisor, Department of sociology
Maharaja Balwant Singh P.G College Gangapur,Varanasi
(Affiliated to Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith)

Abstract:-

Women empowerment maybe defined in several method including accepting women's viewpoints ,making an effort to seek them and raising the status of women through education, awareness, literacy, equal status is society ,better livelihood and training. Women emp- owerment equips and allow women to make life determining decis- ions through the different societal problem . they may have such rules which allow them more freedom to purpose desire goals. Self help groups is one of the most important plan whom women emp- owerment has been in rural areas. These groups are provide social ,economic empowerment. The women come together in self help groups for solving their own problems. The purpose of the study was to analysis the impact of self help group in economic as well as social empowerment of women in rural areas. The data required for the study has been collected from secondary sources. Secondary data was collected from articles, books, research generals and websites. The results of the study revealed that participation of women in self help groups have greater impact on economic and social empowerment aspects of the women.

"The status of women indicates the character of country" :- pt. Jawaharlal Nehru.

Keywords :-self help group, women empowerment ,economic empowerment and social empowerment.

Introduction:-

The development of the country depend on their maximum uses of human resources. The most important to contributes in the process of economic and social development by the women who is half population of the world. Without the development of a woman you can't think about the development of country. In the countries of the whole world, the ratio of women development is not satisfactory. Poverty eradication is most important aspects for the village areas. In the present time, this has a most important topic for national development as well as international development. In the level of national development poverty alleviation program are helping to eradicating poverty and the level of international development sustainable development is the help to eradicating poverty. In many under developed countries, there are many limited women have low income, which contributes to gender discrimination, poverty and unemployment are major aspects to women's development. But that time the development of awareness are very fast

in women. Women has realisation of their power. Today women are not legging behind in any field. Whether it is the field of defence or science are tournaments. They are growing by struggle and hard work. According to prime minister Shri Narendra Modi ji" At the present time India need the women development as well as development Of leadership in women . The most important role in women empowerment are the education as well as social and economic freedom. Educated women not educate only one or two family but also educate many generation. The educated women made her own way for social and economic freedom."

Mahatma Gandhi say that if you educated man then you educate one person but if you educate of women then you educate a one Nation.

Villages face numerous problems related to poverty, illiteracy ,lack of skill ,lack of formal credit etc. this problems can't be tackled at an individual label and need collective efforts. 10 self help group can become a vehicle of change for the poor and marginalised. Self help group relay on the notion of "self help" to encourage self employment . "Today 10 crore women are related to self help groups. And you will be come with self help group in the village then you will be meet with bank vali didi , Anganwadi wali didi, dawai wali didi. Now my dreams are make 2 crore lakhpati DiDi in village areas. We are training with self help group to drive drone so that technology come with our agriculture sector. The Government of India will be give many drone to self help group"

prime minister Narendra Modi.

Self help group was started by Muhammad Yunus in 1986 who belong from Bangladesh. The main purpose of established of self help group is fixed the problem of poverty, which is you doing well and successfully. Self help group is a small in formal association of individuals ,typically from similar socio economic background who voluntarily come together to achieve collective objectives, member of self help group save regularly, pool of their savings and use the funds to meet their needs are start income generating activity. Self help group are in formal association of people who choose to come together to find way to improve their living conditions. It can be defined as a self governed, pear controlled information group of people with similar socio economic background and having a desire to collectively perform common purpose. The genesis of self help group in India can be traced to formation of a self employed women's association (SEWA) in 1976. The self help group Bank linkage project launched by NABARD in 1992 has a blossomed in to the world's largest microfinance project. NABARD along with RBI permitted self help group to have a saving account in banks from the year of 1993. This action game a considerable boost to the self help group moment and paved the way for the self help group Bank a linkage program. Self-Help Groups (SHGs) are informal associations of people who choose to come together to find ways to improve their living conditions.It can be defined as self governed, peer controlled Information group of people with similar socio-economic background and having a desire to collectively perform common purpose.Villages face numerous problems related to poverty, illiteracy, lack of skills, lack of formal credit etc. These problems cannot be tackled at an individual level and need collective

efforts.Thus SHG can become a vehicle of change for the poor and marginalized. SHG rely on the notion of "Self Help" to encourage self-employment and poverty alleviation.

Needs of the Self Help Groups:-

One of the reasons for rural poverty in our country is low access to credit and financial services. A Committee constituted under the chairmanship of Dr. C. Rangarajan to prepare a comprehensive report on 'Financial Inclusion in the Country' identified four major reasons for lack of financial inclusion:Inability to provide collateral security,Poor credit absorption capacity,Inadequate reach of the institutions, andWeak community network.The existence of sound community networks in villages is increasingly being recognised as one of the most important elements of credit linkage in the rural areas.They help in accessing credit to the poor and thus, play a critical role in poverty alleviation.They also help to build social capital among the poor, especially women. This empowers women and gives them greater voice in the society.Financial independence through self-employment has many externalities such as improved literacy levels, better health care and even better family planning.

Benefits of Self Help Groups:-There are many profits of self help groups , in which included empowerment, social empowerment as well as as community development. Self help groups helps woman's to start a small business and expand this. There are many benefits of self help group which is given below.

- **Social integrity:-** The main purpose of this self help group is social integrity in women. Self help group promote to decrease the problem of dowry, education etc.
- **Economic development: Self Help Group** organise skills based programs for members of group. Due to this enhance economic capability of group. So the members become active participate in economic activities.
- **Gender equality:-** Self Help Groups makes women to empower and this is developed the quality of leadership in women. Empower women are a participate in election in village areas. There is evidence in this country as well as elsewhere that formation of Self-Help Groups has a multiplier effect in improving women's status in society as well as in the family leading to improvement in their socio-economic condition and also enhances their self-esteem.
- **Access to loans:-** After the join the self help groups, they got the loans without any hassles. This loans allows to doing small business and expand there. Because of got to easy loans, she started small business and increase her income.
- **Saving habits:-** Self help group se developed the saving habits in women's ,There by their future will be securing. Self help groups encourages to women's to save small amounts on their daily basis.
- **Promotion to Micro Enterprises:-** Self help groups of promote women's to start and expand small businesses, thereby creating a new source of income. Women's are starting going out from home and the seeing the world according to our eyes.

- **Community Development:-**Self help groups promote members to community development. There are developing to leadership them. There are developing to social and a political development in women's who are connected the groups .
- **Awareness:-**self help groups play a important role in rising awareness on social issue and promoting collective action.
- **Development of Leadership Skills:-** Self help groups are helping to developing leadership skills in women's. Today they are rising their wise against to society. Today they knew about the rights .
- **Poverty Eradication:-** Self help groups are helping to come out of poverty and lead a better life.
- **Impact on Housing & Health –** The financial inclusion attained through SHGs has led to reduced child mortality, improved maternal health and the ability of the poor to combat disease through better nutrition, housing and health – especially among women and children.
- **Banking literacy –** It encourages and motivates its members to save and act as a conduit for formal banking services to reach them.
- Improving efficiency of government schemes and reducing corruption through social audits.
- **Alternate source of employment –** It is eases dependency on agriculture by providing support in setting up micro-enterprises e.g. personalised business ventures like tailoring, grocery, and tool repair shops.
- **Changes In Consumption Pattern –** It has enabled the participating households to spend more on education, food and health than non-client households.

Review of literature:-

(Dr Manoj Bhargava 2022), the study was conducted two blocks of vishnupur and sisai of Gumla district of Jharkhand. In the present time 94090 members are associated with self help groups in Gumla district, 10878 members in sisai and 400 women in sisai block. The study identified the impact of self help group in the growth of women entrepreneur to measure the accessibility to women entrepreneur. It was a found out that self help a group play and the important role in village areas.

(Robin Das 2015), in his paper entitled to emergence and activity of a self help groups: a great effort and implementation for women empowerment as well as rural development : study on khajuri CD block in East Medinipur West Bengal -I study the researcher asseas th performance of self help group. He Examine the impact of self help group on economic and social condition of the women. Self help group did empowered the women. This studies show the positive effects on women.

(Agrawal 2020), study was conducted in Ujjain city of Madhya Pradesh. This study measures the impact of self help group in the Ujjain city. The study was conducted at 5 slum areas. In this study he found that self help group played a important role in village areas. Hey saw that there are a positive impact on social and economic growth.

(Hena nakvi 2022), in this paper entitled to samuhik nari Shakti ke pratik swayam sahayata samuh: a study on totally based on women empowerment. She say that two important plan dindayal antyoday Yojana and rashtriya jeev ka mission , of Indian government is totally dedicated to rural women.

(Dr Rajesh Maurya), in his study recording dimension of economic empowerment easy provide power of earning, equal opportunity of employment, enhance skilled and efficiency the eradication of poverty between women is possible when they will become economic empowered . **Objective of study:-**Self-help groups (SHGs) aim to empower individuals, particularly women, by providing access to financial services, promoting savings, and fostering income-generating activities. These groups also work towards poverty alleviation, social and economic empowerment, and building community support.

- To examine the impact of self help group and women empowerment.
- To assess the impact of self help group on the economic empowerment of women in the rural areas.
- To assess the impact of self help group on the social empowerment of women in the rural areas.
- To assess the impact of self help group on the leadership of women in the rural areas.
- To examine the impact of Self Help Group on the come out of poverty and lead a better life.

Impact of Self Help Group on the status of women:-Self Help Group is a value based organisation. In which the members are biased on the same cast, neighbourhood, working together and common purpose etc . At least five members and maximum 20 members are registered in it. All members meet regularly once a week. At a particular place decided by the group, the member discuss their problems and try to solve them. The self help group play an important role in improving the credit system. In contemporary India we can see that there is more poverty in village area than urban areas. There is a lack of economic activity in rural area to this women of rural area have lack of economic opportunity than urban areas. Due to Self Help Group they find a lot of economic skill now and start is own startup and become economic empowered as well as they provide jobs to other. There are 842101 self help group in Uttar Pradesh, according to the ministry of rural development. Did groups play a significant role in empowering women and promoting rural development.NRLM is being employment across the country in a mission mode since 2011 with them to bring at least one women member from each rural poor household. As per the socio economic caste census (SECC)2011 data and process of a participatory identification of poor into the fold of self help groups and to support them to take up economic activity. As on 31st January 2025 about 10.05 crore women household into 90.90 lakhs self help group. Under MGNREGA, self help group members are involved in the planning of works through participation in gram Sabha project. Play the role of social auditors and are also engaged as a website supervisors.

Conclusion :- Self-Help Groups have proven to be a powerful mechanism for socio-economic transformation in India. By fostering financial independence, empowering women,

and building community resilience, SHGs have the potential to address pressing developmental challenges. With continued support from governments, NGOs, and financial institutions, SHGs can further strengthen their impact and contribute to building a more inclusive and equitable society.These groups aim to facilitate the process of self-empowerment by overcoming social exclusion, enhancing participation in decision-making processes and improving quality of life .The basic idea behind the SHGs for the poor is to provide them with a vista for self-help in financial areas. A self-help group is a small group comprising people in the rural areas who collect their savings and loan these out to members on an interest rate lower than that charged by the informal sector.Self-help group is a useful platform to enhance women's health through increased knowledge and awareness on health issues, and financial security during health emergencies etc. it's very active in providing income generating activities. However there is no much significant improvement in health behaviour or knowledge about health related issues.

Reference :-

- Agarwal, D. (2020). An empirical study on women empowerment through self help Groups(special reference to Ujjain district of MP). Accent journal of economics Ecology & enginerring, 05(01)
- Das, Robin (2015). Emergence and activity of self help group: a great afar and implementation for women's empowerment as well as a rural development-I study on khejuri C.D blocks in East Medinipur West Bengal.I .V.S.R. journal of humanity and social science, volume 20 issue ! Wet V.(Jan 2015). Page number:-28-39
- Bhagat, Dr Manoj (2022), gramin mahilaon ki arthik Vikas mein swayam sahayata samuh ki bhumika. Sankalp publication.
- Nakvi Hena (2022) samuhik nari Shakti ke Pratik swayam sahayata samuh . Kurukshetra (April 2022), page number – 42-45.
- Modi, Dr K.M (October 2014) , gramin mahila rojgar mein swayam sahayata samuhon ka yogdan. Kurukshetra, page number :- 25-27
- Purva, Pratibha Sahni (2021) , mahila sashaktikaran aur swayam sahayata samuh, Ankur book distributors. Delhi 110053
- Sowbhari , Dr Meenakshi (2016), swayam sahayata samuh aur mahila Vikas, pointer publishers, Jaipur (302003), Rajasthan
- Maurya, Dr Rajesh , swayam sahayata samuh dwara mahilaon ka arthik sashaktikaran,IBSN 9781647834371
- https://hi.wikipedia.org
- https://afrias.com.kurukshetra
- https://www.nextias.com
- https://rural.gov.in
- https://nrlm.gov.in
- https://timesofindia.indiatimes.com

- https://rural.gov.in
- https://www.ijert.otg
- https://afeias.com
- https://testbook.com
- https://pwonlyias.com
- https://chahalacademy.com
- https://gokulamssekias.com
- https://launchpadeducation.in
- https://shgeshop.com
- https://www.egyankosh.ac.in
- https://www.scribd.com
- https:// www.nextias.com
- https://www.doubtnut.com
- https://www.byjus.com
- https:www.driahtiias.com
- https://www.shakaiasparliamant.com
- https://www.jclmm.com
- https://www.reasearchgate.net
- https://www.ncbi.nlm.nih.gov

ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार माध्यमों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

ज्ञानती सिंह
शोध छात्रा समाजशास्त्र
महाराज बलवन्त सिंह पी0जी0 कालेज गंगापुर, वाराणसी

सारांशः—

ग्रामीण पुनर्निर्माण (Rural Reconstruction) एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जो ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक विकास को सुनिश्चित करती है। इस प्रक्रिया में संचार के साधनों का उपयोग प्रभावी ढंग से किया जा सकता है भारत जैसे देश में, जो आकार की दृष्टि से महाद्वीपीय है। जहाँ की कुल जनसंख्या गाँव में और कृषि पर निर्भर है जहाँ कई भाषाएं है। तथा अनपढों एवं अर्द्धसाक्षरों की संख्या बहुत अधिक है। रेडियों तथा चलते फिरते सिनेमा का दूरसंचार साधनों के रूप में बडा ही महत्व है पुस्तकों या समाचार पत्रों की अपेक्षा वें कहीं अधिक घरों तथा लोगों के दिमाग तक पहुँच सकते है और इस कारण अपने सर्वोत्तम साधन और व्यापक अर्थ में सर्वसाधारण को शिक्षा तथा सूचना देने के लिए शक्तिशाली साधन है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिए संचार केवल सूचना के आदान–प्रदान का साधन नही है बल्कि यह आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक बदलावों को प्रेरित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संचार के माध्यमों में इण्टरनेट, मोबाइल फोन, रेडियों, और सामुदायिक कार्यक्रम शामिल है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की प्रक्रिया में संचार एक महत्वपूर्ण घटक है। जो न केवल सूचना का प्रभाव सुनिश्चित करता है, बल्कि सामुदायिक सहभागिता और आर्थिक उन्नति को भी प्रोत्साहित करता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों का प्रभावशील उपयोग आवश्यक है। इसके लिए स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण, संसाधनों की उपलब्धता, और सुदृढ नेटवर्किंग की जरूरत है। प्रभावी संचार के माध्यम से ग्रामीण समुदायों में जागरूकता, भागीदारी और आर्थिक विकास को बढावा दिया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोंतो पर आधारित है तथा वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य ग्रामीण विकास में संचार के महत्व को समझाना और विकास की दिशा में सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द :— ग्रामीण विकास, ग्रामीण पुनर्निर्माण, संचार

प्रस्तावना :—ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों की प्रभावशीलता एक महत्वपूर्ण विषय है, जिसने पिछलें कुछ वर्षों में काफी ध्यान आकर्षित किया है। विकासशील देशों में, विशेषकर भारत जैसे बडे देश में, लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इसीलिए, ग्रामीण क्षेत्रों का विकास राष्ट्र के समग्र विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। संचार के साधन इस विकास के प्रमुख स्तम्भ के रूप में कार्य करते है, जो स्थानीय समुदायों के लिए संसाधनों, जानकारी और सेवाओं की पहुँच को सम्भव बनाते है। प्रभावी संचार के माध्यम से, ग्रामीण समुदाय न केवल अपनी समस्याओं का समाधान खोज सकते है, बल्कि अपने अधिकारों और अवसरों के प्रति भी जागरूक हो सकते है। ग्रामीण पुनर्निर्माण एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास करना है इसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय और बुनियादी ढाँचे का विकास शामिल हैं। यह प्रक्रिया न केवल गाँवों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि राष्ट्रीय विकास के लिए भी आवश्यक है।

संचार और ग्रामीण विकास :—

यद्यपि परम्परागत भारतीय ग्रामीण समुदाय में संचार के अत्यधिक सशक्त एवं ग्रामीण मानसिकता के अनुरूप संचार के साधनों का प्रचलन रहा है तथा परिवर्तन और विकास के सन्दर्भ में संचार माध्यमों की

क्रियाशीलता ग्रामीण समुदाय के संदर्भ में अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया हैं समकालीन ग्रामीण समुदाय परिवर्तन्नोमुख समुदाय है । विकास और परिवर्तन की अनेक योजनाए ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए क्रियान्वित की जा रही है दूसरी ओर संचार के नवीन साधन विशेष रूप से इलेक्ट्रानिक मीडिया का विस्तार हो रहा है तथा ग्रामीण समुदाय अप्रत्यक्ष रूप से बाह्य ससार के सम्पर्क में आ गया है। इन संसार के नवीन आयामों के अतिरिक्त विकास कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण अंग संचार सेवा हैं योजनाओं का प्रचार–प्रसार नवीन संदेशों का हस्तांन्तरण परिवर्तन से संबन्धित व्यक्ति समूह में चेतना जाग्रत और क्रियाशीलता के विस्तार के लिए संचार सेवाए बडे पैमाने पर नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रसार कर रही है। अतः समकालीन व्यक्ति का सूचना जगत अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो रहा है। इस प्रकार के वातावरण में ग्रामीण विकास की एजेंसियों मुख्य रूप से कृषि विकास स्वास्थ्य शिक्षा, परिवार नियोजन, व्यावसायिक एवं आर्थिक गतिशीलता के क्षेत्र में किस प्रकार से क्रियान्वित हो रही है। इनका अध्ययन संचार माध्यमों के प्रभाव के आकलन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। संचार और सम्प्रेषण की ग्रामीण विकास में उपयुक्त भूमिका है यह मात्रा केवल ग्रामीण विकास का तथ्यावलोकन नही करता अपितु विकास की सहभागिता में योगदान देते हुए सामाजिक स्थिरता एवं निरंतरता को स्थायित्व देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रकृतिक रूप से कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप है। लेकिन वैज्ञानिक संसाधनों के अभाव के कारण कृ षि का अपेक्षित विकास नही हो पा रहा हैं इस समस्या के निदान में संचार या सम्प्रेषण की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।संचार साधनों के द्वारा जिस प्रकार की सामग्री का प्रवाह होता हैं उसी के अनुरूप समाज की मुख्य व्यवस्था निर्धारित होती हैं। साथ ही संचार के नवीन संसाधन व्यक्ति को राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं से जोडता है। सूचनाओं से व्यक्ति की दूरदर्शिता, सामाजिक, जीवन के प्रति जागरूकता, सहभागिता एवं वैज्ञानिक जानकारी में वृद्धिहोती है।ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में संचार के विभिन्न प्रकार्यों पर विचार किया जाए तो इस क्षेत्र में उनकी कई सम्भावनाएं अभिव्यक्तहोती हैं। संचार साधन को दिशा देकर नवीन मूल्य स्थापित किए जा सकते है। ग्रामीण समाज को रूढियों एवं परंपराओं से मोडकर प्रगति की ओर लाकर, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को उचित दिशा दी जा सकती है। एवं उसकी सहायता से जनमानस के आधुनिकीकरण से लक्ष्य एवं कार्यक्रम को उचित दिशा दी जा सकती है। जन संचार ग्रामीण समाज के सम्मुख नए जीवन का विकल्प प्रस्तुत कर उन्हें निष्क्रियता का मार्ग छोडकर सक्रीयता का मार्ग अपनाने की प्रेरणा दे सकते है। इस दिशा में जनसंचार माध्यमों के विशिष्ट योगदान के वैज्ञानिक प्रयास का राष्ट्रीय ग्रामीण विकास नीति के अनिवार्य घटक के रूप में देखा जा रहा है।

1931 में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में इन्स्टीच्यूट ऑफ रूरल कंस्ट्रक्शंन की स्थापना की। टैगोर की प्रेरणा से अनेक कार्य आरम्भ हुए ।

1952 में ही एक अखिल भारतीय कृषि सम्मेलन भी आयोजित किया गया इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्रयोगशालाओं में कृषि नवाचार किस प्रकार कृषको तक पहुचाया जाए तथा कृषको की समस्याओं का पता लगाकर उनका निराकरण किया जाए ।

संचार के साधनों का महत्व :–

ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के माध्यमों का विश्लेषण करते समय यह समझना आवश्यक है कि ये साधन विभिन्न तरीकों से भूमिका निभाते है–

सूचना का प्रवाह– संचार माध्यम गाँवों के लोगों को जानकारी तक पहुँचाते है।यह जानकारी फसल उत्पादन, बाजार मूल्य, मौसम पूर्वानुमान, सरकारी योजनाओं, और स्थानीय सेवाओं के बारे में हो सकती है। उदाहरण के लिए, मोबाइल फोन के माध्यम से किसान अपनी फसल की कीमतों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते है, जिससे वे बेहतर निर्णय ले सकते है।

सामुदायिक सहभागिता–संचार के साधनों का उपयोग ग्राम पंचायतो और स्थानीय संगठनों द्वारा किया जाता है, जिससे सामुदायिक चर्चा और निर्णय लेने की प्रक्रिया को आसानी होती है। सामुदायिक रेडियो, वर्कशाप और मीटिंग्स जैसे साधन लोगों को अपने विचार साझा समस्याओं का समाधान खोजने में मदद करते है।

आर्थिक विकास–संचार के साधनों के माध्यम से व्यवसाय और उद्यमिता को बढावा मिलता है इंटरनेट और मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से ग्रामीण उद्यमी अपने उत्पादों को व्यापक बाजार में बेच सकते है, इससे न केवल उनकी आय बढती है, बल्कि आर्थिक विकास भी होता है।

चुनौतियाँ :–

हालांकि, ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार साधनों की कई प्रभावशील चुनौतियाँ हैः–

डिजिटल विभाजन–सभी ग्रामीण क्षेत्रों में संचार के साधन की समान पहुँच नही है। कई गाँव आज भी इंटरनेट, मोबाइल नेटवर्क और अन्य संचार साधनों से वंचित हैं यह असमानता, उपयोगकर्ता, अनुभव में विभिन्नता पैदा करती है और कुछ समुदायों को अवसरों से वंचित रखती है।

तकनीकी साक्षरता –बहुत से ग्रामीण लोग तकनीकी जानकारी को समझने में कठिनाई महसूस करते है। इसका कारण अशिक्षा या डिजिटल तकनीकों के प्रति अनेदृष्टि हो सकती है। यदि लोग संचार साधनों का उपयोग करना नहीं जानते,तो यह उनकी विकास प्रक्रिया में बाधक बन जाता है।

संरचनात्मक बाधाएँ–कई गाँवो में बुनियादी ढाँचे जैसे सडकें, बिजली आदि की कमी है, जिससे संचार नेटवर्क स्थापित करने में समस्या आती है। इन मुद्दों का समाधान किए बिना संचार के साधनों की पूर्ण क्षमता को नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

साहित्य का पुनरावलोकनः–

समाजशास्त्रीय श्यामाचरण दूबे ने अपने अध्ययन communication innovation and planned change in india (1964) में यह पाया है कि ग्रामीण क्षेत्र में सूचना सम्प्रेषण के स्वतंत्र तरीके है। प्रारम्भ में संचार के वृहद साधनों के द्वारा सूचनाए ग्रामीण समुदाय के अभिजात्य वर्ग तक पहुँचती है। तत्पश्चात गाँव के सामान्य व्यक्तियों को हस्तान्तरित होती है। नवीन प्रशासनिक संरचना एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं ने सूचना सम्प्रेषण को ग्रामीण परिवेश में नवीन स्वरूप प्रदान किया सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रति जागरूकता का अध्ययन करते हुए ये विदित हुआ कि ग्रामीण व्यक्ति किन कार्यक्रमों को सरकारी कार्यक्रम मानता है।

J.E Kilvin,Prodipto Roy,Frederick.E Fligel and Lalit K.Sen ने अपने अध्ययन "communication in india experiments in introducting change"(1940) में भारत और कास्टारिका के पूर्व अध्ययन के निष्कर्षों की पुनः जाँच की है।इस तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा खेती के तरीके, स्वास्थ्य संबंधी आदते और परिवार नियोजन के संबन्ध में आँकडे एकत्रित किए गए। इस अध्ययन के द्वारा यह पाया गया कि 1964 और 1967 के परिणामों में कोई विशेष परिवर्तन नही है। मुख्य परिवर्तन में पाया गया कि जिस ग्राम में रेडियों, क्लब के नवीन ज्ञान का संचार किया गया । जिसमें साक्षरता केन्द्र के ग्राम की तुलना में तुलनात्मक रूप से अधिक परिवर्तन हुआ था ।

UNESCO के द्वारा प्रायोजित अध्ययन Diffuion of innovation in rural societies (1968) के द्वारा दर्शाया गया कि कृषि के क्षेत्र में नवीन अविष्कारों एवं नवीन प्रविधियों को अपनाया जाना केवल आविष्कार और प्रविधि की महत्ता एवं उपयोगिता पर ही आधारित नहीं वरन इसके अपनाने के मार्ग में ग्रामीण समुदाय की परम्परागत सामाजिक संरचना स्तरीकरण और परम्परागत मूल्य एवं विश्वास महत्वपूर्ण प्रभाव डालते है।

Y.B.Damle ने अपने अध्ययन "communication of modern ideas and knowledge" (1968) के द्वारा सात गाँवों में आधुनिक विचारों और नवीन ज्ञान के संचारण का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के द्वारा

राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियाँ, राष्ट्रीय नीति, विश्व की राजनीतिक घटनाओं जाति और धर्म के संबन्ध में नवीन दृष्टिकोण मनोरंजन को अपनाया गया।

C.R.Prasad Rao and K. Ranga Rao ने अपने अध्ययय "village communication channels"(1966) में आन्ध्र प्रदेश के तीनों ग्रामों में सूचना सम्प्रेषण के माध्यमों का अन्वेषण किया। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में संचार के तीन प्रमुख नगरीय सम्पर्क, प्रसाद अभिकरणों से सम्पर्क और संचार के वृहद साधनों का ग्रामीण जीवन पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पडा है। उच्च जाति और सम्पन्न वर्ग के कृषक प्रसार सेवाओं से अधिक प्रभावित हुए है। रेडियों के प्रसार का प्रभाव संचार के द्वारा ही सम्भव है।

Paul Hartmann, B.R.Patil, Anita Dighe ने अपने अध्ययन "The mass media and village life"-An Indian Study (1989)तीसरा दुनिया विशेष रूप से भारत के सन्दर्भ में संचार माध्यमों के विकास की प्रक्रिया पर पडने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया है।ये अध्ययन दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश के मन्दुर गाँव और केरल के पेरारूर गाँव और पश्चिम बंगाल के राना बंदा ग्राम के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट किया है कि संचार के साधनों का इच्छित सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करने में विशेष स्थान हैं इस अध्ययन के द्वारा इस बात पर भी बल दिया गया कि संचार प्रक्रियाओं के स्थान पर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित सम्प्रेषण की प्रविधि अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी है।

G.W.Chappel ने अपनें अध्ययन "communication and national development A Narrative Perspective" (1990)के द्वारा इस बात पर बल दिया है कि विकास की प्रक्रिया में संचार माध्यमों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। विकास प्रशासन में संलग्न कर्मियों को नवीन कार्यक्रमों और नीतियों के संचारण के लिए संचार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

D.P. Saxena ने अपने लेख "the social implications of communications"(1990) में इस बात पर बल दिया कि संचार माध्यमों को जनता की आशा और अभिरूचियों में इस प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न करना चाहिए, कृषि विकास कार्यक्रमों विशेष रूप युवा,महिला और कृषि विकास से संबन्धित कार्यक्रमों को भली भॉति लागू किया जा सके। जो क्षेत्रीय स्तर पर आमनें सामनें की परिस्थिति में नवीन संदेशो का सम्प्रेषण कर सके।

M.L.Khan, Kaushal Kumar ने अपनी पुस्तक studies in modern mass media (vol-3)के प्रथम अध्याय communication and rural change s in third world में एशिया के देशों में विकास कार्यक्रम से संचार के अध्ययन से संबन्धित शोध प्रविधियों का मूल्याकंन किया उनकी मान्यता हैं कि संचार माध्यमों की प्रभावशीलता के अध्ययन के लिए पाश्चात्य देश में विकसित शोध प्रविधि उपयुक्त नहीं है। संचार के माध्यमों और विकास कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता और सहभागिता के विश्लेषण के लिए ऐसी उपयुक्त शोध पद्धति का विकास किया जाना चाहिए जो एशिया के परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुकूल हो।

निष्कर्षः–

ग्रामीण पुनर्निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न पहलुओं का समावेश होता है, जिसमें सामाजिक–आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक भागीदारी शामिल है इस प्रक्रिया में संचार के साधनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि संचार के माध्यम से ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाना, सूचनाओं का प्रसार करना, जागरुकता पैदा करना और उनकी सहभागिता को प्रोत्साहित करना, ग्रामीण पुनर्निर्माण की सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों की प्रभावशीलता को बढाने का कार्य केवल एक तकनीकी आवश्यकता नही है, बल्कि यह समाज में समावेशिता और आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है ग्रामीण पुनर्निर्माण एक

बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास करना हैं इसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय और बुनियादी ढाँचे का विकास शामिल है यह प्रक्रिया न केवल गाँवों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए अति आवश्यक है, बल्कि राष्ट्रीय विकास के लिए भी आवश्यक है। ग्रामीणों को नई जानकारी और तकनीकों तक पहुँचने, अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं को व्यक्त करने और विकास प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने में मदद करते है। संचार के साधनों के माध्यम से ग्रामीणों को शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, स्वच्छता, पर्यावरण और अन्य महत्वपूर्ण विषयों के बारे में जागरूक किया जा सकता है। ग्रामीण पुनर्निर्माण में विभिन्न प्रकार के संचार साधनों का उपयोग किया जा सकता है, जिनमें शामिल है पारम्परिक साधन जैसे लोकगीत, नाटक, कठपुतली शो, धार्मिक उपदेश, नुक्कड नाटक, सामुदायिक बैठके आदि। तथा आधुनिक साधन के रुप में रेडियों, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाए, इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया इत्यादि।संक्षेप में संचार के साधन ग्रामीण पुनर्निर्माण में अनिवार्य भूमिका निभाते है उनका उपोग समुदायों को सशक्त बनाने में, सूचनाओं का प्रसार करने में, जागरुकता पैदा करने, और भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए किया जा सकता है। इससे ग्रामीण समुदाय अपने पुनर्निर्माण के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं और एक अधिक समावेशी एवं टिकाऊ भविष्य का निर्माण कर सकते है।

सुझावः–

लक्षित दर्शको की पहचानः–संचार के साधनों का उपयोग करने से पहले, यह महत्वपूर्ण है कि आप अपने लक्षित दर्शको की पहचान करे। उनकी उम्र, शिक्षा, भाषा और सामाजिक–आर्थिक स्थिति के आधार पर आप यह निर्धारित कर सकते है कि कौन से संचार साधन उनके लिए सबसे प्रभावी होंगे।

सहभागीदृष्टिकोण :–ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों की प्रभावशीलता को बढाने के लिए आप सहभागी दृष्टिकोण अपनाएं। इसका मतलब है कि आपको ग्रामीण समुदायों को संचार प्रक्रिया में सक्रिय रुप से शामिल करना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के संचार साधनों का उपयोग :–ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों की प्रभावशीलता को बढाने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि आप विभिन्न प्रकार के संचार साधनों का प्रयोग करे। पारंपरिक संचार साधन के साथ–साथ आपको आधुनिक संचार साधनों जैसे कि रेडियों, टेलीविजन, और इंटरनेट का भी उपयोग करना चाहिए।

स्थानीय भाषा और संस्कृति का उपयोग :– ग्रामीण समुदायों के साथ प्रभावी ढंग से संचार करने के लिए,यह महत्वपूर्ण है कि आप उनकी स्थानीय भाषा और संस्कृति का प्रयोग करें।

मूल्यांकन और सुधार :– ग्रामीण पुनर्निर्माण में संचार के साधनों की प्रभावशीलता को मापने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि आप नियमित रुप से मूल्यांकन करे।

References:-

- Fred Fedler: An introduction of the mass media. Hacourt Brace, Jounanovich. Inc. New Yark, 1978.
- Rogers E.M. Floyd Shoemaker : communication of innovations (Across cultural Approach. The free press, new yark , 1971)
- Berld k devid : the process of communication, Hart pinehart and wistan, new yark, 1960.
- Smith, J. communication of rural development: A comprehenshive Guide. Rural development press (2020)
- Jones, M. and Brown, L. (Eds.).(2018).Communication Media in rural Development.

- Sharma, A. (2019).Bridging the Gap : Communication strategies for rural Development.
- Reddy, K.R. (2021). Digital inclusion in rural india: opportunities and challenges.
- Patel,s. (2017). Empowering rural communities : The role of participatory communication.
- Singh, R. (2023)Traditional media and modern technologies: A synergistic Approch.
- Kumar,V.(2020) Gender and communication in rural development : A case study approach.
- Mehta,L.(2018). The power of storytelling: using narrative for social change in rural areas.
- Joshi,P. (2022). Evaluating communication programmes for rural development : A Practical guide.
- Chowdhury, A.(2019). Communication and sustainable livelihoods in rural india.
- Bhattacharya, B.(2021).Mobile technology and rural transformation : A Communication perspective.
- Rao, N. (2020) local knowledge and communication for rural development : integrating tradional practices.
- Rogers, E. M. (1983).diffusion of innovations.
- Schramm, W.(1977) mass media and national development.
- M.S.swaminathan. information and communication technology and rural development.
- https : // www. undp. org/
- https : // nirdp .org. in
- https : // rural. gov. in
- https//www.worldbank.org/en/country/india

महिला सशक्तिकरण में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका : (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

श्रवण कुमार पटेल
शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

प्रो. तेज बहादुर सिंह
समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

सारांशः

महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज और राष्ट्र के विकास के लिए अनिवार्य है, और शिक्षा इसकी सबसे मजबूत आधारशिला है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए बनाई गई है, जिससे महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर और सशक्त बनाया जा सके। यह नीति लैंगिक समानता, डिजिटल शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, आर्थिक सहायता और सुरक्षित शैक्षणिक वातावरण जैसे कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर देती है।इस नीति के तहत 'जेंडर इन्क्लूजन फंड', छात्रवृत्ति योजनाएं, डिजिटल लर्निंग, मल्टीपल एंट्री–एग्जिट सिस्टम और कौशल विकास कार्यक्रमों को लागू किया गया है, जिससे लड़कियों को शिक्षा और रोजगार के बेहतर अवसर मिल सकें। हालांकि, इसके क्रियान्वयन में सामाजिक रूढ़िवादिता, आर्थिक असमानता, डिजिटल संसाधनों की कमी, सुरक्षा से सम्बन्धित एवं चिंताएं और रोजगार के सीमित अवसर जैसी कई चुनौतियाँ भी हैं।इन बाधाओं को दूर करने के लिए सामाजिक जागरूकता, बुनियादी सुविधाओं का विकास, डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता और महिलाओं के लिए विशेष कौशल कार्यक्रम जैसे समाधान भी आवश्यक हैं। यदि इस नीति को प्रभावी रूप से लागू किया जाए, तो यह महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने, उनके सामाजिक उत्थान और राष्ट्र के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। NEP 2020 केवल शिक्षा सुधार नहीं, बल्कि महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

मुख्य शब्द– सशक्तिकरण, कौशल विकास, क्रियान्वयन, डिजिटल संसाधन

प्रस्तावनाः

महिला सशक्तिकरण समाज के समग्र विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह केवल महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें शिक्षा, रोजगार, निर्णय लेने की क्षमता और सामाजिक समानता प्रदान करने की प्रक्रिया से भी सम्बन्धित है। भारत में, शिक्षा को महिलाओं के सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी साधन माना गया है। इस दिशा में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 एक महत्वपूर्ण कदम है, जो शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार लाकर महिलाओं को सशक्त बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य सर्वसमावेशी, समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है, जिससे आधी आबादी महिलाओं को आत्मनिर्भर और सक्षम बनाया जा सके। यह नीति महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने, उन्हें उच्च शिक्षा और कौशल विकास से जोड़ने एवं सामाजिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करने पर विशेष ध्यान देती है। इसके माध्यम से महिलाओं को डिजिटल शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, शोध और नवाचार में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इसके अलावा, यह नीति लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए 'जेंडर इन्क्लूजन फंड' की स्थापना, लड़कियों के लिए छात्रवृत्ति कार्यक्रम, और शिक्षण संस्थानों में सुरक्षित एवं अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराने जैसे प्रावधान करती है। इस नीति का उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर ''सबका साथ, सबका विकास'' के सिद्धांत को साकार करना है। इस शोधपत्र में विद्यार्थी द्वारा इन सभी अयामों को विश्लेषित कर निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) का मुख्य उद्देश्य समावेशी और समान शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना है, जिससे महिलाओं को शिक्षा और कौशल के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाया जा सके। इसका अर्थ है कि यह नीति महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास को सुनिश्चित करती है।महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिलाओं को ऐसी शिक्षा और अवसर प्रदान करना है, जिससे वे अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं ले सकें, आत्मनिर्भर बन सकें और समाज में समान अधिकार प्राप्त कर सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न सुधार लेकर आई है, जैसे जेंडर इन्क्लूजन फंड की स्थापना, लड़कियों के लिए छात्रवृत्ति योजनाएं, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का विस्तार एवं डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देना इत्यादि।

इसका सीधा अर्थ यह है कि NEP 2020 शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर रही है, जिससे वे आत्मनिर्भर बनकर राष्ट्र निर्माण में अपनी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें। महिला सशक्तिकरण के लिए एक क्रांतिकारी कदम है, जो उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

- **महिला सशक्तिकरण एवं शिक्षा पर विभिन्न समाजशास्त्रियों ने निम्न प्रकार से अपना अभिमत व्यक्त किया है।**

1. **एमिल दुर्खीम** के कथन को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि शिक्षा समाज में नैतिक मूल्यों और समानता को बढ़ावा देती हैइस प्रकार महिलाओं में बढ़ती की शिक्षा उन्हे समाज में अधिक संतुलित और सशक्त बनता है।
2. **कार्ल मार्क्स** के अभिमत को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि आर्थिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जब महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होंगी, तभी वे समाज में सशक्त होगी।
3. **मैक्स वेबर** के कथन को दृष्टिगत करते हुए यह उदृत करना समीचीन होगा कि''सामाजिक प्रतिष्ठा और अवसरों में समानता लाकर महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है, जिससे वे अपनी भूमिका को स्वतंत्र रूप से निभा सकती है।
4. **पियरे बोरदियू** के कथन स्पष्ट है कि शिक्षा सांस्कृतिक पूंजी है, जो महिलाओं को सशक्त बनाकर समाज में उनकी स्थिति को मजबूत करती है।
5. **बेट्टी फ्रीडन** के व्यक्तव्य से स्पष्ट है कि महिलाओं की शिक्षा और जागरूकता ही उन्हें परंपरागत जंजीरों से मुक्त कर सकती है।
6. **सिमोन द बोउवार** के कथन से स्पष्ट है कि 'महिला पैदा नहीं होती, बल्कि उसे समाज के ढांचे में ढालकर बनाया जाता है। इस प्रकार उनके उत्थान एवं उत्कर्ष शिक्षा महती भूमिका अदा कर सकती है।

उद्देश्य

1. सर्वसमावेशी और समान शिक्षा– सभी वर्गों की महिलाओं को समान एवं गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करना।

2. लैंगिक समानता को बढ़ावा– लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए 'जेंडर इन्क्लूजन फंड' और छात्रवृत्ति योजनाएं लागू करना।

3. कौशल विकास और व्यावसायिक शिक्षा– महिलाओं को स्वरोजगार एवं रोजगार सृजन के लिए उनके अन्दर आवश्यक कौशल को विकसित कर सशक्त बनाना।

4. डिजिटल शिक्षा का प्रसार– ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा हेतु ऑनलाइन शिक्षा एवं डिजिटल संसाधनों तक पहुँच को आसान बनाना।

5. सुरक्षित एवं अनुकूल शैक्षणिक वातावरण– स्कूलों और उच्च शिक्षण संस्थानों में लड़कियों के लिए सुरक्षित शैक्षणिक वातावरण विकसित करने का प्रयास करना।

6. महिलाओं में नेतृत्व एवं निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना– महिलाओं को उच्च शिक्षा, शोध और प्रशासनिक भूमिकाओं में प्रोत्साहित करने हेतु प्रयास करना।

आवश्यकता एवं महत्व–

महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज और राष्ट्र के सतत विकास के लिए अनिवार्य है। यह केवल महिलाओं को अधिकार देने तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और निर्णय लेने में सक्षम बनाने की प्रक्रिया भी है। शिक्षा महिला सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी साधन है, क्योंकि यह महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर मजबूत बनाती है। भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 इसी दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है, जो शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है।

1. लैंगिक असमानता को दूर करना: भारतीय समाज में वर्तमान समय में भी कई क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता देखने को मिलती है। शिक्षा के माध्यम से इस असमानता को कम या समाप्त किया जा सकता है, जिससे महिलाओं को समान अवसर मिलें और वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें।

2. आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना: शिक्षा के बिना महिलाएं आत्मनिर्भर नहीं बन सकतीं। जब महिलाएं शिक्षित होती हैं, तो उन्हे रोजगार प्रदान करने के अवसर भी होते है।, उद्यमिता की ओर बढ़ सकती हैं और आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी बन सकती हैं। इससे उनका आत्मसम्मान बढ़ता है और वे अपने परिवार और समाज के विकास में योगदान कर सकती हैं।

3. बाल विवाह और अन्य कुप्रथाओं को समाप्त करना: अशिक्षा और जागरूकता की कमी के कारण भारत में अब भी कई जगहों पर बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयां प्रचलित दृष्टिगत हो रही हैं। शिक्षित महिलाएं इन कुप्रथाओं का विरोध कर सकती हैं और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ वातावरण बना सकती हैं।

4. स्वास्थ्य और पोषण में सुधार: शिक्षित महिलाएं बेहतर स्वास्थ्य और पोषण की समझ रखती हैं, जिससे वे अपने परिवार को स्वस्थ रखने में सक्षम हो सकती हैं। मातृ मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर को कम करने में भी महिला शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

5. राजनीतिक और सामाजिक भागीदारी को बढ़ावा देना: शिक्षित महिलाएं न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं, बल्कि वे समाज और राजनीति में सक्रिय भूमिका भी निभाती हैं। इससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती है और समाज में उनकी स्थिति मजबूत होती है। इसका जीवन्त उदाहरण हैः नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023 है।

महत्व–

NEP 2020 महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान करती है। इसके मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं–

1. जेंडर इन्क्लूजन फंडः सरकार ने 'जेंडर इन्क्लूजन फंड' की घोषणा की है, जिसका उद्देश्य समाज के हाशिए पर मौजूद महिलाओं को शिक्षा का अवसर प्रदान करना है। यह फंड लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने और उनकी उच्च शिक्षा को सुगम बनाने में मदद करेगा।

2. व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा पर जोरः महिलाओं को केवल पारंपरिक शिक्षा तक सीमित न रखते हुए, उन्हें व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा से जोड़ने की पहल की गई है। इससे वे विभिन्न क्षेत्रों में स्वरोजगार और रोजगार के अवसर प्राप्त कर सकेंगी।

3. डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन लर्निंगः NEP 2020 में ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, डिजिटल क्लासरूम और ओपन लर्निंग संसाधनों को बढ़ावा दिया गया है। इससे ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों की लड़कियां भी उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।

4. सुरक्षित और समावेशी शिक्षा वातावरणः स्कूलों और कॉलेजों में लड़कियों के लिए सुरक्षित वातावरण सुनिश्चित करने के लिए शारीरिक सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य समर्थन और यौन उत्पीड़न के खिलाफ सख्त नियम बनाए गए हैं।

5. शोध और उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारीः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लड़कियों को शोध, विज्ञान, इंजीनियरिंग, गणित और प्रबंधन के क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसके लिए विशेष छात्रवृत्ति और अनुदान की व्यवस्था की गई है।

6. मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टमः कई बार सामाजिक कारणों से लड़कियों को पढ़ाई बीच में छोड़नी पड़ती है। NEP 2020 का मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम उन्हें दोबारा शिक्षा में लौटने का अवसर देता है, जिससे उनकी पढ़ाई बाधित न हो।

चुनौतियाँः

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन इसे प्रभावी रूप से लागू करने में कई चुनौतियाँ भी हैं।

1. लैंगिक भेदभाव और सामाजिक रूढ़िवादिता– कई ग्रामीण और पारंपरिक समाजों में अब भी लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती।बाल विवाह, दहेज प्रथा और महिलाओं की शिक्षा के प्रति नकारात्मक मानसिकता बड़ी बाधाएँ हैं।

2. आर्थिक बाधाएँ– गरीब और वंचित परिवारों की लड़कियां अक्सर उच्च शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।स्कूल छोड़ने की दर (Dropout Rate) विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है।

3. सुरक्षा और परिवहन की समस्या– लड़कियों की शिक्षा के लिए सुरक्षित स्कूल और कॉलेज की कमी।कई ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल दूर होने के कारण लड़कियां शिक्षा जारी नहीं रख पातीं।

4. डिजिटल विभाजन (Digital Divide)– ऑनलाइन शिक्षा के बढ़ते उपयोग के बावजूद, कई लड़कियों के पास स्मार्टफोन, लैपटॉप और इंटरनेट की सुविधा नहीं है।ग्रामीण इलाकों में डिजिटल शिक्षा तक पहुंच सीमित है।

5. शिक्षा की गुणवत्ता और संसाधनों की कमी– कई सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में योग्य शिक्षकों, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की कमी है।लड़कियों के लिए विशेष शौचालय और स्वच्छता सुविधाओं की अनुपलब्धता भी एक समस्या है।

6. रोजगार के सीमित अवसर– शिक्षित महिलाओं के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर और समान वेतन की चुनौती बनी हुई STEM (Science, Technology, Engineering, Mathematics) और व्यावसायिक शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है।

समाधानः

1. लैंगिक भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करना– जागरूकता अभियानों और सरकारी पहल के माध्यम से समाज में महिलाओं की शिक्षा के महत्व को बढ़ावा देना।माता–पिता और समुदायों को प्रोत्साहित करना कि वे लड़कियों को उच्च शिक्षा तक पहुंचने में सहयोग दें।

2. आर्थिक सहायता और छात्रवृत्ति योजनाएं– गरीब और वंचित तबके की लड़कियों के लिए विशेष छात्रवृत्ति, फ्री शिक्षा और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।'जेंडर इन्क्लूजन फंड' का प्रभावी क्रियान्वयन करना।

3. सुरक्षा और परिवहन सुविधाओं का विस्तार– स्कूल–कॉलेजों तक सुरक्षित परिवहन की सुविधा बढ़ाना।लड़कियों के लिए शिक्षण संस्थानों में सुरक्षित और अनुकूल वातावरण सुनिश्चित करना।

4. डिजिटल शिक्षा तक पहुंच बढ़ाना– ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना।लड़कियों को मुफ्त स्मार्टफोन और टैबलेट जैसी तकनीकी सुविधाएं प्रदान करना।

5. शिक्षा की गुणवत्ता सुधारना– शिक्षकों के प्रशिक्षण और स्कूलों में बुनियादी सुविधाएं बढ़ाने पर ध्यान देना।विज्ञान, गणित और व्यावसायिक शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करना।

6. रोजगार के अवसर बढ़ाना– महिलाओं के लिए विशेष स्किल डेवलपमेंट प्रोग्राम शुरू करना। STEM (Science, Technology, Engineering, Mathematics) और उद्यमिता में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्षः

महिला सशक्तिकरण समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का एक महत्वपूर्ण आधार है। शिक्षा इस सशक्तिकरण की कुंजी है, क्योंकि यह महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर उन्हें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से मजबूत करने में सहायक होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है, जो महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से स्वतंत्र और सशक्त बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है। इस नीति के तहत लैंगिक समानता, डिजिटल शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, आर्थिक सहायता और सुरक्षित शिक्षा वातावरण जैसे महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। **'जेंडर इन्क्लूजन फंड', छात्रवृत्ति योजनाएं, मल्टीपल एंट्री–एग्जिट सिस्टम और कौशल विकास** कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के बेहतर अवसर प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इससे वे केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित न रहकर विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्यमिता और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में भी अपनी पहचान बना सकेंगी। हालांकि, महिला सशक्तिकरण के इस मिशन में कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे **सामाजिक रूढ़िवादिता, आर्थिक बाधाएँ, डिजिटल विभाजन, सुरक्षा की कमी, शिक्षा की गुणवत्ता में अंतर** और **रोजगार के सीमित अवसर**। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए सरकार, समाज और व्यक्तिगत स्तर पर मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है। शिक्षा के प्रति जागरूकता, बुनियादी सुविधाओं का विकास, डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता और रोजगार के नए अवसर सुनिश्चित करना इस नीति को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक कदम हैं। NEP 2020 का उद्देश्य केवल महिलाओं को शिक्षित करना नहीं, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर और सशक्त बनाना है। जब महिलाएँ शिक्षित होंगी, तो वे न केवल अपने जीवन को बेहतर बनाएंगी, बल्कि अपने

परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देंगी। एक शिक्षित महिला आने वाली पीढ़ियों को भी शिक्षित और सशक्त बनाने में सहायक होती है, जिससे पूरे समाज का उत्थान होता है।

अंततः, **"शिक्षित महिला, सशक्त समाज"** का लक्ष्य तभी प्राप्त होगा जब शिक्षा नीति का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाएगा। यदि महिलाओं को समान अवसर और संसाधन प्रदान किए जाएँ, तो वे हर क्षेत्र में आगे बढ़ सकती हैं और भारत को एक समतामूलक, आत्मनिर्भर और प्रगतिशील राष्ट्र बनाने में अहम भूमिका निभा सकती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 न केवल शिक्षा सुधार की नीति है, बल्कि यह महिलाओं के लिए आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Reference)

1. Singh, R- (2018)- Women empowerment through education in India. Oxford University Press
2. Agarwal, P., & Saha, D- (2021). The role of education in women's empowerment: A policy perspective. Journal of Social Sciences, 35(4), 112-125-
3. Ministry of Education- (2020). National education policy 2020:Empowering women through education. Government of India.
4. National Commission for Women. (2021). Women^s rights and education in India-
5. Sharma,A. (2022, March 10) How NEP 2020 is shaping women's education. The Hindu.Retrieved
6. Joshi, R. (2020). Gender equality in education: Challenges and solutions. In Proceedings of the International Conference on Gender Studies (pp- 55&63). Cambridge University Press.
7. Bhatt, S. (2021, June 5). The future of women's education in India. The Better India.
8. Verma, K. (2019). The impact of higher education on women's empowerment in India (Doctoral dissertation). University of Delhi.
9. Mehta, A. (2018). The intersection of gender and education policies. In R.Gupta & S. Sharma (Eds.), Women and society in contemporary India (pp.134-150). SAGE Publications.
10. Tiwari, N. (2020 August 15). How digital education can bridge the gender gap. NDTV News

सामाजिक असमानता: एक सतत चुनौती जिसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने और बढ़ाया

डॉ. प्रतिमा श्रीवास्तव
असि० प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
सुधाकर महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

सारांश (Abstract):
यह शोध पत्र सामाजिक असमानता की एक दीर्घकालिक, बहुआयामी और बहुस्तरीय चुनौती के रूप में गहराई से समीक्षा करता है, जिसे आधुनिक तकनीकों—विशेषतः कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI)—ने और अधिक जटिल एवं गंभीर बना दिया है। जबकि AI को मानवता के हित में एक क्रांतिकारी तकनीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, इसके वर्तमान स्वरूप और अनुप्रयोगों ने सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में मौजूद असमानताओं को और अधिक तीव्र करने का कार्य किया है। इस शोध में यह स्थापित किया गया है कि तकनीकी प्रगति और नवाचार की यह नई लहर केवल उन्हीं वर्गों के लिए लाभकारी सिद्ध हो रही है जिनके पास संसाधनों, डिजिटल साक्षरता, और नेटवर्क का समुचित लाभ उठाने की क्षमता है। दूसरी ओर, समाज के वंचित, ग्रामीण, अशिक्षित, महिला और अल्पसंख्यक वर्ग इससे वंचित रह जा रहे हैं, जिससे सामाजिक न्याय और समानता के लक्ष्यों से दूरी बढ़ती जा रही है।
AI का प्रभाव रोजगार, शिक्षा, भाषाई पहुँच, लिंग आधारित प्रतिनिधित्व, और डिजिटल तकनीकों तक पहुँच जैसे कई प्रमुख क्षेत्रों में देखा जा सकता है। रोजगार के क्षेत्र में, पारंपरिक नौकरियाँ तेजी से समाप्त हो रही हैं और AI आधारित नई नौकरियों के लिए उच्च तकनीकी कौशल की आवश्यकता है, जो अधिकांश निम्न आयवर्ग और ग्रामीण जनसंख्या के पास नहीं है। इसके परिणामस्वरूप "skill divide" गहराता जा रहा है और बेरोजगारी की दर में वृद्धि हो रही है। शिक्षा के क्षेत्र में, AI आधारित शिक्षण प्लेटफार्मों की पहुँच केवल उन्हीं तक सीमित है जिनके पास तेज़ इंटरनेट, स्मार्ट डिवाइस और अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान है, जबकि ग्रामीण और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग इस सुविधा से वंचित हैं।
AI प्रणालियाँ उस डेटा पर आधारित होती हैं जिस पर उनका प्रशिक्षण हुआ होता है। यदि वह डेटा पहले से ही पक्षपाती, जातिवादी, लिंगभेदी या क्षेत्रीय पूर्वाग्रह से ग्रसित हो, तो AI भी उन्हीं पूर्वग्रहों को आत्मसात करता है। उदाहरणस्वरूप, भर्ती, अपराध मूल्यांकन, ऋण स्वीकृति जैसी प्रक्रियाओं में AI आधारित निर्णय अक्सर सामाजिक रूप से हाशिये पर मौजूद वर्गों के लिए बाधक सिद्ध होते हैं। भाषाई असमानता भी एक महत्वपूर्ण पहलू है, जहाँ अंग्रेजी-आधारित AI मॉडल अन्य भाषाओं के उपयोगकर्ताओं के साथ न्याय नहीं कर पाते, जिससे गैर-अंग्रेज़ी भाषी वर्ग डिजिटल रूप से और पीछे रह जाता है।
यह शोध माध्यमिक आंकड़ों, अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों और केस स्टडीज़ के आधार पर यह निष्कर्ष निकालता है कि यदि AI के विकास और प्रयोग में नैतिकता, पारदर्शिता, विविधता और समावेशन के सिद्धांतों को प्राथमिकता नहीं दी गई, तो यह तकनीक सामाजिक असमानता को कम करने की बजाय उसे और अधिक जटिल बना देगी। अंततः, यह शोध नीति निर्माण, तकनीकी विकास और सामाजिक न्याय के संगम पर खड़े होकर यह अपील करता है कि AI का उपयोग केवल तकनीकी दक्षता के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और समान अवसरों की प्राप्ति के लिए किया जाए। शोध में विभिन्न व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं जो एक समावेशी AI-आधारित समाज की स्थापना में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

मुख्य शब्द: सामाजिक असमानता, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल विभाजन, AI में पक्षपात, रोजगार असमानता, शैक्षिक असमानता, AI नीति, तकनीकी न्याय, भारत

1. प्रस्तावना (Introduction):

सामाजिक असमानता एक दीर्घकालिक समस्या रही है, जो आय, शिक्षा, स्वास्थ्य, जाति, लिंग और वर्ग के विभिन्न स्तरों पर समाज में असमान अवसर उत्पन्न करती है। 21वीं सदी में तकनीकी प्रगति के साथ-साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने जहाँ एक ओर मानव जीवन को सरल बनाया है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक असमानता को और गहराने का माध्यम बनती जा रही है। विशेषकर AI के प्रयोग से जब तकनीक केवल कुछ विशिष्ट वर्गों तक सीमित रह जाती है, तो समाज के वंचित वर्ग और पीछे छूट जाते हैं। AI में उपयोग होने वाले डेटा सेट यदि पहले से ही पक्षपातपूर्ण हैं, तो परिणाम भी असमानता को और प्रबल करते हैं।

तकनीक का उद्देश्य समावेशी विकास होना चाहिए, परंतु जब तकनीक का लाभ केवल शिक्षित, शहरी या उच्च आय वर्ग को मिलता है, तो यह आर्थिक और सामाजिक विभाजन को बढ़ा देता है। डिजिटल युग में AI एक शक्ति बन चुकी है, परंतु उस शक्ति का प्रयोग यदि असंतुलित हो, तो यह समाज के भीतर खाइयाँ और बढ़ा सकता है।

2. शोध उद्देश्य (Research Objectives):

- यह अध्ययन करना कि AI सामाजिक असमानता को किस प्रकार प्रभावित करता है।
- AI के कारण उत्पन्न रोजगार के अवसरों और क्षमताओं में असमानता का विश्लेषण करना।
- समाज के विभिन्न वर्गों पर AI के प्रभाव की तुलना करना।
- यह समझना कि AI तकनीकों में निहित पूर्वाग्रह किस प्रकार वंचित समुदायों को प्रभावित करते हैं।
- AI के समावेशी और न्यायसंगत उपयोग हेतु संभावित नीतिगत हस्तक्षेपों की पहचान करना।

3. परिकल्पना (Hypothesis):

मुख्य परिकल्पना: "AI तकनीक का विकास सामाजिक असमानता को कम करने के बजाय उसे और अधिक गहरा करने में सहायक बन रहा है।"

सहायक परिकल्पनाएँ:

- AI आधारित निर्णय प्रक्रिया में निहित पूर्वाग्रह समाज के वंचित वर्गों के लिए बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।
- AI का लाभ मुख्यतः उन व्यक्तियों और समूहों को मिल रहा है जिनके पास डिजिटल साक्षरता, संसाधन और तकनीकी पहुँच है।

4. शोध विधि (Research Methodology):

शोध प्रकार: विवरणात्मक (Descriptive)

डाटा संग्रह: माध्यमिक स्रोतों से, जैसे – सरकारी रिपोर्ट, अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की रिपोर्ट, शोध लेख, और तकनीकी आँकड़े।

डेटा विश्लेषण उपकरण: तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis), केस स्टडी पद्धति

क्षेत्रीय सीमा: भारत और अन्य विकासशील देश

5. आंकड़ा और विश्लेषण (Data and Analysis):

AI और सामाजिक असमानता के विविध पहलुओं का विश्लेषण

(क) रोज़गार और AI: एक दोहरी चुनौती

AI और ऑटोमेशन के कारण पारंपरिक नौकरियों में भारी बदलाव आया है। विश्व आर्थिक मंच (WEF) की "Future of Jobs Report 2023" के अनुसार, AI और मशीन लर्निंग के कारण 85 मिलियन नौकरियाँ समाप्त हो सकती हैं, जबकि लगभग 97 मिलियन नई नौकरियाँ उत्पन्न होंगी। हालांकि यह अंतर सकारात्मक प्रतीत होता है, परन्तु इन नई नौकरियों के लिए अत्याधुनिक तकनीकी दक्षताओं की आवश्यकता है जैसे – डेटा एनालिटिक्स, प्रोग्रामिंग, क्लाउड कंप्यूटिंग, साइबर सुरक्षा इत्यादि।

भारत में जहाँ लगभग 90% श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, वहाँ AI से जुड़ी नौकरियाँ उनके लिए सहज नहीं हैं। छोटे दुकानदार, कृषि मजदूर, निर्माण कार्यकर्ता, और घरेलू कामगार जैसी श्रेणियाँ तकनीकी कौशल की दृष्टि से पिछड़ी हैं। इसलिए, यह "skill shift" आर्थिक असमानता को और बढ़ा देता है।

इसके अतिरिक्त, AI का प्रभाव लिंग आधारित रोजगार असमानता पर भी दिखता है। जैसे-जैसे AI आधारित ऑटोमेशन बढ़ रहा है, वैसे-वैसे महिला श्रमिक, विशेषकर सेवा क्षेत्र (जैसे BPO, बैंकिंग काउंटर, डाटा एंट्री) से बाहर हो रही हैं। AI के कारण "रिप्लेसमेंट थ्रेट" महिलाओं के लिए अधिक तीव्र है क्योंकि उन्हें पुनः प्रशिक्षित करने की नीति या अवसर सीमित हैं।

(ख) शैक्षिक पहुँच और डिजिटल विभाजन

भारत में डिजिटल पहुँच में भारी अंतर है। NSSO की 2022 की रिपोर्ट के अनुसार, ग्रामीण भारत में 70% से अधिक घरों में कंप्यूटर उपलब्ध नहीं है। इंटरनेट की नियमित पहुँच केवल 27% लोगों के पास है। AI आधारित शिक्षा प्रणाली जैसे ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म्स – Byju's, Coursera, Unacademy – मुख्यतः उन्हीं छात्रों को लाभ देते हैं जिनके पास स्मार्टफोन, उच्च गति इंटरनेट, और अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान है।

शहरी-ग्रामीण विभाजन के अतिरिक्त, सामाजिक-आर्थिक स्तर भी AI शिक्षा में विभाजन का कारण बनता है। अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के छात्र सीमित संसाधनों और प्रेरणा के कारण AI शिक्षा में पिछड़ जाते हैं। शिक्षा नीति में AI पाठ्यक्रमों का समावेश तो किया गया है, परन्तु शिक्षक प्रशिक्षण, संसाधन वितरण और स्थानीय भाषा में उपलब्धता का अभाव स्पष्ट रूप से झलकता है।

इसके अलावा, निजी AI आधारित लर्निंग एप्स का लागत ढाँचा भी वंचित वर्गों के लिए अनुपयुक्त है। महंगे कोर्स, इंटरनेट डेटा की खपत और समय की प्रतिबद्धता उन छात्रों को बाहर रखती है जो आर्थिक रूप से संघर्षशील हैं या घरेलू कार्यों में व्यस्त रहते हैं।

(ग) AI में पक्षपात (Bias) और भेदभाव

AI की सबसे गंभीर चुनौती उसकी निष्पक्षता है। AI प्रणाली जिस डेटा पर आधारित होती है, वह यदि पहले से ही भेदभावपूर्ण है तो परिणाम भी उसी तरह पक्षपाती होंगे। जैसे:

- Amazon का हायरिंग टूल पुरुषों को वरीयता देता था।
- अमेरिका का "COMPAS" सॉफ्टवेयर अश्वेतों को उच्च अपराध जोखिम वाला बताता था।

भारत में यदि पुलिस विभाग, न्यायपालिका, या सरकारी लाभ वितरण में AI आधारित निर्णय प्रणाली का उपयोग होता है और यदि उसका प्रशिक्षण डेटा जातिगत, लिंग आधारित या क्षेत्रीय भेदभाव से ग्रस्त है, तो परिणाम वंचित समुदायों के खिलाफ ही जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि किसी जिले विशेष को "कमज़ोर" या "अपराध-प्रवण" मान लिया जाता है, तो वहाँ से आवेदन करने वालों को नौकरी या ऋण में प्राथमिकता नहीं दी जाती।

AI के इस पक्षपात को समझने के लिए पारदर्शिता, "explainability" और नियमित ऑडिट की आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश, वर्तमान में भारत में ऐसी नीतियाँ या संस्थाएँ सीमित हैं जो AI को जांच और संतुलन की प्रक्रिया में बाँध सकें।

(घ) भाषाई असमानता

भारत एक बहुभाषीय देश है जहाँ 22 अनुसूचित भाषाओं और सैकड़ों बोलियों का उपयोग होता है। AI टूल्स जैसे – Chatbots, Voice Assistants, Search Engines – मुख्यतः अंग्रेज़ी या वैश्विक भाषाओं में अधिक दक्ष होते हैं। इसके परिणामस्वरूप:

- ग्रामीण उपभोक्ता Google Assistant या Alexa का सही उपयोग नहीं कर पाते।
- किसान जो AI आधारित कृषि सलाह लेना चाहते हैं, वे भाषा अवरोध के कारण वंचित रह जाते हैं।

- स्थानीय सरकारी सेवाओं का डिजिटलीकरण यदि केवल अंग्रेजी आधारित होता है, तो आम जनता उससे लाभ नहीं ले पाती।

हिंदी, तमिल, बांग्ला, मराठी, तेलुगु जैसी भाषाओं में AI क्षमताएँ सीमित हैं। सरकार द्वारा विकसित "Bhashini" जैसे प्रयास इस दिशा में सराहनीय हैं, लेकिन इनकी पहुँच और प्रभावशीलता को व्यापक बनाना अभी शेष है।

(ङ) स्त्री और अल्पसंख्यक समुदायों की स्थिति

AI विकास और उपयोग में लैंगिक और जातिगत विविधता का अभाव है। MIT की एक रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक AI शोधकर्ताओं में केवल 22% महिलाएँ हैं। भारत में यह अनुपात और भी कम है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि AI आधारित उत्पाद महिलाओं की आवश्यकताओं को सही तरीके से नहीं पहचानते।

उदाहरण:

- फेस रिकग्निशन सॉफ़्टवेयर में महिलाओं और डार्क स्किन टोन वाले व्यक्तियों की पहचान की सटीकता पुरुषों और गोरी त्वचा वाले व्यक्तियों से कम पाई गई है।
- स्वास्थ्य AI टूल्स में महिलाओं की बीमारियों के लक्षणों की उपेक्षा होती है क्योंकि उनका प्रशिक्षण डेटा पुरुषों पर आधारित होता है।
- इसके अतिरिक्त, धार्मिक और जातिगत अल्पसंख्यक समुदायों की भी AI में भागीदारी कम है। न तो AI डेवलपमेंट में उनकी भागीदारी है, और न ही उनके अनुभवों और समस्याओं को प्रशिक्षण डेटा में शामिल किया जाता है। परिणामस्वरूप, वे डिजिटल युग में और अधिक अदृश्य हो जाते हैं।

(च) शहरी बनाम ग्रामीण अंतर

AI सेवाओं और टेक्नोलॉजी का एक बड़ा हिस्सा मेट्रो शहरों और विकसित शहरी केंद्रों तक सीमित है। स्मार्ट सिटी, डिजिटल हेल्थ, AI आधारित ट्रैफिक सिस्टम जैसी सुविधाएँ दिल्ली, मुंबई, बंगलौर में तो दिखती हैं, परन्तु छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में AI की पहुँच अत्यंत सीमित है।

इसके पीछे मुख्य कारण हैं:

- डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का अभाव
- बिजली और नेटवर्क कनेक्टिविटी की समस्याएँ
- तकनीकी साक्षरता की कमी

यदि यह असमानता बनी रही, तो तकनीकी रूप से दो भारत बन सकते हैं – एक डिजिटल समृद्ध भारत और दूसरा डिजिटल वंचित भारत।

6. सुधार हेतु रणनीतियाँ (Strategies for Inclusive AI):

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के प्रसार ने जहाँ एक ओर मानव क्षमताओं को व्यापक किया है, वहीं इसके दुष्प्रभावों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि AI का विकास और अनुप्रयोग सामाजिक दृष्टि से उत्तरदायी ढंग से न किया जाए, तो यह मौजूदा असमानताओं को और अधिक संस्थागत बना सकता है। निम्नलिखित रणनीतियाँ इस दिशा में सकारात्मक हस्तक्षेप के रूप में सुझाई जाती हैं:

(क) नीति निर्माण में सामाजिक विविधता की भागीदारी:

AI से संबंधित नीतियाँ यदि केवल तकनीकी विशेषज्ञों और कॉर्पोरेट संस्थाओं के मध्य केंद्रित रहेंगी, तो समाज के हाशिये पर मौजूद वर्गों की आवाज़ नदारद रह जाएगी। नीति निर्माण में समाजशास्त्री, मानवाधिकार विशेषज्ञ, महिला प्रतिनिधि, ग्रामीण समुदायों और

अल्पसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधियों को शामिल करना आवश्यक है। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि बनाई जा रही AI प्रणालियाँ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी और संवेदनशील हों।

(ख) तकनीकी डिज़ाइन में पूर्वाग्रहों की सक्रिय जाँच:

AI मॉडल तैयार करते समय उपयोग में लिए गए डेटा सेट्स की पूर्व जांच आवश्यक है ताकि उसमें मौजूद जातीय, लिंग, या क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों की पहचान हो सके। इस कार्य हेतु "Algorithmic Audit" जैसी प्रक्रियाओं को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। तकनीकी टीमों को 'Fairness by Design' सिद्धांत के अनुसार प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, जिससे वे आरंभ से ही समावेशी मॉडल विकसित करें।

(ग) शिक्षा में AI साक्षरता का समावेश:

AI की समझ केवल उच्च शिक्षा या इंजीनियरिंग संस्थानों तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। विद्यालय स्तर से ही विद्यार्थियों को AI की मूल अवधारणाओं, उसकी सामाजिक प्रासंगिकता, और नैतिक पहलुओं से परिचित कराया जाना चाहिए। इसके लिए स्थानीय भाषा में पाठ्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किए जाने चाहिए।

(घ) स्थानीय भाषाओं में AI समाधान:

भारत जैसे बहुभाषी देश में AI तभी प्रभावी हो सकता है जब वह हिंदी, तमिल, बंगाली, मराठी, ओड़िया, पंजाबी आदि भाषाओं में सुलभ हो। वर्तमान में अधिकांश चैटबॉट्स, वर्चुअल असिस्टेंट और मशीन लर्निंग टूल्स अंग्रेज़ी पर निर्भर हैं, जो गैर-अंग्रेज़ी भाषी वर्गों के लिए एक बाधा है। बहुभाषीय NLP (Natural Language Processing) मॉडल्स का विकास और संवर्धन आवश्यक है।

(ङ) महिला और अल्पसंख्यक नेतृत्व को प्रोत्साहन:

AI अनुसंधान और विकास संस्थानों में महिलाओं और सामाजिक रूप से वंचित समुदायों की भागीदारी सीमित है। इसे बढ़ाने के लिए विशेष छात्रवृत्ति, अनुसंधान अनुदान, और स्टार्टअप इनक्यूबेशन जैसी योजनाएँ शुरू की जानी चाहिए। इसके साथ ही AI कंपनियों के लिए "Diversity Benchmarking" को अनिवार्य किया जा सकता है ।

(च) ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों के लिए विशेष रणनीति:

भारत के सुदूरवर्ती और आदिवासी क्षेत्रों में AI का प्रभाव न्यूनतम है, परंतु वहीं पर इसकी आवश्यकता सर्वाधिक है — विशेषकर कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में। वहाँ के स्थानीय संदर्भ के अनुसार अनुकूलित AI समाधानों को बढ़ावा देने के लिए 'Community AI Labs' या 'AI for Bharat' जैसी योजनाओं की शुरुआत की जानी चाहिए।

(छ) सार्वजनिक डेटा का न्यायसंगत निर्माण और उपयोग:

AI प्रणालियों के प्रशिक्षण हेतु आवश्यक डेटा अक्सर जनगणना, जनकल्याण योजनाओं, सोशल मीडिया या मोबाइल डेटा से एकत्र किया जाता है। यह आवश्यक है कि इन डेटा सेट्स का निर्माण पारदर्शी, स्वैच्छिक सहमति आधारित, और गोपनीयता-सुरक्षित हो। साथ ही, यह भी सुनिश्चित किया जाए कि इन डेटा में किसी भी समुदाय के विरुद्ध भेदभावपूर्ण प्रवृत्ति न हो।

(ज) AI नीति का नियमित सामाजिक मूल्यांकन:

AI नीति निर्माण एक बार की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक सतत अभ्यास होना चाहिए। प्रत्येक AI परियोजना, योजना या उत्पाद के सामाजिक प्रभाव का वार्षिक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसके लिए 'Social Impact Assessment Framework for AI' विकसित किया जा सकता है, जो विशेष रूप से असमानता के संकेतकों की निगरानी करे।

(झ) जन-जागरूकता और सामाजिक संवाद:

AI को केवल विशेषज्ञों का विषय मानने की प्रवृत्ति भी एक असमानता उत्पन्न करती है। आम नागरिकों के बीच AI के उपयोग, उसके अधिकारों, और उससे जुड़ी नैतिक जटिलताओं के प्रति जन-जागरूकता फैलाना आवश्यक है। इसके लिए टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया और स्थानीय पंचायत स्तरीय कार्यशालाओं का आयोजन किया जा सकता है।

(ञ) उत्तरदायित्व और जवाबदेही की व्यवस्था:

जब भी कोई AI आधारित निर्णय किसी व्यक्ति के लिए जीवन को प्रभावित करता है — जैसे कि नौकरी से वंचित होना, ऋण अस्वीकृति, या निगरानी — तो ऐसी स्थिति में उत्तरदायी संस्था को यह प्रमाणित करना होगा कि उस निर्णय में कोई पूर्वाग्रह नहीं था। इसके लिए "Explainable AI" (XAI) मॉडल अपनाने की आवश्यकता है जो निर्णय की पारदर्शिता सुनिश्चित करें।

7. निष्कर्ष (Conclusion):

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने आज वैश्विक परिदृश्य में अनेक क्षेत्रों में आमूलचूल परिवर्तन लाया है—चाहे वह स्वास्थ्य सेवाएँ हों, शिक्षा व्यवस्था, कृषि तकनीक, उद्योगों की उत्पादकता, अथवा सार्वजनिक

प्रशासन। इसके माध्यम से जटिल समस्याओं का समाधान खोजना, निर्णय-निर्माण की गति और सटीकता बढ़ाना, और मानव श्रम को अधिक कुशल बनाना संभव हुआ है। परंतु, यह तकनीकी प्रगति समान रूप से सभी वर्गों तक नहीं पहुँची है। इसका प्रसार और उपयोग एक गहराते हुए सामाजिक और आर्थिक विभाजन को जन्म दे रहा है, जिसे हम 'डिजिटल असमानता' या 'तकनीकी सामाजिक अन्याय' कह सकते हैं।

AI के कारण जो नई नौकरियाँ उत्पन्न हो रही हैं, वे अत्यधिक तकनीकी कौशल की माँग करती हैं—जैसे कि डेटा साइंस, मशीन लर्निंग, साइबर सुरक्षा, और क्लाउड कंप्यूटिंग। दूसरी ओर, समाज का बड़ा तबका—विशेषकर ग्रामीण, गरीब, महिलाएँ और अल्पसंख्यक समुदाय—ऐसे कौशल से वंचित हैं। इस कारण, एक नई प्रकार की असमानता उभर रही है जहाँ एक ओर 'तकनीकी सक्षम वर्ग' है, और दूसरी ओर 'डिजिटल रूप से वंचित वर्ग'।

शिक्षा के क्षेत्र में AI आधारित लर्निंग प्लेटफॉर्म्स, जो संभावनाओं के नए द्वार खोलते हैं, उन्हीं छात्रों को सुलभ हैं जिनके पास स्मार्ट डिवाइस, इंटरनेट कनेक्टिविटी और अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान है। अनुसूचित जाति, जनजाति, और अन्य पिछड़े वर्ग के छात्र इस दौड़ में पीछे छूट जाते हैं, जिससे सामाजिक गतिशीलता (social mobility) बाधित होती है। यह भी देखा गया है कि AI टूल्स और एल्गोरिद्म पूर्वाग्रहों (biases) से मुक्त नहीं हैं। यदि उनके प्रशिक्षण डेटा में ऐतिहासिक भेदभाव समाहित है, तो उनके निर्णय भी उसी पक्षपात को आगे बढ़ाते हैं।

इसके अतिरिक्त, भाषाई असमानता AI के लोकतांत्रिक उपयोग में एक गंभीर बाधा बन रही है। भारत जैसे बहुभाषीय देश में जब अधिकतर AI उपकरण केवल अंग्रेज़ी या चुनिंदा भाषाओं में कार्य करते हैं, तो बहुसंख्यक जनता इससे लाभ नहीं उठा पाती। यह तकनीकी बहिष्कार का एक और रूप है।

स्त्रियाँ और अल्पसंख्यक समुदाय न केवल AI विकास में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं रखते, बल्कि उनके अनुभव और आवश्यकताएँ भी तकनीकी समाधानों में प्रतिबिंबित नहीं होतीं। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक असमानता केवल पारंपरिक ढाँचों—जैसे जाति, वर्ग, लिंग—तक सीमित नहीं रही, बल्कि अब वह तकनीकी स्वरूप में भी विद्यमान है।

इसलिए यह अनिवार्य है कि AI को केवल आर्थिक विकास या उत्पादकता के उपकरण के रूप में नहीं देखा जाए, बल्कि उसे सामाजिक न्याय के एक साधन के रूप में विकसित किया जाए। नीतियों, प्रशिक्षण, संसाधनों और नियमन के स्तर पर यह सुनिश्चित करना होगा कि AI का विकास समावेशी, पारदर्शी, और उत्तरदायी हो।

जब तक AI प्रणालियाँ सामाजिक पृष्ठभूमि, विविधता, और न्याय की अवधारणाओं से संचालित नहीं होंगी, तब तक वे असमानता को मिटाने की बजाय उसे और गहरा करने का कार्य करेंगी। अतः भविष्य की तकनीक को मानव मूल्यों और संवेदनशीलता से जोड़ना ही वह रास्ता है जिससे हम एक न्यायसंगत और समान समाज की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

8. सन्दर्भ (References):

- World Economic Forum Report, Future of Jobs 2023
- NITI Aayog, Artificial Intelligence Strategy for India, 2022
- UNESCO Report on AI and Inequality, 2021
- McKinsey Global Institute – AI and Jobs Displacement, 2023
- रिपोर्ट: इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI), 2024
- National Sample Survey Office (NSSO), Digital Access in India, 2022
- Brookings Institute – Algorithmic Bias and Inequality, 2022
- AI Now Institute, Annual Report on Ethics in AI, 2021

विदेशी शक्तियों के विरूद्ध जनजातीय पुरूषों एवं महिलाओं के योगदानों का अध्ययन : झारखंड के संदर्भ में,

तलत परविन
शोधार्थिनी राजनीति विज्ञान विभाग
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविधालय, धनबाद

अमूर्त :–
प्रस्तुत शोध पत्र 'विदेशी शक्तियों के विरूद्ध जनजातीय पुरूषों एवं महिलाओं के योगदानों का अध्ययनः झारखंड के संदर्भ में,' एक विस्तृत व व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसके अंतर्गत विदेशी शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह में जनजातीय पुरूषों एवं महिलाओं के योगदानों का वर्णन किया गया है, साथ ही साथ भारत के विरासत के रूप में झारखंड के जनजातियों के योगदानों का भी उल्लेख किया गया है। चुँकी भारत प्राचीन काल से ही एक समृद्ध देश रहा है, भारत की सामाजिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक सर्वोच्चता को देख कर यहाँ विभिन्न विदेशी शक्तियों ने आक्रमण किया और सत्ता एवं संसाधनों पर कब्जा कर यहाँ की संस्कृति को नष्ट किया और लोगों पर अत्याचार करके उन्हें मौत के घाट उतार दिया। विदेशी शक्तियों के इस बर्बता के खिलाफ पुरे देश के लोगों में विद्रोह की भावना का जन्म हुआ, महान क्रांतिकारी देशभक्तों ने ऐसे विद्रोहों का नेतृत्व किया इन विद्रोहों में विभिन्न जाति एवं जनजातीय समुहों ने भी भाग लिया और देश की रक्षा के लिए अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया। ऐसे महान क्रांतिकारी देशभक्तों में जनजातीय समाज के गौरव और झारखंड में जन्मे भगवान बिरसा मुंडा भी थे, जिन्होंने ईसाई धर्मांतरण के खिलाफ आवाज उठाई, उनके एक आह्वान पर पूरा जनजातीय समाज उठ खड़ा हुआ और विदेशी शक्तियों से लोहा लिया।

मूल शब्दः–भारत, जनजातीय, विदेशी, शक्ति, विद्रोह, विरासत, झारखंड, बिरसा, आंदोलन,

प्रस्तावनाः–

हमारे भारत देश में जनजातियाँ स्वदेशी समुदाय है, जिनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विशेषताएँ हैं।[1] वे विशिष्ट क्षेत्रों में निवास करती हैं और अपनी भाषाओं,परंपराओं और रीति–रिवाजों को संरक्षित किय हुए हैं।[2] भारत शुरूआत से ही समृद्ध परंपराओं और सांस्कृतिक मुल्यों वाला देश रहा है। इतिहास की ओर रूख करें तो पता चलता है के आंदोलनों में जनजातीय समाज का योगदान कभी किसी से कम नहीं रहा है। जब–जब विदेशी शक्तियों (तुर्क, मंगोल, अरब, मुगल और अंग्रेज) ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ की शांति एवं समृद्धि को नुक्सान पहुँचाया, तब–तब उनके इस बर्बता के विरोध में भारतीयों ने संगठित होकर आवाज उठाई और विद्रोह किया, इन विद्रोहों में जनजातीय समुदाय के लोग भी शामिल थे जिन्होंने देश की रक्षा के लिए लड़ते–लड़ते अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया। भारत का इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जो हमें ऐसे योगदानों से सम्बंधित तथ्य एवं प्रमाण देते है। इतिहास से ही पता चलता है के भील जनजातीय समुदाय ने हल्दी घाटी के युद्ध में मुगलों को हराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसके निशान आज भी मेवाड़ और मेयो कॉलेज के राजचिन्ह में अंकित हैं। देश के विभिन्न आंदोलनों में पुरूषों के साथ–साथ महिलाओं ने भी समान रूप से भाग लिया था।[3] विदेशी शासन के दौरान ग्रामीण इलाकों की महिलाओं पर भी अधिक अत्याचार किए जाते थे, उनकी संस्कृतिक, परम्परा और धर्म पर भी अंग्रेजों द्वारा प्रहार किए गय।[4] इस दौरान झारखंड के वीर पुरूष और आदिवासी समाज के नेता भगवान बिरसा मुंडा एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में उभरे और उन्होंने शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। यह आंदोलन सरदार और मिशनरियों के खिलाफ था जो मुख्य रूप से खूंटी, तमाड़ और बड़गाँव में केंद्रित था। जब जमींदार और पुलिस का अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ते चले

गए तब बिरसा मुंडा ने उसके खिलाफ आवाज उठाई और अंग्रेजों को लगान देने से मना कर दिया। बिरसा मुंडा के एक आह्वान पर पूरा आदिवासी समाज एकजुट होकर शोषणकारियों के खिलाफ विद्रोह में कूद पडा, आदिवासियों की ऐसी एकता को देख कर अंग्रेज भी सहम गए, वे भी अब आदिवासी समाज की ताकत को महसूस करने लगे थे। अंग्रेजों को यह अहसास हो चुका था की आदिवासी समाज के नेता बिरसा मुंडा को जल्द ही गिरफ्तार करना होगा वरना आदिवासी समाज पर ब्रिटिश नीतियों को लागू करना और उनसे अपने ईशारे पर काम करवा पाना बेहद मुश्किल हो जाएगा, अतः अंग्रेज बिरसा मुंडा को पकडने का हर सम्भव प्रयास करने लगे, लेकिन बिरसा मुंडा अंग्रेजों को चकमा दे कर भागने में सफल रहे और जंगल में शरण लेकर आंदोलन को जारी रखा। पुरा आदिवासी समाज अंग्रेजों के खिलाफ हो गया और बिरसा उलगुलान में भाग लेकर अंग्रेजों को मुँहतोड़ जवाब दिया।[5]

साहित्य समीक्षा :–

पंकज,एन,(2017)[6], 'आदिवासी समाज का इतिहास', इस पुस्तक में हमें आदिवासियों के इतिहास के बारे में पता चलता है, शिकार से लेकर खेती की शुरूआत तक, उनके पारिवारिक रिश्तों, कबीले की संरचना और उनकी उनकी सामाजिक व्यवस्था कैसे भारत को आकार देने में भूमिका निभा रही है, इसके बारे में पता चलता है, उनका योगदान भारत को कैसे गौरवान्वित कर रहा है आदि के बारे में इस पुस्तक से अहम् जानकारी मिलती हैं। **नाथ,के,**(2016)[7], 'आदिवासी आन्दोलन का इतिहास' इस पुस्तक में हमें आदिवासियों के संघर्ष के इतिहास के बारे में पता चलता है, ब्रिटिश काल के दौरान कई देशभक्त और क्रान्तिकारी हुए जिन्होंने अपने प्राणो की प्रवाह किय बिना विद्रोह की आग में कूद पडे और विदेशी शक्तियों को उखाड फैंकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। **बारा,जी,**(2022)[8], 'बिरसा मुंडा और राष्ट्र', इस लेख में बिरसा मुंडा के बारे में जानकारी मिलती है। एक आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी जिन्हें हाल में भारतीय राष्ट्र द्वारा विशेष सम्मान दिया गया गया था। यह लेख उनके जीवन और राजनीतिक विरासत पर जानकारी देता है। साथ ही साथ बिरसा मुंडा के साहस और त्याग की जानकारी भी इससे प्राप्त होती है। **बेहरा,जे,के,**(2017)[9], 'ट्राइबल वुमेन इन सेंट्रल इंडियाः इशू एंड चैलेंजेस', इस पुस्तक में आदिवासी महिलाओं की चुनौतियों और संभावनाओं का वर्णन किया गया है। आदिवासी महिलाएँ अपने साहस के आधार पर कैसे विकास के मार्ग को अपना रही हैं और कैसे वे अन्य महिलाओं की तुलना में विकास के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ रही हैं, इसका भी वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। **जैन,के,** (2023)[10], 'भारत के आदिवासी' इस पुस्तक में आदिवासी संस्कृति और परंपराओं का विवरण मिलता है। आदिवासियों की परंपरा और सांस्कृतिक विरासत भारत के लिए अमुल्य हैं, जिसे नकारा या झूठलाया नहीं जा सकता है। भारत के आदिवासी देश के गौरव हैं उनकी संस्कृति, कला, अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था कि एक अलग पहचान है।

उद्देश्यः–

प्रस्तुत शोध पत्र का अद्देश्य झारखंड के जनजातियों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना है एवं विदेशी शक्तियों के विरूद्ध झारखंड के वीर पुरूष एवं महिलाओं के योगदानों का उल्लेख करना है तथा झारखंड के जनजातियों का भारत के विरासत के रूप में योगदानों का अध्ययन करना है।

अध्ययन प्रविधिः–

इस शोध पत्र हेतु वर्णात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग हुआ है तथा तथ्यों का संकलन द्वितीय स्त्रोतों के द्वारा किया गया है। जिसमें मुख्य रूप से झारखंड के जनजातीय पुरूष एवं महिलाओं की आंदोलनों में भागीदारी से सम्बंधित पुस्तकों, समाचार पत्रों, झारखंड से सम्बंधित लेखों, वेबसाइट,जनगणना रिपोर्ट के आधार पर विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया है।

जनजातीय विद्रोह का इतिहास



source- https://shwetankspad.com/2021/06/3...

हमने अक्सर पढा और सुना है के भारत में जब भी आक्रमणकारियों ने प्रवेश करने की कोशिश की तो उन्हें जंगलों और पहाड़ों के रास्ते पर सबसे पहली रक्षा पंक्ति में खड़े आदिवासियों का सामना करना पड़ा था। आक्रमणकारी सिकंदर के भारत में प्रवेश और सिनबाई, अगलासोई, मल्ला जैसी जनजातियों के साथ युद्ध से यह साफ तौर पर समझा जा सकता है कि वनवासियों की प्रारंभिक क्रांति ही आगे चल कर स्वतंत्रता आंदोलन बन गई। भारत के जंगलों में लाखों की संख्या में वीर पुरूष हुए जिन्होंने आजादी के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। ऐसे वीर नायक जब जंगल में रह कर आक्रमण किया करते थे तो महिलाएँ घर परिवार का भरण पोषण करती थीं और सारी जिम्मेदारियाँ अकेले ही निभाती थीं, क्योंकि वीर नायकों को पुलिस से बचने के लिए भागते रहना पडता था।[12] कई बार पुलिस नायकों की तलाश में गाँव में आती थी और जब वे उन्हें नहीं मिलते थे तो पुलिस महिलाओं पर अत्याचार करती थी। महिलाओं के साथ मारपीट और दुव्यर्वहार तो एक आम बात हो चुकी थी। महिलाएँ पुलिस और जमींदारों की यातनाएँ सहन करती थीं, लेकिन इसके बाद भी वे पुलिस के सामने नहीं झुकती थीं और अन्त में पुलिस को ही थक हार कर वापस लौट जाना पड़ता था। ऐसे महान नायकों में कई नाम प्रसिद्ध हैं जिनमें– तिलका मांझी, वीर बुधू भगत, सिद्धू–कान्हू, तेलंगा खड़िया, टोम्मा सोरा, बिरसा मुंडा, जतरा टाना भगत आदि शामिल हैं। आदिवासी समाज में कई वीर योद्धाओं के साथ–साथ कई वीर नारियों ने भी देश की आजादी की लड़ाई में अपने प्राणों की आहुति दी, लेकिन दुःख की बात तो यह है कि उन्हें इतिहास में उचित स्थान नहीं मिला, ऐसी वीर नारियों में प्रमुख रूप से सिनगीदई, चम्पू दई, कईली दई, फूलो–झानों, मोहा मरांडी, रत्नी खरिया, नागी थिगी, लेम्बू, चम्पी साली, माकी, मझिया मुण्डा, माकी मुण्डा, देवमनी, रानी शेरोमणि, आदि का नाम आता है। इन वीर नारियों ने अलग–अलग हिस्सों में स्वतंत्रता संग्राम की कमान संभाली थी।[13] ऐसी कई अन्य वीर महिलाएँ भी हैं जिनकी बहादुरी की कहानियों को हमारे इतिहासकारों ने हमारे सामने नहीं आने दिया। भारतीय इतिहास ने हमेंशा उन वीर नारियों की बहादुरी को नजर अंदाज किया है। अब समय आ गया है के उन वीर नारियों की पुरी कहानी सामने आए और उन नारियों के नाम भी वीर नायकों के समान स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाएं।[14]

विदेशी शक्तियों के विरूद्ध झारखंड के जनजातियों का योगदान



source- https://www.drishtiias.com/hindi/state-pcs-pages/jharkhand-

देखा जाय तो झारखंड के जनजातियों का विदेशी शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह का इतिहास बहुत पुराना रहा है। झारखंड के भोगता विद्रोह, घटवाल विद्रोह, पहाड़िया विद्रोह, तिलका आंदोलन, कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह, बिरसा उलगुलान, ताना भगत आंदोलन आदि विदेशी शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह के ऐसे उदाहरण हैं जो आज भी धूमिल नहीं पड़े हैं और नहीं कभी धूमिल पड़ सकते हैं। तिलका मांझी ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ संघर्ष की चेतना फैलाने वाले आदिविद्रोही थे। उन्होंने 1772 में जमीन व फसल पर परम्परागत अधिकार के लिए संघर्ष छेड़ा। तिलका मांझी ने सुलतानगंज की पहाड़ियों से छापामार युद्ध का नेतृत्व किया था। 1785 में उन्हें भागलपुर में फांसी दी गई।[16] 1831 के कोल विद्रोह में उरांव, मुंडा, हो, भुइयां आदि जनजातियाँ शामिल हुई। ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ यह संभवतः पहला विराट आदिवासी आंदोलन था। इतिहासकार इस विद्रोह को झारखंड क्षेत्र का विकराल अध्याय मानते हैं, लेकिन इससे पहले ही 1782–1807 तक तमाड़ विद्रोह, 1793 में विष्णु मानकी के नेतृत्व में बुंडू में मुंडा विद्रोह, 1769–1805 में चुआड़ विद्रोह, 1798–99 में मानभूम में भूमिज विद्रोह और 1800 में पलामू में चेरो विद्रोह ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह की अटूट श्रृंखला कायम कर दी थी। यह याद रखने योग्य बात है कि छोटानागपुर का क्षेत्र 1765 ई0 में अंग्रेजी राज में सम्मिलित हो चुका था लेकिन इस क्षेत्र पर कई वर्षो तक अंग्रेजों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित नहीं हो सका। 1816–17 में छोटानागपुर के राजा की दंड शक्ति पूरी तरह से छीन ली गयी। निरंतर जारी विद्रोह की वजह से मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के अधीन यहाँ प्रत्यक्ष शासन की स्थापना हुई। कोल विद्रोह के 22 सालों के बाद 1855–56 में संथाल विद्रोह हुआ।[17] इस विद्रोह का कारण था पहाड़ी महाजनों और साहुकारों के शोषण और अत्याचारों के खिलाफ संथालों का आर्थिक असंतोष। संथाल विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने झारखंड क्षेत्र में आतंक के साथ–साथ प्रलोभन का साम्राज्य विकसित किया। इसकी वजह से 1857 के महासंग्राम के बाद पुरे झारखंड क्षेत्र में विद्रोह के स्वर वर्षो तक मंद रहे। लेकिन असंतोष को विस्फोट में ढ़लने में करीब 26 साल लगे। वहीं जमीदारों को संरक्षण और धर्मातंरण के खिलाफ 1881 में अंग्रेजों को सरदार विद्रोह के रूप में बड़ी चुनौती मिली। 1895 में बिरसा आंदोलन शुरू हुआ तो ब्रिटिश हुकूमत को मालूम हो गया कि झारखंड में संस्कृति, धर्म और राजनीति के सूत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उन सूत्रों से आदिवासी समाज में सामूहिक स्वशासन की लोकतांत्रिक प्रणालियाँ सदियों पहले विकसित हो चुकी है।[18] इसके बाद टाना भगत आंदोलन 1913–14 ई. में शुरू हुआ, इस विद्रोह ने अंग्रेजों की नींव भारत में कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। झारखंड क्षेत्र में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ 150 साल में हुए विभिन्न आंदोलनों एवं विद्रोहों की एक दूसरे से जुड़ी कड़ियों को देख कर समझा जा सकता है के इन विद्रोहों के बिना भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की व्याख्या संभव नहीं है।[19]

झारखंड में जनजातीय विद्रोह की सूची

आंदोलन का नाम	सम्बंधित क्षेत्र	अवधी	नेतृत्वकर्ता
ढ़ाल आंदोलन	ढ़ालभूम	1767–77	जगन्नाथ ढ़ाल
चुआर विद्रोह	सिंहभूम	1769–1805	रधुनाथ महतो, श्याम गंजम
चेरो विद्रोह	पलामू	1770–1818	चित्रजीत राय,जयनाथ सिंह
भोगता विद्रोह	पलामू	1770–71	जयनाथ सिंह
घटवाल विद्रोह	रामगढ़	1772–73	विभिन्न घटवाल सरदार
पहाड़िया विद्रोह	संथाल परगना	1772–80	जगन्नाथ देव, रानी सर्वेश्वरी
तिलका आंदोलन	भागलपुर	1773–85	तिलका मांझी
तमाड़ विद्रोह	रांची,पंचेत,वीरभूम	1782–1807	विष्णु व मौजी मानकी
मुण्डा विद्रोह	बुंडू	1793–1832	विष्णु मानकी
हो विद्रोह	कोल्हान	1820–21	पोटो सरदार
कोल विद्रह	हजारीबाग को छोड़ कर सभी क्षेत्र	1831–32	सिंगराई मानकी,सुर्गा मुण्डा
भूमिज विद्रह	बाड़भूम,सिंहभूम	1832–33	गंगा नारायण
संथाल विद्रह	संथाल परगना	1855–57	सिद्धू–कान्हू
सरदारी आंदोलन	श्रांची	1858–70	विभिन्न कोल सरदार
साफाहोड़ आंदोलन	संथाल परगना	1870	लल हेम्ब्रम उर्फ लाल बाबा
खरवार आंदोलन	संथाल परगना	1874	भागीरथ मांझी
मुण्डा उलगुलान	राँची–खूंटी	1895–1900	बिरसा मुण्डा
ताना भगत आंदोलन	गुमला,लोहरदगा, रांची,चतरा,लातेहार	1913–1914	जतरा भगत
हरिबाबा आंदोलन	सिंहभूम	1931	हरिबाबा उर्फ दुका हो

source- https://panaceaconcept.in/tribal-uprising-in-jharkhand

झारखंड में जनजातीय समुदाय के समक्ष चुनौतियाँ

झारखंड में जनजातीय समुदायों के द्वारा कई चुनौतियों का सामना किया जा रहा है जो उनके जीवन को और कठिन बना रही है।

1. प्राकृतिक संसाधनों का दोहन :–

जनजातियों की एक बङी समस्या उनके प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है। सरकार की वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियाँ आर्थिक विकास के लिए संसाधनों के उपयोग को प्राथमिकता देती हैं जो संसाधनों के उपयोग के पारंपरिक आदिवासी दृष्टिकोण से टकराती है। भारत में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन से पारिस्थितिकी तंत्र भी क्षतिग्रस्त हो रही है।

2. विस्थापन की समस्याः–

बङे–बङे विकास परियाजनाओं के कारण आदिवासियों का जबरन विस्थापन किया जा रहा है। कई गाँव उजङ चुके हैं, आदिवासी सुदाय के लोगों को पुनर्वास प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पङ रहा है।

3. स्वास्थ्य समस्याएँः–

जनजातीय समुदाय विभिन्न प्रकार की बिमारियों से पीङित हैं उनकी जीवन प्रत्याशा कम है और मलेरिया, हैजा, एनीमिया जैसी बीमारियों की दर अधिक है।

4.बेरोजगारी की समस्याः–

जनजातीय लोगों के कल्याण और सुरक्षा पर बाजार ताकतों के हितों को प्रायः प्राथमिकता दी जाती है। झारखंड में जनजातियाँ बेरोजगार हो रही हैं या शोषणकारी और कम वेतन वाली नौकरियों में कार्य करने के लिए मजबूर हैं,जनजातियों की बढती बेरोजगारी चिंता का विषय है।

5. सामाजिक बहिस्कार और असुरक्षाः–

भारत में वैश्विकरण ने स्थिति को और निराशाजनक कर दिया है। इसने दलित जनजातियों के लिए सामाजिक बहिस्कार और असुरक्षा को बढावा दिया है तथा इसने जनजातीय क्षेत्रों के लिए अधिक स्वायत्ता या मान्यता की मांग करने वाले उप राष्ट्रीय आंदोलनों को भी जन्म दिया है।

6.गरीबीः–

गरीबी की समस्या अदिवासियों के लिए एक बङी विकट समस्या है। इससे आदिवासी महिलाएँ विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। गरीबी के कारण कई युवा महिलाएँ कार्य की तलाश में शहरी केन्द्रों की ओर पलायन करती है जहाँ उनके शोषण और खराब जीवन स्थितियों का सामना करना पङता है।[21]

भारत के विरासत के रूप में झारखंड के जनजातियों का योगदान

दुनियाँ के हर देश की अपनी एक अलग संस्कृति एवं परंपरा रही है। भारत भी एक विविधतापूर्ण और विभिन्न सांस्कृतिक विरासत वाला देश है जिसमें जनजातियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यदि झारखंड की बात करें तो यहाँ कि कुल आबादी 3,29,88,134 है।[22] झारखंड के आदिवासियों ने न केवल अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और प्रचारित किया, बल्कि भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

1. सांस्कृतिक योगदानः–

आदिवासियों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और उसका प्रचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अपनी पारंपरिक कला, संगीत, नृत्य और हस्त शिल्प को बनाए रखा है जो भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जनजातियों के पवित्र स्थलों एवं सांस्कृतिक स्थानों के संरक्षण की आवश्यकता है। जनजातियों कि सांस्कृतिक विरासत ने भारतीय समाज को समृद्ध किया है और यह हमारी भारतीय पहचान का एक बेहद जरूरी हिस्सा है।[23]

2. आर्थिक योगदानः–

आदिवासियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने कृषि, पशुपालन वन और वन्यजीव संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जनजातियों की आर्थिक गतिविधियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत किया है। आज जनजाजियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को तेजी से मजबूत करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत के विकास में झारखंड के जनजातियों का योगदान अन्य जनजातियों के बराबर या उनसे कहीं अधिक है।

3. सामाजिक योगदानः–

झारखंड के आदिवासियों ने भारतीय समाज में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपनी पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखा है जो भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है। जनजातियों की

सामाजिक गतिविधियों ने भारतीय समाज को समृद्ध किया है और यह हमारे देश की सामाजिक एकता में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जनजातियों का सामाजिक योगदान अन्य जाजियों को भी प्रेरित करता है।

4.पर्यावरण संरक्षण सम्बंधित योगदानः–

जनजातीय समुदाय पर्यावरण के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी रखते हैं,यह ज्ञान वन प्रबंधन कृषि और सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण है,वे वन संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5.पारंपरिक ज्ञान के आधार पर योगदानः–

जनजातीय समुदाय का पारंपरिक ज्ञान के आधार पर महत्वपूर्ण योगदान है। यह ज्ञान चिकित्सा कृषि और अन्य क्षेत्रों में उपयोगी है।

6. चिकित्सा सम्बंधित योगदानः–

जनजातीय समुदाय पारंपरिक चिकित्सा प्रथाओं का उपयोग करते है जो उन्हें बीमारियों का इलाज करने और स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने में मदद करती है, उन्हें कई प्रकार के जडीबूटियों का भी ज्ञान है जिनसे आम नागरिक परिचित नही हैं।[24]

7. भूमि सम्बंधित योगदानः–

भूमि आदिवासियों की जीवनशैली का अभिन्न अंग है। आदिवासियों के लिए भूमि का अर्थ बहुत व्यापक है। एक पुस्तक में अद्धृत एक पंक्ति एक निजी समूह के प्रमुख द्वारा आदिवासियों की अनूठी जीवन शैली को प्रस्तुत करने का प्रयास है। वह कहते हैं, मेरी भूमि मेरी रीढ़ है, मैं खुद को खुश मानता हुँ, मुझे खुद पर गर्व है और मुझे अपने रंग पर बिल्कुल भी शर्म नहीं है क्योंकि मेरे पास अभी भी जमीन है, मैं नाच सकता हुँ, मैं गा सकता हुँ, काम कर सकता हुँ ,जैसा मेरे पूर्वज करते थे, मेरी भूमि मेरी नींव है, मैं खड़ा हो सकता हुँ, जी सकता हुँ, काम कर सकता हुँ, जब तक मेरे पैरों के नींचे कुछ कठोर और मजबूत है, भूमि के बिना हम दुनियाँ के सबसे बुरे लोग होंगे। उपरोक्त उद्धरण आदिवासियों के भूमि के साथ सम्बंधों को सारांशित करता है और अन्य भारतीयों को एक महान सबक देता है।[25]

निष्कर्षः–

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है के विदेशी शक्तियों के विरूद्ध जनजातीय पुरूषों एवं महिलाओं के योगदान महत्वपूर्ण हैं। जनजातियों ने जल जंगल और जमीन की रक्षा हेतु अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया। गाँधी जी के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन शुरू करने से कई वर्ष पहले ही झारखंड के जनजातियों ने अंग्रेजों से लोहा लिया था। झारखंड के जनजातीय महिलाओं एवं पुरूषों ने अंग्रेजों के मनमाने ढ़ंग से लगान वसूलने एवं उनके द्वारा लोगों पर किए जा रहे शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। तिलका मांझी,बुधू भगत, सिद्धू कान्हू, बिरसा मुंडा, जतरा भगत आदि कई देशभक्तों और क्रान्किारियों को अपने प्राण भी गवाने पड़े तथा अंग्रेजों ने असंख्य लोगों को गोलियों से भून दिया था जिसमें महिलाएँ भी शामिल थी। भगवान बिरसर मुंडा और अन्य वीर याद्धाओं ने अंग्रेजों के आगे कभी घुटने नहीं टेके, और अपने प्राणो की आहुति दे कर इस धरती की रक्षा की। ऐसे महान देशभक्तों के नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। आज भी भारत के प्रत्येक नागरिक जनजातीय समुदाय का ऋणी है, साथ ही साथ जनजातियों कि संस्कृति और परंपरा हमें ऐसी व्यवस्था अपनाने के लिए प्रेरित करती है जो प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए सतत विकास की दिशा में आगे बढ़ाने में सहायक हो। भारतीय समाज अर्थव्यवस्था और संस्कृति में जनजातियों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और संवर्धित किया हैं, वे आर्थिक गतिविधियों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उन्होंने भारत की नींव को मजबूत किया है। झारखंड के जनजातियों ने विदेशी शक्तियों के विरूद्ध जितने भी विद्रोह किए हैं वे इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। झारखंड के जनजातियों के योगदान भारत के लिए अनमोल है। इससे भारत की विरासत और भी मजबूत होगी और भारत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मजबूत स्थिति में होगा।

संदर्भ सूची :–

1 वासवी, किड़ों, 'भारत की क्रान्तिकारी आदिवासी औरतें,' अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, 2022, पृ0 सं0– 2

2 https://www.nextias.com/blog/% E0%A....

3 कुमार,उमेश, 'ए स्टडी ऑफ ट्राइबल मूवमेंट्स अगेंस्ट क्लोनियल रूल इन झारखंड–हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव,' जर्नल (आई.जे.एस.आर.एस.टी),वाल्यूम–1 इश्यू–2, 2015, पृ0 सं0– 157–163
4 दिवान, रेणू , 'झारखंड की महिलाएँ', बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2015, पृ0 सं0–12
5 तिवारी,राम.कमार, 'झारखंड की रूपरेखा,' शिवांग पब्लिकेशन,राँची, 2012, पृ0 सं0–245
6 नागर,पंकज, 'आदिवासी समाज का इतिहास', रावत प्रकाशन, जयपुर, 2017, पृ0 सं0– 102–126
7 नाथ,कैलाश, 'आदिवासी आन्दोलन का इतिहास' नीलगिरी प्रकाशन, नीलगिरी, 2016, पृ0 सं0– 64–72
8 बारा,जोसेफ, 'बिरसा मुझडा एंड द नेशन', जर्नल ऑफ आदिवासी एंड इंडीजीनस स्टडीज, वाल्यूम– 12 इश्यू–2, 2014, पृ0 सं0, 1–23
9 बेहरा,जयंत,कुमार, 'ट्राइबल वुमेन इन सेंट्रल इंडियाः इशू एंड चैलेंजेस', वूमेन प्रेस, दिल्ली, 2017, पृ0 सं0, 29–35
10 जैन,कामिनि, 'भारत के आदिवासी', शास्वत पबिलकेशन, दिल्ली, 2023, पृ0 सं0– 77–85
11 https://shwetankspad.com/2021/06/3...
12 दिवान, रेणू , 'झारखंड की महिलाएँ,' बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2015, पृ0 सं0–12
13 वहीं पृ0 सं0–13
14 https://education.vikaspedia.in/viewcontent/education/91d93e9
15 https://www.drishtiias.com/hindi/state-pcs-pages/jharkhand-
16 गौंझू,जी.आर, 'झारखंड विभूति एवं शहीद,' स्पर्धा प्रकाशन, जमशेदपुर, 2019, पृ0 सं0–13
17 वहीं पृ0 सं0–25
18 वहीं पृ0 सं0–49
19 वासवी, किड़ों, 'भारत की क्रान्तिकारी आदिवासी औरतें,' अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, 2022, पृ0 सं0– 6
20 https://panaceaconcept.in/tribal-uprising-in-jharkhand-in-hindi/
21 https://www.nextias.com/blog/% E0%A….
22 भरतीय जनगणना रिपोर्ट–2011
23 भारत के इतिहास में जनजातीय समाज का अद्वितीय योगदान रहा है, https://patheykan.com/%E0%A4%
24 आयुष। आदिवासी युवा शक्ति..https://www-adiyuva-in.translate.google/..
25 मिंज,अभय, 'माय मांटी', प्रभात खबर, (समाचार पत्र), धनबाद, 09, 08, 2024, पृ0 सं0–11

भारतीय समाज में लिव–इन रिलेशनशिप : एक समाजशास्त्रीय विवेचन

पूजा देवी
शोध छात्रा–समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश

लिव–इन रिलेशनशिप जब प्रेमी जोड़े शादी किये बिना आपसी सहमति से लंबे समय तक संबंधों के साथ.साथ एक ही घर में रहते हैं। इसी को लिव–इन रिलेशनशिप कहा जाता है। या एक लड़का या एक लड़की या कुछ लड़का और कुछ लड़कियां बिना विवाह के एक साथ रहती हैं और यौन संबंधों की आवश्यकता भी एक.दूसरे से पूरी होती है तो इसे लिव–इन रिलेशनशिप कहा जाता है।

21वीं सदी में एक नई अवधारणा उभरती है जिसे लिव–इन रिलेशनशिप के रूप में जाना जाता है। हालाँकि बैंगलोर, दिल्ली, मुंबई और चेन्नई जैसे महानगरीय शहरों में भी यह बदल रही हैं। लोग लिव–इन रिश्ते को वैध रूप में स्वीकार कर रहे हैं। लेकिन ग्रामीण भारत में लोग लिव–इन–रिलेशनसिप के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रखते हैं।

मुख्य शब्द– लिव–इन–रिलेशनशिप, भारतीय समाज, विवाह, कानून, परिवार सम्बन्ध।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री.पुरुष साथ–साथ रहने के लिए या प्रजनन के लिए समाज से संबंधित मान्यता लेते हैं। इसी सामाजिक मान्यता को विवाह कहा जाता है। इसी तरह का विवाह अधिकतर सभी समाजों में पाया जाता है। लेकिन यौन संबंधों में दुनिया के अलग–अलग समाजों का खुलापन और बंदी से भी पाया जाता है। वहीं भारत में पारंपरिक रूप से विवाह एक पवित्र संस्था है और विवाह का सार ही सहिष्णता और उत्तरदायित्व के सिद्धांतों पर आधारित है और कई सिद्धांतों से लोग इन सिद्धांतों का पालन करते आ रहे हैं और विवाह करने पर इन सिद्धांतों का पालन करना एवं अपने–अपने आदश होते हैं। भारत में यौन उत्पीड़न का खतरा है। विवाह से पहले या विवाह के बाद किसी भी स्त्री या पुरुष को इस तरह के संबंधों की अनुमति नहीं मिलती है। पारंपरिक यौन नैतिकता इस तरह के संबंधों को स्वीकार नहीं करता है।

विवाह संबंध एक स्थायी संबंध है। विवाह का आधार पति–पत्नी के बीच स्थायी संबंध की स्थापना होती है। यौन इच्छाओं की पूर्ती, सन्तानोत्पत्ति, बच्चों का पालन–पोषण और सामाजिकरण एवं व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से विवाह सम्बन्ध का होना उनकी आवश्यकता है। बिना स्थायी सम्मिलन के स्थापित पारिवारिक जीवन की दृढ़ता खतरे में पड़ सकती है, इसलिए विवाह का स्थायी रूप से होना अति आवश्यक है।

लिव.इन रिलेशनशिप के प्रकार या स्वरूप:.

1. अविवाहित वयस्क महिला एवं पुरुष।
2. अविवाहित वयस्क महिला एवं 21 वर्ष से कम आयु का वयस्क पुरुष ।
3. विवाहित पुरूष एवं अविवाहित वयस्क महिला।
4. अविवाहित वयस्क पुरुष एवं विवाहित महिला।
5. विवाहित पुरूष एवं विवाहित महिला।
6. समान सेक्स (समलैंगिक के दो लोग)।

भारत में भी इस तरह की घटनाएं सामने आ रही हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव से भारतीय समाज में विवाह, परिवार जैसे संस्था पर प्रभाव पड़ा है। भारत में पश्चिमी जीवन शैली और संस्कृति का प्रवेश हुआ और इससे लिव–इन रिलेशनशिप का प्रभाव बढ़ा है। **आर्टिकल 21 के अंतर्गत राइट टू लाइफ** यानी जीने का अधिकार दिया गया है।

इस तरह के संबंध ज्यादातर वैश्वीकरण के बाद सामने आयी हैं। इसी समय औद्योगीकरण, नगरीकरण का तेजी से विकास हुआ और भारत में लड़कों और लड़कियों में आत्मसंतुष्टि और विवाह की आयु में वृद्धि हुई है। इसी से लिव–इन संबंधों में बढ़ोतरी हो रही है।

भारत में शादी से पहले या शादी के बाद अन्य दूसरे के साथ रहना अभी भी वर्जित है। जो लोग बिना शादी के कपल्स की तरह साथ रहते हैं, उन्हें हमेशा ही बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वहीं अगर शादी होती है तो उसे न केवल सामाजिक, बल्कि कानूनी रूप से भी स्वीकार किया जाता है। हालांकि भारतीय समाज में शादी एक पवित्र बंधन है। जिसे चाहते हुए भी तोड़ा नहीं जा सकता लेकिन शादी जैसे रिश्तो में बधना एक लंबी प्रक्रिया है। इसलिए कई युवा इससे पीछे हट जाते हैं।

भारत में लिव–इन–रिलेशनशिप की कानूनी मान्यता

एक तरफ से स्वतंत्रता, समानता, है तो वही दूसरी तरफ पीड़ित महिला को न्याय की आवश्यकता इन सब समस्याओं को देखते हुए **मलिमथ समिति का गठन 24 नवम्बर 2000** में किया गया था और अपनी रिपोर्ट में कहा गया था कि एक लड़का एक लड़की लम्बे समय तक साथ–साथ रह रहे हैं तो उसे लिव–इन में रहने वाली लड़की को पत्नी का दर्जा और अधिकार मिलना चाहिए और **सी. आर. पी. सी. की धारा.125** में इस सन्दर्भ में संशोधन किया गया है और लिव.इन रिलेशन के रूप में रहने वाली महिला और उसके जन्में बच्चे को भी अधिकार मिलना चाहिए।

लिव–इन अधिकार पत्र पर कोई सामाजिक स्तर नहीं है, लेकिन विभिन्न धर्मों में इसका कोई औचित्य नहीं है, लेकिन भारतीय विधि में लिव.इन रिलेशनशिप का कोई प्रमाण नहीं है। भारत में लिव–इन जैसा रिश्ते वैध है और कोई भी दो लोग लिव–इन रिलेशन में रह सकते हैं। यह भारतीय विधि पूर्णतः वैध है।

1978 में बद्री प्रसाद डायरेक्टर बनाम ऑफ कन्कॉलिडेशन के केस में सुप्रीम कोर्ट ने पहली बार लिव–इन रिलेशन को मंजूरी दी थी। ऐसा माना जाता था कि शादी करने की उम्र वाले लोगों के बीच लिव–इन रिलेशनशिप संबंध किसी भी भारतीय कानून का उल्लंघन नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अगर कोई भी कपल लम्बे समय से साथ रह रहे हैं तो उस रिस्ते को शादी ही मान ली जाएगी।

संविधान के अनुच्छेद 21 में मौजूद है, स्वतंत्रता, स्वछन्दता अपनी मन से शादी करने या किसी के साथ लिव–इन सम्बन्धों में रहने की स्वतंत्रता और अधिकार।

2001 में पायल शर्मा बनाम नारी निकेतन में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि एक पुरुष और महिला को यह अधिकार है कि वह अपने मर्जी से एक–दूसरे के साथ शादी किए बिना रह सकती हैं।

इंदिरा शर्मा बनाम वी. के. शर्मा केस में सुप्रीम कोट ने बताया कि 2005 की धारा 2f में डोमेस्टिक रिलेशनशिप की जो परिभाषा है। इसमें लिव–इन रिलेशनशिप भी शामिल है। इस तरह इस एक्ट की मदद से शादी शुदा कपल खुद को घरेलू हिंसा से बचा सकती है। इसी तरह लिव–इन अधिकार में रह रहे कपल पर भी यह अधिनियम लागू होता है, और महिलाओं को घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के तहत गुजरात भत्ता लेने का अधिकार दिया गया है।

C.R.P.C की धारा 125 के तहत भरण–पोषण का अधिकार जस्टिक मलिमथ की समिति की सिफारिश में C.R.P.C की धारा 125 में संशोधन किया गया था। समिति की रिपोर्ट में यह सुनिश्चित किया गया है कि लिव–इन–रिलेशन में रहने वाली स्त्री को पत्नी का दर्जा मिले और पूरा अधिकार प्राप्त हो। जितना वैवाहिक स्त्री को मिलता है।

लिव–इन रिलेशनशिप के मुद्दे पर **दक्षिण भारतीय फिल्म अभिनेत्री खुशबू** ने 2005 में लिव–इन रिलेशनशिप एवं विवाह से पूर्व संबंधों के पक्ष में बोली तो कई संगठन उनके खिलाफ में खड़े हो गए। उन पर भारतीय संस्कृति को ठेस पहुचाने के आरोप लगाए गए। लेकिन उनके पांच साल बाद 2010 में दिए गए फैसलो से कोर्ट में खुशबू को निर्दोष ठहराया गया। उन्होंने कहा कि साथ रहना जीवन के अधिकार का हिस्सा है। इस कारण से यह गैर कानूनी नहीं है। जिस तरह से पति की मृत्यु के बाद पत्नी के पति की संपत्ति पर अधिकार होता है। ठीक उसी प्रकार एक महिला के लिव–इनपार्टनर की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति पर महिला का अधिकार होता है। धनुलाल बनाम गणेश राम केस में कोर्ट ने विचार किया गया था। कि लिव–इन रिलेशनशिप से पैदा हुए बच्चे को कानूनी रूप से मान्यता दिया गया है। ऐसे बच्चे को वह अधिकार दिए जाएं जो कानूनी तौर पर जो शादी शुदा जोड़े के बच्चों को मिलता है।

22 नवंबर 2013 जस्टिस राधा कृष्णन की बेंच ने स्पष्ट कर दिया और कहा कि लिव–इन रिलेशनशिप न तो पाप है न ही अपराध, लिव–इन रिलेशनशिप में रहने वाली महिला को पत्नी के अधिकार और अधिकार दिलाने के लिए कुछ नियम बनाए गए हैं। प्रकार हैं.

1. लड़का और लड़की की शादी की उम्र पूरी करें।
2. वैधानिक रूप से विवाह के योग्य दोनों।
3. एक लम्बे समय से लिविंग में रह रहे हैं।
4. एक भावात्मक सम्बन्धों के साथ–साथ लंबे समय तक लिविंग में रह रहे हैं।

भारत में लिव–इन रिलेशन के कारणः.

1. वैश्वीकरण भारत में लिव–इन रिलेशन का एक मुख्य कारण है। इससे भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन आया, पश्चिमी जीवन शैली का प्रभाव पड़ा, इससे लिव–इन–रिलेशन का जन्म हुआ।
2. आधुनिक शिक्षा का विकास हुआ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ और साथ ही लोगों की सोच तार्किक वैज्ञानिक हुई।
3. वैयक्तिक स्वतंत्रता व स्वच्छन्दता में वृद्धि हुई जो समाज सापेक्ष है।
4. संचार क्रांति से सुचनाओं और संस्कृति का प्रचार–प्रसार हुआ।
5. 21वीं शताब्दी युगल की आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई, जो लड़का और लड़की योग्यता के अनुसार नौकरी प्राप्त करके दोनों आत्मनिर्भर रूप से रहने लगे।

भारत में लिव–इन–रिलेशनशिप के लाभः.

1. लिव–इन रिलेशनशिप में वैवाहिक जिम्मेदारिया लागू नहीं होती है।
2. दोनों लड़के और लड़की दिल–दिमाग से एक–दूसरे को स्वीकार करते हैं।
3. प्रेम और सम्मान के साथ रहते हुए जीवनसाथी की सच्चाई और पूर्वावलोकन से परिचित हो जाते हैं।
4. एक साथ रहने से उनके पैसे की बचत होती है।
5. लड़के और लड़की को एक–दूसरे से मिलने और समझने का मौका मिलता है।
6. अच्छी समझ होने के बाद वह शादी में बदल जाती है।

लिव–इन–रिलेशनशिप से नुकसानः.

1. विवाह संस्था के सामने चुनौती है। क्योंकि भारतीय समाज एक पारंपरिक समाज है। जो भारतीय संस्कृति का समक्ष संकट है।
2.ऐसा रिश्ता टूटने पर महिलाओं को अधिक शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तनाव झेलना पड़ता है।
3. इस तरह के रिलेशनशिप से पैदा हुए बच्चों को समाज में तिरस्कार ही झेलना पड़ता है। ऐसे में बच्चे तनावग्रस्त हो जाते हैं।
4.सामाजिक विखण्डन अलगाव की समस्या बढ़ जाती है।
5. लिव–इन में रहने वाले दो लोगों की वजह से उनका पूरा परिवार को तनाव झेलना पड़ता है, क्योंकि इस रिश्ते को समाज में अभी अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है।

निष्कर्ष एवं सुझावः.

1.विवाह को एक पवित्र संस्कार के रूप में देखा जाता है जो पश्चिम के प्रभाव से एक विशिष्ट जनसंख्या पश्चिमी संस्कृति को ग्रहण करती प्रतीत होती है। निश्चित रूप से लिव–इन में जीवन जीने की एक शैली को प्रभावित करती है।
2.भारत के सन्दर्भ में लिव–इन रिलेशन को अभी तक भारतीय जनमानस द्वारा पूर्णतया स्वीकार्य नहीं किया गया है। इसलिए कुछ लोग इसे सांस्कृतिक संकट के रूप में देखते हैं।
3.वैश्वीकरण के वर्तमान दौर से जहां वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता में वृद्धि के साथ सांस्कृतिक स्वतंत्रता के प्राप्ति में वृद्धि हो रही है। ऐसे प्रभाव से भारतीय समाज को पूर्णतः मुक्त रख पाना व्यवहार में संभव नहीं है।
4.जहां तक विवाहित पुरुष के साथ रहने वाली स्त्री से पैदा हुए बच्चों के अधिकार के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि जन्मदाता की गलतियों के कारण संतान के मूल अधिकार का हनन नहीं होना चाहिए, उसे पुत्र का दर्जा एवं अधिकार मिलना चाहिए।
5. मूल रूप से निष्कर्ष यह हो सकता है कि यहां दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए सन्तुलित दृष्टिकोण रखना चाहिए और सर्शत लिव–इन रिलेशनशिप को मंजूरी मिलनी चाहिए।

संदर्भ सूची–

1. https://www-jansatta-com/ explained / what is live in-relationship
2. https://niyamkanoon in/live-in relationship-law.
3. https://www-bbc-com/hindi/india-6181784.
4. https://www-legalservicindia-com-translate goog/legal/article-live-in-relationship-in-india-present Position.
5. Journal of Socio-Educational - Cultural Research.
6. Sharma Yogendra Women Empowerment Condition and Direction: 2018: 2020 Page No- 101
7. https://www-danaindia-com/hindi/dna-special/news- live relationship.
8. https://share-jionews-com- s /1/Apis.
9. https : ''hindi. live law.in/know-the-law/live. in-relationship-160317
10. https.''trianphias.com/blog/live-in-rolationship-in-indindn-society.

Economic Aspects of Sustainable Development in India

Dr.Roli Pandey
Assistant Professor
S.M.P.G College, Varanasi

Abstract :
Sustainable development in India is a pressing issue that seeks to harmonize the country's rapid economic expansion with environmental preservation and social equity. This paper explores the economic dimensions of sustainable development in India, focusing on energy transition, agricultural sustainability, urban development, industrialization, and fiscal instruments like green budgeting. It integrates a literature review with data from government sources, global institutions, and academic studies to assess India's progress and Constraints. The study concludes that while India has demonstrated potential in renewable energy and policy innovation, challenges like income disparity, ecological degradation, and institutional bottlenecks hinder holistic sustainability

Key words : Sustainable development, Energy transition , Decarbonization, Sustainable livelihoods, Green Finance

Introduction

India, a rapidly developing economy with a population of over 1.4 billion, faces a critical development paradox; how to achieve high economic growth while ensuring ecological sustainability and social equity. Since the economic liberalization reforms of 1991, India has experienced significant economic transformation, GDP growth has averaged between 6% to 8% over the last two decades, with major gains in services, manufacturing, the digital infrastructure. However, this economic trajectory has also intensified several environmental and social challenges – resource depletion air and water pollution, biodiversity loss, and increasing income inequality.

The concept of sustainable development, introduced in the 1987 Brundtland Commission Report, has since gained global acceptance as a framework for balanced progress. It advocates for development that meets current needs without compromising the ability of future generations to meet theirs. For India, the imperative to adopt sustainable development arises from both domestic pressures – such as environmental degradation, energy, insecurity and rural distress- the global responsibilities, particularly under the United Nations Sustainable Development Goals (SDGs) and the Paris Climate Agreement.

India ranks 111th on the SDG index 2024, highlighting challenges in areas like clean energy, decent work, responsible consumption and climate action. Although the country has made considerable progress in renewable energy and sanitation, there remain significant gaps in sustainable agriculture, inclusive urbanization, and green industrialization.

Given India's diversity-economic, ecological and demographic-sustainable development must be multi-dimensional and context-specific. This paper aims to explore how India's economic strategy incorporates (or fails to corporate) principles of sustainability, especially through its energy policies, agricultural practices, industrial policy, urban planning, and public finance mechanisms.

This study is both timely and essential, as India is expected to play a key role in determining the success of the global sustainability agenda. Its development choices will not only affect its own future but also contribute to global environment outcomes and geopolitical stability.

Literature Review

The literature on sustainable development in India is diverse, reflecting multiple dimensions - economic, environmental, institutional, and social. We will understand through categorized summary of key scholarly contributions:

Foundational and Global Literature:

Brundtland Report (1987) introduced the idea of sustainable development as intergenerational equity, setting the normative foundation.

Saches (2015) in the Age of Sustainable Development emphasizes the need for integrated development strategies that harmonize growth, equity and environmental limits.

Raworth (2017) in her: "Doughnut Economics" model argues that economics must operate within planetary boundaries while ensuring a social foundation for all.

These frameworks influence how Indian scholars and policymakers interpret sustainable growth.

India-Specific Academic Studies

Jha and Tripathi (2019) evaluate India's performance on the SDGs, finding significant variation across states, especially in health, education, and infrastructure. They argue that India's federal structure must be leveraged for localized solutions.

Kumar and Managi (2018) assess India's natural capital depletion using the inclusive Wealth Index. They highlight how GDP growth often masks losses in ecological wealth, which are not accounted for in conventional economic indicators.

Sinha et al. (2020) study India's carbon emissions and economic growth relationship and find evidence of a weak decoupling- indicating progress, but at an insufficient pace to meet climate goals.

Sectoral Literature

Energy: TERI (2023) notes that India's renewables boom (particularly in solar energy) is a positive trend, but warns that coal remains deeply entrenched in the national energy mix. Grid integration, storage, and policy incentives need further attention.

IEA (2022) highlights India as a major player in global energy demand and underscores the need for policy coherence to ensure a just energy transition.

Agriculture

Narayanan and Gulati (2021) discuss the environmental costs of MSP-linked crop monocultures, especially in Punjab and Haryana, and advocate for crop diversification and efficient irrigation.
Kumar and Sharma (2016) emphasize the role of traditional knowledge and organic farming in promoting sustainable rural livelihoods.
Ahluwalia (2019) critiques Indian urban planning, arguing that administrative fragmentation and weak institutional capacities hamper sustainable city development. She recommends integrating land-use planning with transportation and housing.
UN-Habitat (2023) observes that India's urban growth is rapid but unplanned, leading to problems like slum proliferation and inadequate infrastructure resilience to climate change.

Institutional and Policy Perspectives

NITI Aayog's SDG India Index (2023) serves as the most comprehensive policy tool to monitor India's SDS progress. It reveals vast regional disparities, suggesting the need for targeted state=level policies.
World Bank (2023) identifies governance bottlenecks- such as bureaucratic delays, lack of inter-ministerial coordination, and weak enforcement- as major obstacles to sustainability.
Roy and Ghosh (2020) emphasize the role of local governance (Panchayats and Municipalities) in implementing sustainable development, calling for decentralization of resources and decision-making powers.

Economic Instruments and Green Finance

Sharma and Bhanumurthy (2020) explore green budgeting initiative in India. They find that while some states have taken pioneering steps, the integration of environmental metrices into mainstream budgeting remains nascent.
RBI (2022) and SEBI (2023) have started issuing guidelines for green bond and ESG disclosures, signaling a shift towards sustainable finance. However, the ecosystem for climate finance is still underdeveloped.

Gaps Identified in the Literature

Despite the rich discourse, several research gaps remain:
Limited integration of social-economic inequality within sustainability frameworks.
Underrepresentation of tribal, coastal, and mountain economics in sustainable development studies,
Inadequate longitudinal studies on the impact of government schemes.
Weak focus on technology policy and innovation ecosystems for green growth.

Summary of Key Themes from Literature

eme	ight
owth Vs. Sustainability	nsion persists: weak decoupling achieved
ergy	sitive momentum in renewables, but fossil fuel dependence remains
ricultural Sustainability	reatened by input-intensive farming and water

	stress
ɔan Development	ɨt but Unplanned: Infrastructure resilience is a key concern
titutions and Governance	ntralized decision-making hamper effective implementation
ance and Budgeting	ɛen finance is emerging but underdeveloped.

Discussion:

Economic Growth and Environmental Sustainability:

India's GDP grew at an average rate of 6.7% in the last decade. However, this economic expansion has been accompanied by rising carbon emissions, loss of biodiversity, and overexploitation of natural resources. According to the World Bank, environmental degradation costs India nearly 5.7% of its GDP annually. This highlights the urgency of decoupling economic growth from environmental harm.

Energy Transition and Decarbonization

India is the third-largest emitter of co_2, yet is has also become a leader in renewable energy. India is now committed to the energy transition of decarbonization and achieving a state of net zero emission. India has made remarkable progress in recent years. It now has the 5th largest solar and 4th largest wind power capacity in the world, with its total capacity being over 100 GW. Though the share of renewables in total electricity generation is now over 10%, more than 70% of the country's electricity was still by fossil fuels in 2021.

At COP26, India's 2030 decarbonization target was announced. The highly ambitious goal includes decarbonizing energy to 50% and achieving 500 GW of fossil fuel-free generating capacity by 2030.This was a very large increase above its Paris commitments, far more than expected.

The National Solar Mission and International Solar Alliance have driven massive solar park developments. National Solar Mission aims to increase solar power on India, Focuses on grid-connected and off-grid solar power projects.

International Solar Alliance launched in 2015 by India and France at the COP21 climate summit in Paris. Aims to mobilize over $1,000 billion in investments for solar energy by 2030.This alliance has 120 member and signatory countries, with its headquarters in India.

The PK-KUSUM (Pradhan Mantri Kisan Urja Suraksha evam Utthaan Mahabhiyan) scheme focused on solarizing agriculture. It aims to enhance the income the income of farmers, promote renewable energy, and reduce reliance on fossil fuels in the agricultural sector. This scheme offers financial assistance, including subsidies and loans, for installing solar pumps and grid-connected power plants on farmland.

Agriculture and Sustainable Livelihoods

Agriculture and sustainable livelihoods are intrinsically linked, particularly in rural areas where agriculture forms the backbone of many communities. Sustainable agricultural practices are crucial for ensuring long-term food security, environmental health, and economic well-being for farmers and their communities.

According to PIB , FY 2024 ,The agriculture and allied activities sector contributes approximately 16% to country's GDP FY2024 , and employes over 46% of the population.

Paramparagat Krishi Vikas Yojana (PKVY) promote organic farming. Soil Heakth Cards help reduce input overuse. E-NAM improves market efficiency and farmer income.

Urbanization and Infrastructure Development

India is expected to be 40% urban by 2030, with an expected 800 million people living in urban areas within the next three decades. Urban growth creates demands for housing, transport, water and waste systems. India needs substantial investment in urban infrastructure, estimated to be around INR 70 lakh crore by 2036, to meet the needs of its expanding urban population.

Key Government Initiative:

The Indian government has launched various initiatives like the **Smart Cities** and **PM Gati Shakti Atal Mission** for Rejuvenation and Urban Transformation (AMRUT) aims to improve water supply and sewerage.

Swachh Bharat Mission has significantly improved sanitation coverage.

India is also investing in digital infrastructure, with rural areas expected to contribute significantly to the growth of internet users.

Challenges:

Rapid urbanization also presents challenges such as meaning urban sprawl, ensuring adequate housing, providing basic services, and addressing environmental issues.

Industrial Policy and Green Innovation

India's economic ambitions via Make in India and PLI (Production Linked Incentive) schemes aim to boost manufacturing. However, MSMEs, which contribute approximate 30% to GDP, often lack access to green technologies. Environmental compliance remains weak due to institutional loopholes.

The Zero Effect Zero Defect (ZED) scheme incentivizes clean production, but adoption is limited. Future policies must incentivize, circular economy practices, and clean technology transfers.

Public Finance, Green Budgeting, and Climate Investment

This approach aims to enable systematic tracking of funds, expenditure, and policies related to green objective, facilitating better coordination and identification of financial needs for climate action and environmental sustainability.

India is incorporating environmental indicators into budgeting. Several states (e.g. Kerala, Himachal Pradesh) have introduced Green Budgets. The National Adaptation Fund for Climate Change (NAFCC) supports local resilience-building. India has mobilized Green Bonds and sovereign bonds to fund sustainable infrastructure. However, total climate finance

requirements (approximate $ 2.5 trillion by 2030) far exceed current domestic and internation funding. Private investment and global climate finance mechanisms are essential.

Conclusion:

Sustainable development in India is not just a necessity – it is a strategic imperative. Economic growth that ignores environmental and social costs is unsustainable in the long run. India has demonstrated leadership in renewable energy, policy innovation, and international diplomacy on climate issues. However, it faces persistent structural and institutional challenges, particularly in rural livelihoods MSME greening, and urban planning.

For India to align economic ambitions with sustainability, the following are crucial: Strengthening institutional capacity at national and local levels. Accelerating the shift to green energy and sustainable agriculture. Ensuring inclusive growth that reduces disparities across regions and communities. Scaling up public-private partnerships for sustainable infrastructure. Enhancing accountability and transparency in policy implementation.

India's development path will not only determine its own future but also will significantly influence global climate and economic sustainability.

Bibliography:

1. Sachs, J.D. (2015). The Age of Sustainable Development. Columbia University Press.

2. Jha, R., & Tripathi, S. (2019). "Sustainable Development in India: A Review." Indian Journal of Economics and Development, 15(2), 101-110.

3. NITI Aayog. (2023). SDG India Index Report 2023-24. Government of India.

4. World Bank. (2024). India Development Update: Green Growth Opportunities.

5. TERI. (2022). Energy and Environment Outlook. The Energy and Resources Institute.

6. Ministry of Environment, Forest and Climate Change (MoEFCC). (2023). Annual Report 2022–23.

7. Centre for Science and Environment. (2024). State of India's Environment Report.

8. Ray, S., & Ghosh, P. (2020). "Institutions and Sustainable Development in India." Economic and Political Weekly, 55(3), 34-41.

9. Government of India. (2023). Economic Survey 2022–23. Ministry of Finance.

10. United Nations Development Programme (UNDP) India. (2023). Accelerating Progress on SDGs in India.

Economic Aspects of Sustainable Development in India

NATIONAL EDUCATION POLICY 2020- A VISION OF SOCIAL JUSTICE AND EQUITY

SARVESH KUMAR
Research Scholar,
Sakaldiha P.G. College, Sakaldiha,
Chandauli, U.P.

ABSTRACT

It is a well-recognised fact that education is a potent tool to ensure a just and inclusive society. Education is indispensable in a society like ours, which has multiple diversities based on region, religion, caste, ethnicity, and language, etc., to ensure social justice and empowerment of the masses. To fulfil constitutional goals and objectives, the Government of India has introduced three National Education Policies in 1968, 1986, and 2020, respectively, since independence. There is a gap of 34 years between NEP 1986 and NEP 2020, and during that phase our society underwent various adjustments due to LPG reform in 1991 and rapid socio-economic transformation in the 21st century. Keeping these things in mind, GoI adopted a new National Education Policy in 2020 that is in the direction to achieve the goals of 'New India' as well as 'Viksit Bharat by 2047.'. This paper seeks to analyse NEP 2020 and its different provisions in ensuring social justice, empowerment, development, and inclusion in society. The NEP 2020 proposed various reforms and initiatives for the revamping of educational structures such as governance, regulations, pedagogy, curriculum, etc., to ensure quality education for all. The NEP 2020 was also formulated to fulfil the commitment to social justice and equity by removing various disparities and inequalities in the education system at different levels. Additionally, NEP 2020 is helpful in achieving optimal utilisation of the demographic dividend and distinct sustainable development goals and targets such as SDG 4, SDG 5, SDG 8, SDG 10, and SDG 16 directly. Thus, the NEP 2020 aims to create a more inclusive, equitable, and vibrant education system that prepares students for the challenges of the 21st century.

KEYWORDS: Education Policy, Social Justice, Equity, Inclusive, Socio-economic Transformation, New India, Viksit Bharat, SDG, Challenges

INTRODUCTION

The NEP 2020 is a comprehensive framework aimed at transforming India's education system. It was approved by the Government of India on July 29, 2020, replacing the 34-year-old 1986 National Policy on Education. The new policy focuses on promoting holistic development, problem-solving skills, and critical thinking, with an emphasis on vocational education. The NEP 2020 aims to make education more flexible, multidisciplinary, and aligned with the demand of the 21st century. The key objectives of NEP 2020 are to ensure universal access to school education from preschool to secondary level, achieve foundational literacy and numeracy skills by 2025, and increase the Gross Enrolment Ratio to 50% by 2035. To achieve the above

objectives, it introduced reforms to replace the traditional 10+2 structure with a new curricular framework, a 5+3+3+4 structure, established an innovative education centre to impart high-quality education, and emphasised teacher training and capacity building. In higher education, the NEP 2020 promotes multidisciplinary education and research, enhances institutional autonomy and accountability, and fosters international collaboration and exchanges. Thus, the NEP 2020 aims to transform India into a global knowledge superpower by 2030 and ensure quality, inclusive, and equitable education for all and prepare students for the challenges of the 21st century.

Social justice is a concept that promotes fairness and equality across different aspects of society, addressing issues like poverty, discrimination, and inequality. It is about creating a just and fair society in which all people have equal access to opportunities and resources. There are various key dimensions of social justice, such as ensuring fair distribution of wealth, resources, and income; promoting sustainable development; and addressing racial conflicts. Along with this, promote equality and inclusive development for all irrespective of racial or ethnic community and provide quality healthcare for all regardless of their background status.

Equity refers to fair and just distribution of resources and opportunities within a society. It aims to remove systematic inequalities and discriminations and promote equal access to economic, political, and social opportunities for all, regardless of their identity, status, and backgrounds. Social equity encourages active participation and engagement from members of society. It empowers marginalised and vulnerable communities and enhances their capabilities. Social equity promotes recognition and respect for diverse cultures and identities and supports multiculturalism. Education plays an important role in equity by ensuring empowerment, inclusive development, and diverse representation in decision-making.

PROVISIONS OF SOCIAL JUSTICE AND EQUITY IN NEP 2020

Incorporating the values of diversity, equity, and inclusion into the educational system creates the groundwork for universal access to education, a greater number of people entering the workforce, and chances for lifelong learning for all students. With implications for the growth of an inclusive community and society as a whole, the National Education Policy (NEP), 2020, highlights that "education is the single greatest tool for achieving social justice and equality." It is necessary to address educational impediments, facilities, and services for Children with Special Needs (CwSN) in order for policy to be implemented. With a special chapter on equitable and inclusive education that focuses on issues, challenges, and suggestions for bridging the gaps and minimising the differences in access and participation of all students, the NEP has integrated the elements of disability inclusion throughout the policy text. The SEDGs, or Socio-Economically Disadvantaged Groups, are an umbrella term that encompasses gender identities, socio-cultural and socio-economic identities, geographical identities, and disabilities. The policy addresses these issues and offers recommendations for including under-represented student groups, including children with disabilities.

Inclusion and equity are principles of quality education that should be embedded in all aspects of education policy (UNESCO Citation2017). However, inclusion and equity are elusive

concepts (Ainscow Citation2020). The concern with conceptualising inclusion and equity runs parallel to the *neo-colonial* (Armstrong, Armstrong, and Spandagou Citation2011) concern. International developmental agencies have been found to push countries of the Global South into implementing northern ideals of inclusion without sufficiently engaging with contextual complexities (Singal and Muthukrishna Citation2016).

However, it is ascertained that the core message of the two principles of inclusion and equity remains that 'all learners matter and matter equally' (UNESCO Citation2017, 12), while focusing on learners from marginalised contexts (Ainscow Citation2020). More recently, Ainscow (Citation2020) maintains that inclusion and equity are a process by which barriers to be present, to participate and to achieve are removed for all learners through personalised educational responses.

The National Education Policy 2020 has a section called Equitable and Inclusive Education: Learning for All (Section 6). It is important how policy takes into account the different realities of a woman or a girl. The NPE also mentions goals of education. The very first goal is to achieve social justice and equality through an inclusive and equitable education. Second policy talks about in section 6.1 "The goal is to benefit all of India's children so that no child loses any opportunity to learn and excel because of the circumstances of birth or background" (NPE, 2020). In this case, the policy's goal is to help all Indian children. The objective is uniform and universal. It definitely takes into account the individual's social background as well as prejudices and biases, but it guarantees the same kind of opportunity because the nation is unable to advance owing to the lack of knowledge caused by prejudices and biases based on gender, caste, and religion.

The policy aims to achieve 100% Gross Enrolment Ratio in school education by 2030 by bridging social gaps in access, participation and learning outcomes in school education (Singh, 2020). The NEP 2020 emphasises the promotion of social justice as one of its core principles (Kem, 2020). It aims to create a more equitable and inclusive education system that addresses historical and systematic inequalities while providing equal opportunities for all students, regardless of their background, socio-economic status, caste, gender or physical abilities (Kem, 2020).

With an emphasis on social justice, equity, and inclusion, the National Education Policy (NEP) 2020 is a revolutionary reform that aims to reshape India's educational system. Regardless of caste, gender, disability, or socioeconomic background, NEP 2020 envisions a future in which everyone has access to education as a fundamental right and a potent tool for socio-economic upliftment. Inclusive and equitable society is charaterised by the ability to dream, learn and thrive. Several aspects of the NEP 2020 demonstrate its commitment to promoting social justice and equity such as-

- **Equitable access to education**

NEP 2020 identifies Socio-Economically Disadvantaged Groups (SEDGs) that have historically faced systemic barriers in education. These include:

- Scheduled Castes (SCs) and Scheduled Tribes (STs)

- Other Backward Classes (OBCs)
- Economically Weaker Sections (EWS)
- Women and transgender individuals
- Persons with Disabilities (PwDs)
- Migrant communities and rural populations

The NEP seeks to ensure that all children have access to education, irrespective of their caste, gender, socioeconomic status, or disability. Equal opportunity and the removal of constraints that prevent marginalised groups from participating are underlined. NEP 2020 places a strong emphasis on residential schooling, fee waivers, scholarships, and targeted financial assistance to improve impoverished neighbourhoods in order to close the gap. It also encourages the use of public-private partnerships and community-based activities to improve educational accessibility. The goal of the policy is to prevent the segregation and isolation of racial and ethnic minorities, people with disabilities, and people who experience language-related learning challenges and run the risk of being left out of educational opportunities (Soni, 2023).

- **Education for person with disability**

The policy highlights the need for early identification and intervention for children with special needs. In accordance with the Rights of Persons with Disabilities Act of 2016, NEP 2020 guarantees greater accessibility and inclusivity in education. These measures include barrier-free infrastructure in schools and universities, trained special educators in mainstream institutions, flexible assessment methods to cater to distinct learning needs, assistive technology and digital resources, braille books, and sign language interpretation.

- **Women empowerment and gender inclusion**

In order to address gender-based inequalities, NEP 2020 suggests creating a Gender Inclusion Fund to fund programs that boost the enrolment of transgender and female students. To promote increased participation of women, special attention is paid to STEM fields (science, technology, engineering, and mathematics). In order to promote gender equality in schools and colleges, the policy also guarantees secure and harassment-free learning environments. In order to combat gender bias and advance inclusivity, NEP also supports teacher training and gender-sensitive education. Further, it aims to eliminate gender disparities and biases in education by providing equal opportunities and a safe and supportive environment for all students.

- **Multidisciplinary and multilingual education for social inclusion**

The policy encourages a multidisciplinary approach to education, which can help breakdown traditional rigidity between various fields of study. This flexibility in academics allows students to pursue their interests, regardless of societal norms and pressures. Further, students from tribal and rural communities are sometimes hindered by language barriers. NEP 2020 advises using a mother tongue or regional language as the primary language of instruction up to Grade 5 (ideally up to Grade 8) in order to address this. This method promotes cultural diversity in schooling and improves understanding. It also mandates the development of bilingual learning resources to support transition to other languages. Further, the policy recommends that children be taught in their mother tongue until at least class 5. This approach

respects linguistic diversity and provide a more flexible and inclusive learning environment, especially for marginalized communities (Gong & Wen, 2023).

- **Vocational education for social justice and economic equity**

The NEP 2020 recognises the importance of vocational education in promoting social justice. NEP 2020 integrates vocational education from Grade 6 onwards, ensuring students gain practical skills that enhance employability and reduce socio-economic disparities. By 2025, at least 50% of students will receive vocational exposure**,** with industry collaborations providing hands-on training. By establishing education as a means of achieving self-sufficiency, this policy seeks to close the economic gap. In order to better prepare students for the job search of the real world, internship opportunities and skill development programs will also be enhanced. The policy seeks to address the digital divide by providing access to technology and online resources for students from disadvantaged backgrounds, ensuring that they are not left behind due to lack of resources.

- **Ensuring retention and reducing dropout rates**

High dropout rates among marginalized and backward communities remain a challenge. The NEP 2020 tackles this by expanding early childhood care and education (ECCE) to strengthen foundational learning, introducing alternative education centres for migrant and street children, providing midday meals and financial aid to encourage continued education, and strengthening community outreach programs to bring back dropouts into the educational system.

- **Sustainable Development Goal**

The Sustainable Development Goals (SDGs) and the National Education Policy (NEP) 2020 are closely related, especially SDG 4: Quality Education. By making India's educational system more accessible, equitable, and comprehensive, NEP 2020 seeks to ensure that everyone has access to opportunities for lifelong learning. Here are several ways that NEP 2020 relates to the different SDG objectives-

- NEP 2020 focuses directly on SDG 4, i.e., universal access to quality education from preschool to higher education, which ensures free, equitable, and quality primary and secondary education for all (SDG 4.1).
- NEP 2020 also aligns with SDG 5 that encourages gender inclusion funds, special education zones, and support for disadvantaged groups and aims to eliminate gender disparities in education (SDG 5.1, 5.5).
- NEP 2020 also supports SDG 8, which emphasises vocational education**,** internship opportunities, and skill development and promotes youth employment and entrepreneurship (SDG 8.6).
- NEP 2020 aligns SDG 9 whcih promotes integration of STEM education**,** digital learning, and research and encourages innovation through National Research Foundation (NRF) (SDG 9.5).

- NEP 2020 also aligns with SDG 10 and SDG 16 by special initiatives for SC/ST/OBCs, minorities, and differently-abled students, which ensures equitable and just access to education for marginalised groups.

Thus, NEP 2020 is a crucial step in India's progress towards achieving the SDGs by 2030**,** ensuring a holistic, accessible, and skills-driven education system**.** It promotes sustainability, inclusivity, and innovation, making it a transformative policy for national development.

- **Open and Distance Learning (ODL) for Wider Reach**

NEP 2020 encourages distance learning initiatives, online courses, and open schooling for students who are unable to attend traditional schools. Even the most remote regions can receive education because to the application of digital learning platforms, radio, and television-based instruction. The policy recommends the development of digital libraries, e-learning centres, and affordable internet connection to further improve access.

- **Ethical and Value-Based Education, and Community Participation**

Access is only one aspect of social justice and equity; another is the development of responsible, compassionate citizens. NEP 2020 incorporates civic duties, ethics, and constitutional values into the curriculum. Critical thinking, respect for diversity, and active participation in society are all emphasised for students. Additionally, the policy encourages education about sustainability, environmental consciousness, and a sense of global responsibility in students. In an effort to reduce the exclusion of students on the basis of language and disability, conscious understanding of roles and responsibilities as well as community engagement have developed. This would encourage students to understand more about India's rich cultural diversity and traditions.

- **Monitoring and Implementation for Social Justice and Equity**

NEP 2020 suggests the following in order to ensure the effective implementation of these policies:-

- Regular audits and assessments to track progress in equitable education
- Involvement of NGOs and civil society organizations in monitoring and implementation
- Collaboration between central and state governments to allocate resources efficiently

The National Education Policy (NEP) 2020 plays a critical role in realizing the vision of New India and Viksit Bharat (Developed India) by 2047—the centenary of India's independence. Viksit Bharat 2047, New India, and the National Education Policy (NEP) 2020 are all interrelated ideas that strive to make India an affluent, inclusive, and self-sufficient country by 2047, the centenary of its independence, as well as a global knowledge superpower**.** It lays the foundation for an education system that fosters innovation, inclusivity, and global competitiveness**.** Above all, the cultivation or revival of creative human activity has been emphasised in NEP 2020 as being crucial to the educational system of the twenty-first century.

SOCIAL JUSTICE AND EQUITY IN NEP 2020: A CONTRADICTION

Although the goal of the National Education Policy (NEP) 2020 is to provide an inclusive and equitable educational system, there are a number of concerns regarding how effectively it

will work to ensure social justice. Given that the policy has a progressive goal, it has problems with accessibility, execution, and resolving societal structural injustices. Concerns regarding accessibility for underserved groups are raised by the growing use of online education and digital learning, especially in higher education. The lack of reliable internet, digital devices, and electricity for many students from economically disadvantaged groups, rural areas, and distant locations exacerbates rather than closes the educational divide. NEP 2020 encourages public-private partnerships and greater autonomy for higher education institutions, which may lead to increased privatization and commercialization of education. This shift could disproportionately affect students from disadvantaged backgrounds, making education less affordable and exacerbating socio-economic inequalities. NEP 2020 promotes cooperation and collaboration between public and private educational institutions so that they can share assets and introduce the best practices of private institutions in government institutions. However, this strategy may not succeed in providing quality education but, in fact, will increase exclusion and exploit the developing commercialisation of education. Further, the creation of an administration and financial cadre to head the educational institutions rather than principals from among senior faculties also demotivates teachers. Yet, NEP 2020 claims that teachers are at the centre of its reform strategy. Moreover, the assertions made by NEP 2020 advocating for a singular national identity through uniform traditions, pedagogical approaches, and digital platforms stand in stark contrast to the rich diversity of India's multitude of people, languages, and socio-cultural narratives.

CONCLUSION

To conclude, it can be stated that, the NEP 2020 seeks to empower marginalised communities, ensure equal opportunities, and minimise discriminations based on regions, religions, caste, languages etc. in order to achieve social justice and equity by means of education. A more just and equitable society is promoted by the policy's inclusion, accessibility, and skill-oriented approach to education. By envisioning a future where education is a powerful tool for promoting social justice and equity, NEP 2020 has the potential to transform India’s education system and develop a more just and equitable society.

A vibrant national education system cannot perpetuate and reinforce current inequalities and hierarchies; rather, it must be emancipatory and transformative. Transforming a diverse and diversified population into a rich learning resource for the development of sensitivities that are open to critical self-questioning and not characterised by prejudice and conformism is the true challenge facing the educational system. This cannot be left to the whims of the market, where private players react in accordance with profit rules. Despite the positive vision for education presented by NEP 2020, social justice requires addressing these issues. Affirmative action, digital inclusion, financial investment, and representation of under-represented communities in decision-making are all necessary to achieve truly egalitarian education. NEP 2020's success hinges on its successful execution, policy oversight, and ongoing social and governmental initiatives to address the systemic injustices in India's educational system.

REFRENCES

- MHRD. (2020). National Educational Policy 2020, Ministry of Human Resources and Development, Government of India.
- Singh, B. (2020). National education Policy 2020: Major Impact on Your Childs's Curriculum & Future, Univariety, august 3, 2020.
- Sarkar, R. (2023). National Education Policy 2020 and Social Justice, International Journal of Social Impact, Vol. 8, Issue 3, July-September, 2023.
- Prasad, M. (2020). Reclaiming Education policy for Equality and Social Justice, The JMC Review, an interdisciplinary Social Science Journal of Criticism, Practice & Theory, Vol. 4, 2020.
- Anand, I. (2021). Education to Achieve social Justice and Equality: A Commentary on NEP 2020, https://www.thenewleam.com/21628/.
- Kalita, Dr. P.C. Equitable and inclusive Education of NEP 2020: It's Importance for Learning Perspective, International Journal for Multidisciplinary Research.
- NEP 2020: A Paradigm Shift in the Indian Education System, https://www.entab.in/NEP-a-paradigm-shift-in-indian-education-system.html
- Rangrajan, R. Sharma, U. & Grove, C. (2021). Inclusion and Equity in India's new National Educational Policy (NEP): an analysis using the Context Led Model of Education Quality, https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/13603116.2023.2295907#abstract

The Habitus of the Hustle: A Bourdieusian Analysis of Auto-Rickshaw Drivers in Urban India

Kumar Vishal
Research Scholar
University Department of Sociology
Ranchi University

Abstract

This paper provides a Bourdieusian analysis of auto-rickshaw drivers in Ranchi, focusing on how their daily practices are shaped by habitus, field, and capital. The study argues that drivers' behaviors, from fare negotiations to navigating regulations, are not merely rational choices but are embodied dispositions formed by a lifetime of navigating a precarious informal economy. Drawing on existing literature, local documents, and the author's observations, the paper analyzes the multi-layered urban transport field and the struggle to convert valuable but unrecognized skills (cultural capital) and networks (social capital) into stable economic resources. The analysis is used to develop policy recommendations that aim to change the structural constraints of the field, advocating for a "politics of recognition" that values drivers' practical knowledge and dignity.

Keywords- habitus; field; capital; informal labour; symbolic violence;

Introduction

Auto-rickshaws are a public, highly visible component of urban mobility in Ranchi, yet the drivers who operate them occupy ambiguous positions in civic life. They are necessary for short, last-mile trips but are also frequent targets of public complaint and enforcement drives. Existing research in India argues that the majority of urban work is informal and that auto-rickshaw drivers face volatile earnings, irregular hours, and regulatory uncertainty (WIEGO, 2020).

This paper reads those practical realities through Bourdieu's theoretical triad of **habitus**, **field**, and **capital**. The central claim is simple: drivers' day-to-day practices are better understood as historically produced, embodied dispositions that make particular tactics appear sensible within a contested urban transport field. This analysis integrates the author's observational notes from Ranchi with broader empirical studies of auto-rickshaw economies and with documentation of Ranchi's municipal and transport practices, such as permit regimes, enforcement drives, and local association responses. Where I present short examples, these are explicitly composite and based on direct observation rather than fabricated statistics. This revised paper expands upon the initial analysis by providing a more detailed exploration of the various actors within the transport

field, including the role of commuters and technology, and by examining the complex, and at times contradictory, nature of the drivers' embodied habitus. A brief acknowledgement of the gendered nature of this labor is also included to provide a more complete picture of the social landscape.

Situating the Problem: Informality, Autorickshaws, and Ranchi's Transport Governance

Informality shapes India's urban labour market: countrywide estimates show that a large share of workers lacks formal social protection and operate under informal arrangements (WIEGO, 2020; International Labour Organization [ILO], 2018). Auto-rickshaws, occupying an intermediate niche between formal public transit and informal tuk-tuk economies, are both indispensable and contested. Scholarly work on autorickshaws across Indian cities documents a persistent tension: these vehicles provide flexible, low-cost mobility while drivers face criticism, punitive policy impulses, and precarious economics (Badami et al., 2016).

Ranchi offers a focused case because its municipal authorities and transport agencies have recently been active in regulating paratransit modes, including autorickshaws and e-rickshaws. The Ranchi Municipal Corporation (RMC) hosts management systems for auto-rickshaw and e-rickshaw operations and has implemented route approvals and fine structures for violations. Local reporting documents cycles of enforcement drives, strikes by drivers, and municipal efforts to formalize stands and routes (Ranchi Municipal Corporation; Times of India reporting).

Two points matter for the analysis that follows. First, the macro-context of widespread informality conditions drivers' expectations and tolerances. Second, local governance dynamics, including permit complexity, standing scarcity, and enforcement unpredictability, create a field characterized by discretionary power and frequent misrecognition of drivers' claims. These are the structural contours within which habitus and capital operate.

Theoretical Framework: Bourdieu's Habitus, Field, and Capital

Bourdieu's conceptual triad helps shift attention from discrete acts to the durable structures that make practices intelligible (Bourdieu, 1977; Bourdieu & Wacquant, 1992). Habitus denotes the durable dispositions formed by history and socialization; field names the structured arena of struggle in which actors occupy positions; and capital extends beyond money to cultural, social, and symbolic resources convertible in the field.

Applied to auto-rickshaw drivers, habitus includes embodied driving skill, a practical temporal logic of long workdays and immediate earnings, and a predisposition of mistrust toward bureaucratic agents learned from repeated encounters. The field comprises municipal authorities, transport officers, police,

commuters, other transport providers, and, increasingly, platform firms. Capital for drivers includes small and volatile economic capital, embodied cultural capital (route knowledge and mechanical skill), dense local social networks, and fragile forms of symbolic capital derived from dignity in honest labour.

These categories interact dialectically. Habitus orients perception and practice, the field structures opportunity and constraint, and different forms of capital shape the range of possible strategies for survival and dignity. This framework allows us to see how a driver's decision to accept or reject a fare is not an isolated economic calculation but a practice deeply embedded in their personal history, social networks, and the unpredictable rules of the urban transport arena.

Methodological Orientation and Use of Observational Notes

This paper is a theory-guided qualitative analysis that synthesizes existing empirical literature with the author's prolonged observational notes from Ranchi. No fabricated numerical claims are introduced. Instead, the paper incorporates composite articles that are explicitly labelled as such and are constructed from the author's daily observations, conversations, and interviews. Where the text relies on municipal facts (permit systems, fine levels, stand proposals), I cite official or journalistic sources. For example, the Ranchi Municipal Corporation's public materials and the state permit portal document local regulatory instruments (Ranchi Municipal Corporation; spermit.jharkhand.gov.in).

The aim is conceptual clarity rather than statistical generalization. The articles illustrate mechanisms, such as habitus producing practical sense, capital enabling and constraining strategies, and the field producing misrecognition, that can be tested in focused ethnographic work later. This approach is similar to other qualitative studies of urban labor that use thick description to illuminate theoretical concepts within specific contexts (e.g., Cross & Karides, 2011).

The Habitus of the Hustle: Dispositions Shaped by Migration, Class, and Time

The drivers' habitus in Ranchi is the sediment of migration stories, caste and class positions, and repeated negotiation with urban governance. From personal observation and repeated conversations, several durable dispositions stand out.

Resilience Framed as Long-Hour Pragmatism:

Drivers normalize long, irregular workdays and optimize micro-strategies for meeting daily rental obligations, fuel costs, and family remittances. This habitus emphasizes immediate liquidity rather than long-term capital formation, a pattern common among informal workers who live on the edge of economic precarity (ILO, 2018).

Bodily Competence and Local Cognition:

Drivers embody specific practical knowledge: navigating congested chowks, improvising mechanical fixes, and reading micro-signs of neighborhood demand. This embodied competence is a form of cultural capital that is impactful in the transport field but underrecognized elsewhere. It is a form of "practical logic" that operates without formal codification (Bourdieu, 1977).

Distrust and Anticipatory Avoidance Toward Formal Institutions:

Repeated encounters with discretionary enforcement encourage tactics of avoidance, negotiation, and informal payments. The habitus thus includes a practical skepticism that shapes street-level interactions with police and transport inspectors. This is a rational response to a system that often treats them as a source of revenue rather than as legitimate economic actors.

Temporal Habituation:

The scheduling of work, family duties, and loan repayment deadlines reorganize temporal horizons so that the present-oriented logic of daily earning often trumps plans for longer-term investments. This is particularly true for daily renters, whose entire strategy is focused on earning enough for the day's payment before any other need can be met.

Contradictions within Habitus:

While the habitus is driven by a need to "hustle," it also contains internal tensions. Many drivers express a strong sense of pride and dignity in their work as honest labor that supports their families. This sense of worth, or symbolic capital, stands in stark contrast to the frequent public and institutional misrecognition that frames them as a nuisance. This internal conflict is a central part of their lived experience, shaping both their interactions with passengers and their collective action through associations.

These dispositions are not merely individual choices. They are shaped by the macrostructure of informality and the microstructure of local regulation. The empirical literature on autorickshaw drivers shows similar patterns of precarious incomes and long work hours, which align with the observed habitus in Ranchi (Tigari & Santhosh, 2020; Badami et al., 2016).

The Urban Transport Field in Ranchi: Rules, Agents, and Discretionary Power

The local field is multi-layered. It includes:

- **Municipal Actors**: Control permits, route approvals, and public infrastructure like stands.
- **Regional Transport Authority**: Oversees permits and vehicle fitness.
- **Police and Traffic Authorities**: Exercise enforcement discretion, often unpredictably.

- **Local Owner-Networks and Associations**: Mediate rental relations and organize collective action.
- **Commuters/Passengers**: Exert reputational pressure and economic power through their choices and complaints.
- **Digital Platforms**: Increasingly, where they operate, they introduce new rules and competition (e.g., via pricing algorithms and rating systems).

These multiple authorities create a web of often opaque rules and discretionary enforcement. Ranchi's official portals and municipal documents attest to permit categories and route systems for small vehicles, while journalistic coverage documents active enforcement drives, fines, and disputes over stands and route limits (Ranchi Municipal Corporation; Jharkhand transport portal; Times of India reporting). For instance, municipal reporting notes the existence of auto-rickshaw and e-rickshaw management systems, and local press has covered fines and stand shortages that directly affect driver strategies (The Times of India, 2024).

In such a field, drivers hold weak structural positions in terms of institutional recognition and economic capital. However, they often command strong local **social capital** among peers, using networks for tips on profitable spots and for quick mutual assistance during enforcement spikes. The uncertain and contested rules of the field strongly shape the forms of practical sense that drivers develop, encouraging a mindset of risk management and improvisation rather than long-term planning. The field is also highly gendered; from personal observation, the overwhelming majority of drivers are men. The barriers to entry for women, including physical safety concerns and social norms, mean that the field is almost exclusively a male domain, with its associated norms and hierarchies (Sudarsan & Varghese, 2021).

Capitals, Conversion Problems, and Symbolic Struggle

Applying Bourdieu, we can parse the drivers' resources and the difficulties they face converting them into more stable forms of capital.

- **Economic Capital** is often scarce and volatile. Many drivers are renters or debt-burdened, leaving limited capacity for savings or investment. A socio-economic study by Tigari and Santhosh (2020) documents the precarious economic position many drivers face, with low daily incomes barely covering expenses and family needs.
- **Cultural Capital** is heavily embodied. Drivers' route knowledge, mechanical skill, and customer management are valuable within the transport field but are rarely recognized in formal credential systems that could enable occupational mobility. This is a classic example of a "conversion problem" where practical, valuable skills have no institutional currency (Bourdieu, 1986).

- **Social Capital** is a core buffer. Peer networks provide rapid information about police checks, profitable locations, and temporary cooperative arrangements. Locally organized associations sometimes provide complaint channels for passenger grievances or attempt to engage with municipal authorities (for example, the Jharkhand Pradesh Diesel Auto Chalak Mahasang has run a WhatsApp complaint line in Ranchi; The Times of India, 2019).
- **Symbolic Capital** is contested. While wider public discourse can stigmatize drivers as overcharging or obstructive, drivers derive symbolic worth from steady provision for family and from reputations in particular neighborhoods. **Misrecognition** occurs when municipal or media framings treat driver practices as deviance rather than as strategies produced by structural constraints. This is a form of symbolic violence, where the power of the dominant group (authorities, media, middle-class commuters) delegitimates the experiences and claims of the marginalized group (drivers).

The conversion problem is central: embodied and social capital rarely convert into recognized symbolic or institutional capital that would ameliorate precarity. That structural block sustains the reproduction of marginalization even when practical competence is abundant.

Policy Terrains and Ranchi-Specific Governance Examples

Reading practice through Bourdieu points to policy levers that change the field or expand capital conversion opportunities rather than merely intensifying enforcement. Several Ranchi-specific governance items are relevant.

First, permit and route regulation matter materially. The Jharkhand state permit portal documents the categories and procedures for auto permits, which are administratively complex and can be a barrier to many drivers who lack documentation or face distance costs to complete procedures (**spermit.jharkhand.gov.in**).

Second, municipal management has targeted e-rickshaw and auto regulation through route zoning and fines. Local reporting shows that authorities have established e-rickshaw route divisions and fine schedules for violations, and that RMC has actively collected fines and attempted route control in recent years (Ranchi Municipal Corporation; The Times of India). These measures have concrete consequences for drivers who may operate with ambiguous permit statuses or who lack designated stands.

Third, drivers' collective organizations are active at the city level. At times, associations have launched complaint systems and led negotiations with authorities; such associative activity forms a crucial node of social capital that can be engaged productively by policy actors. For instance, local associations publicized a WhatsApp complaint number to manage passenger grievances and internal discipline among drivers (The Times of India, 2019).

A Bourdieusian policy approach therefore recommends reforms that change the structure of the field (e.g., transparent permit pathways, reliable stands, fair rental regulation) and that enable the conversion of embodied and social capital into recognized forms (e.g., certification of mechanical skills, facilitated access to microcredit under reasonable terms, cooperative ownership models).

Recommendations Grounded in Habitus/Field/Capital Logic

- **Permit Simplification and Outreach at Local Stands**: Reduce paperwork complexity and decentralize permit services to neighbourhood centers so drivers who work long hours can complete procedures without high opportunity costs. This addresses a field constraint that produces avoidance tactics and misrecognition.
- **Recognize Embodied Skills**: Create a short certification or recognition program for mechanical competence and safe driving that is developed with driver associations and municipal actors. Such recognition increases the convertible value of cultural capital. This moves beyond simple licensing to certify the practical knowledge that drivers already possess.
- **Support Cooperative Ownership and Fair Rental Regulation**: Encourage cooperative models and formalized rental contracts that cap daily rent. Municipalities can incentivize cooperative formation through small grants or preferential access to finance. This would help drivers build economic capital and reduce the temporal urgency of the "hustle."
- **Designate and Build Auto Stands**: Implement the plans discussed in local administrative meetings to build sufficient stands across priority chowks. The absence of official stands structurally forces drivers into risky parking strategies that invite enforcement and public complaint, a factor highlighted by local reporting on stand shortages (The Times of India, 2024).
- **Engage Driver Associations as Partners**: Build formal channels for associations to participate in complaint resolution, route planning, and enforcement design so that misrecognition is reduced and co-production of solutions is possible. Local associations in Ranchi have already experimented with complaint hotlines; municipalities can scale and legitimize such mechanisms (The Times of India, 2019). This acknowledges and empowers the drivers' social capital.

These recommendations aim to change the structure of the field and the capacity for capital conversion rather than merely penalize visible practices that arise from underlying constraints.

Conclusion

A Bourdieusian lens reframes auto-rickshaw drivers' practices as embodied responses to structural positions within a contested field. In Ranchi, the combination of macro-informality and local regulatory ambiguity produces

dispositions oriented to immediate survival, practical competence, and distrust of formal authority. These dispositions make certain tactics sensible while simultaneously constraining drivers' capacity to convert cultural and social capital into more stable forms. The analysis reveals that the drivers are not irrational actors but logical agents operating within a highly rationalized, but often unfair, system.

Policy that recognizes drivers' embodied knowledge, simplifies field rules, and supports associative social capital has the best chance of producing durable improvement in livelihoods and in urban mobility. The steering wheel is not only a mobility instrument; it is a locus of social orientation and a symbol of dignity. A relational politics of mobility acknowledges that improving drivers' conditions requires changing the field and supporting the conversion of valuable but unrecognized forms of capital. This approach moves beyond the simple binaries of formal/informal or legal/illegal and instead focuses on the structural dynamics that produce and reproduce precarity. It is a politics of recognition that seeks to legitimize the drivers' skills, networks, and claims, thereby challenging the symbolic violence that has historically marginalized them.

References

1. Badami, M. G.,Reynolds,C.C.O.,&Kandlikar, M.(2016).Auto-rickshaws in Indian cities:Public perceptions and operational realities. Transport Policy, 52, 143–152. https://doi.org/10.1016/j.tranpol.2016.03.003
2. Bourdieu, P. (1977). Outline of a Theory of Practice. Cambridge University Press.
3. Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education (pp. 241-258). Greenwood Press.
4. Bourdieu, P., & Wacquant, L. J. D. (1992). An Invitation to Reflexive Sociology. University of Chicago Press.
5. Cross, J. C., & Karides, M. (2011). Informal work: Frictions and freedom in the urban realm. Routledge.
6. International Labour Organization (ILO). (2018). Women and men in the informal economy: A statistical picture (3rd ed.). ILO.
7. Jharkhand Transport Department. (n.d.). State permit portal — Auto permit categories. Retrieved from **spermit.jharkhand.gov.in**
8. Ranchi Municipal Corporation. (n.d.). Auto-Rickshaw Management System and related documents. Retrieved from **ranchimunicipal.com**

9. Sudarsan, R., & Varghese, J. (2021). The gendered nature of work in the informal economy: A study of auto-rickshaw drivers in Chennai. Journal of Urban Management, 10(1), 22–32.
10. Tigari, H., & Santhosh, H. B. (2020). Socio-economic background of auto-rickshaw drivers. Shanlax International Journal of Management, 8(1), 48–53.
11. The Times of India. (2024, May 14). Lack of auto stands throws daily traffic out of gear in Ranchi. The Times of India.
12. WIEGO. (2020). Informal workers in India: A statistical profile (Govindan Raveendran & Joann Vanek). Women in Informal Employment: Globalizing and Organizing.

Gendered Labor and Surveillance : A Feminist Reflection on Salesgirls in Ranchi Malls

Sakshi
Research Scholar,
University Department of Sociology
Ranchi University, Ranchi

Abstract
This article explores the lives of saleswomen in Ranchi's shopping malls, arguing that their work is shaped not only by retail demands but also by ***gendered norms****,* ***capitalist structures****, and pervasive* ***surveillance****. The theoretical framework combines feminist theories of gendered labor, Arlie Russell Hochschild's concept of* ***emotional labour****, and Michel Foucault's* ***panoptic theory*** *of discipline. It also utilizes Kimberlé Crenshaw's* ***intersectionality*** *to show how class, caste, and rural-urban origins compound these women's vulnerability. Drawing on ethnographic observation, the research resists that while these jobs offer a promise of economic independence, they simultaneously enforce disciplinary norms, emotional burdens, and structural disadvantages. This analysis provides a critical, theory-based discussion of how modern retail environments function as sites of both economic opportunity and deep gendered exploitation.*

Keywords: Feminized labor; Emotional labor; Surveillance; Panopticon; Intersectionality

1. Introduction

Over the last two decades, Tier-2 Indian cities like Ranchi have seen a surge in organized retail chains and large shopping malls. This growth is often hailed as a sign of modernization and a source of new jobs, particularly for young women. These roles are frequently advertised as gateways to the formal economy, promising economic independence and social respectability. However, a critical feminist perspective reveals a deeper complexity. While these jobs provide women with an entry point into the workforce, they also steer them into highly feminized service roles. This work, which relies on qualities like care, courtesy, and responsiveness, is often perceived as "natural" for women, leading to its systematic undervaluation—a central concern for feminist critiques of gendered labor.

Building on Joan Acker's (1990) foundational theory of gendered organizations, this article examines the structural and ideological mechanisms at play. Acker argues that organizations are not gender-neutral; they are actively constructed along gender lines, with hierarchies, jobs, and even bodies assigned gendered meanings.

Through this lens, this paper addresses three key research questions:

- How do long-standing gendered expectations and norms condition the work, value, and social representation of saleswomen in the retail industry?
- How do different forms of surveillance modulate, control, and discipline their bodies and labor?
- How do intersecting dimensions of class, caste, and geographic origin deepen these dynamics, creating diverse experiences of precarity and exploitation?

This paper's core argument is that the saleswoman's labor is not a neutral or purely economic activity. It is deeply rooted in a neoliberal retail regime and a patriarchal regulation of bodies and emotions. The analysis goes beyond a simple description to provide a critical, theory-based discussion of how contemporary retail environments are arenas of both economic possibility and profound gendered exploitation.

2. Theoretical Framework

This article is grounded in a multi-layered theoretical framework designed to comprehensively analyze the experiences of female sales staff in Ranchi's malls. This approach moves beyond a single perspective to capture the complex interplay of economic exploitation, gender inequality, and social dynamics.

Feminist Theories of Gendered Labor

This study integrates feminist theories of gendered labor, drawing specifically from the work of Sylvia Walby (1990) and Nancy Fraser (2016). These perspectives help explain why women are disproportionately funnelled into service-focused, customer-facing jobs. They argue that societal expectations of care, nurturing, and compliance are not personal traits but **socially constructed gender norms** that make women's work in these areas seem "natural" and therefore less valuable. This undervaluation is a key mechanism for maintaining both gender hierarchy and the capitalist system. Walby's theory of **patriarchy** helps analyze how social conventions enable this undervaluing, positioning women in subservient roles with limited opportunities for advancement. Similarly, Fraser's work on the **contradictions of capital and care** clarifies how market demands conflict with unpaid social reproduction labor, a burden disproportionately assigned to women.

Emotional Labor: The Commodification of Self

A key analytical concept for this study is Arlie Russell Hochschild's (1983) theory of **emotional labor**. Hochschild's research on flight attendants

established that emotional performance is not incidental but a fundamental part of the job. She differentiated between **surface acting** (faking emotions) and **deep acting** (trying to genuinely feel them). Both require significant psychological effort, leading to emotional exhaustion and burnout. For saleswomen in Ranchi, this framework is invaluable for understanding the psychological toll of maintaining a constant smile and welcoming attitude, even when exhausted or harassed. Their emotions are, in essence, a part of the product they are selling—a tool to be managed and controlled for the benefit of the employer and customer.

Surveillance and Discipline: The Panoptic Gaze

Michel Foucault's (1977) theory of the **panopticon** provides an effective metaphor for how control and discipline are achieved in retail. Foucault argued that power in modern society is not wielded by brute force but by the constant possibility of being watched. In shopping malls, this principle is realized through a mix of omnipresent CCTV cameras, unpredictable manager patrols, and the constant threat of customer complaints. This ubiquitous gaze is not just meant to catch misbehaviour; it induces a state of continuous self-regulation. Aware that they could be observed at any moment, saleswomen begin to **internalize discipline**, policing their own posture, smiles, and tone of voice, even when no one is watching. They become agents of their own suppression, embodying the panoptic logic of control.

Intersectionality: Compounding Vulnerabilities

Kimberlé Crenshaw's (1989) theory of **intersectionality** is a vital part of this analysis, moving beyond a singular focus on gender to acknowledge that social identities are interlocking. For Ranchi's saleswomen, this means their experiences are shaped by the intersection of gender with **caste**, **class**, and **rural-urban origin**. A lower-caste saleswoman, for example, may carry a double burden of social and economic insecurity that a higher-caste peer might not. This increased vulnerability and lack of social capital might make her less likely to challenge exploitative practices. Similarly, a woman migrating from a rural village may lack urban social networks, making her more reliant on her job and thus more compliant. The intersectional approach shows that the experience of a saleswoman is not uniform; it is a continuum of different vulnerabilities and exploitations.

Hawthorne Experiments and Workplace Social Dynamics

To enrich the analysis of the social environment, this study also draws on the findings of the **Hawthorne experiments**. These studies revolutionized management thinking by highlighting the importance of social and psychological factors over purely physical ones. The experiments showed that group cohesion, social bonds, and relationships with superiors could affect

employee morale and productivity. For the saleswomen, this framework helps us examine the significance of their informal social bonds—the shared jokes, whispered conversations, and mutual support—as both a coping mechanism for emotional burdens and a site of **micro-resistance** against managerial control. These social dynamics serve as a crucial counterpoint to the totalizing control described by Foucault's panopticon, showing how workers find ways to assert their humanity within a highly regulated environment.

Robert K. Merton's Role Conflict Theory

Finally, Robert K. Merton's role conflict theory is used to explain the unique tensions these women face. Role conflict arises when an individual is confronted with incompatible expectations from multiple social roles. For Ranchi's saleswomen, this conflict is sharp and gendered. They must be perfect workers—courteous, committed, and emotionally available—while also fulfilling traditional expectations as daughters, sisters, or future wives. The combined pressure of demanding work, emotional labor, and familial expectations creates significant stress and limits career prospects. A feminist analysis of Merton's theory highlights how societal presumptions about women's roles exacerbate this conflict, placing a distinct and often unrecognized burden on them.

By synthesizing these complementary perspectives, this research provides a robust and multifaceted sociological examination of gendered work in Ranchi's retail sector.

3. Analysis & Discussion

This section analyzes the ethnographic observations, integrating them with the theoretical frameworks.

3.1 Emotional Labor as a Commoditized Self

The most immediate observation was the universal nature of **emotional labor**. The saleswomen adopted a performative attitude, characterized by a practiced smile and a welcoming gesture, even during long, physically tiring shifts. This was not an impromptu expression but a scripted performance, institutionalized by management through morning meetings and specific instructions. One manager, for example, was observed telling employees, "Greet every customer like they are royalty," a command that explicitly commodifies their emotions. This performance, as Hochschild would argue, is a mix of surface acting and deep acting. Both types of emotional work are a psychological burden, used to generate an extra layer of surplus value that creates a "pleasant shopping experience."

This commodification is total. The saleswoman's personality, empathy, and temperament become commercial tools. The "pleasant attitude" is as essential a part of the product as the clothes or appliances being sold. This process leads to

emotional burnout, but moments of resistance were also visible. One afternoon, a saleswoman, a young woman named Riya, stood at the cash counter, her smile bright and attentive. A customer, frustrated that a discount was unavailable, began to speak loudly and rudely. Riya maintained her cheerful facade, but the moment the customer turned away, her face dropped. She met the eyes of a coworker and, with a quick, furtive eye-roll and a communal sigh of relief, briefly reclaimed her authentic self. This small act was a crucial moment of resistance against the pressure of the **commodified self**.

3.2 The Panoptic Gaze in Retail

Foucault's concept of the **panopticon** is a powerful lens for understanding control in Ranchi's malls. The retail environment is a micro-panopticon where the constant possibility of observation is the primary mechanism of discipline. The gaze is multi-layered: the mechanical eye of the CCTV camera, the unpredictable passes of a manager, and the omnipresent threat of a customer complaint. The power of this system lies in its unpredictability. Saleswomen are aware they could be watched at any time, and this awareness, not actual observation, compels them to police themselves.

This awareness produces **internalized discipline**. As Foucault noted, the panopticon's true purpose is to "induce a state of conscious and permanent visibility that assures the automatic functioning of power." The workers, in effect, become their own guards. During a slow period, a group of saleswomen were chatting quietly. One began to slouch against a rack, but as a manager walked past a few aisles away, another saleswoman nudged her. The first immediately straightened her posture and readjusted her uniform, her smile returning. This small, unthinking correction showed how deeply the panoptic logic had been internalized, controlling their bodies even when direct surveillance was not present. The constant burden of this self-policing is immense, demanding a perpetual performance for a perceived audience.

3.3 Gender Norms and Disciplinary Femininity

The uniforms, a ubiquitous part of the retail landscape, are direct manifestations of disciplinary femininity. The uniforms were often form-fitting, coupled with requirements for specific hairstyles and a "no-frills" makeup policy. These rules, as articulated by Bartky (1990), are a form of disciplinary practice that molds women's bodies and comportment. In Ranchi's malls, this discipline dictates not only what saleswomen wear but also how they stand, sit, and move. The uniforms themselves, often restrictive, serve as a constant reminder of the body's role as a performative tool.

The pressure to conform to this ideal of "professional" femininity is immense. Observational notes recorded a manager discreetly but pointedly correcting a saleswoman's posture, reminding her to "be presentable"—a gendered

command that reinforces a patriarchal ideal of the obedient and pleasing female worker. However, small acts of resistance occurred. During a break, two saleswomen, one a young woman named Preeti, huddled in a corner. Preeti sighed, gesturing to the tight sleeves of her uniform. "It's so hot," she whispered, "but we have to look like we're not sweating." Her friend nodded, and they shared a conspiratorial giggle. These brief, collective moments of subversion were a fleeting attempt to resist the strict controls over their bodies and feelings.

3.4 Intersectionality and Compounded Vulnerabilities

Crenshaw's framework of **intersectionality** is crucial for understanding the varied vulnerabilities saleswomen face. The experience is not homogeneous; it is profoundly shaped by the intersection of gender with class, caste, and rural-urban origins. My observations revealed that lower-caste or rural-background saleswomen tended to exhibit a more visible degree of compliance and were less likely to resist customer or managerial demands. This heightened compliance is not a personal choice but a pragmatic adaptation to their **increased precarity**. They often bear greater financial and emotional responsibility, with their earnings serving as a vital lifeline for their families.

The analysis shows that these women are not only confronting the gendered dynamics of their jobs but also the compounded burden of social and economic disadvantage. A rural-origin saleswoman transplanted to Ranchi may lack the social capital and city-based networks available to her upper-class, city-bred coworkers. Without this support and with a more tenuous economic safety net, she is more vulnerable to exploitation. Her reluctance to challenge a rude customer or a bullying manager is a survival strategy—a way to protect her precarious income. This intersectional approach moves us beyond a simple understanding of gendered exploitation to show the complex ways in which multiple systems of power converge to create unique forms of vulnerability. Furthermore, this dynamic can be analyzed through Nancy Fraser's concept of contradictions of capital and care. These women are expected to provide high-quality emotional labor (capital) while simultaneously navigating their family and care responsibilities (care), a conflict intensified by their social and economic status.

Conclusion

The attraction of work in Malls with its air-conditioned spaces and promise of upward mobility is powerful and central to neoliberal ideology. For many of these women, these jobs do represent a significant improvement over traditional, more unstable forms of employment. This is where the ambivalence of their empowerment lies. The security of a steady income and a "respectable" job is a powerful incentive, yet this freedom is inextricably tied to an agreement

to be emotionally and physically controlled. Neoliberalism presents an illusion of endless choice while obscuring the structural inequalities that underpin these options. The saleswoman is told she is the architect of her own destiny, a consumer of a new lifestyle, but one premised on her consent to become an instrument of a gendered and disciplined retail order.

This relationship creates a complex blend of empowerment and exploitation. A woman who is financially independent for the first time feels a sense of pride, but that feeling is directly linked to her ability to perform the very emotional and physical labor that a feminist analysis would identify as exploitative. Her aspirations are not free-floating; they are tethered to a system that harvests surplus value from her smile and her compliance. The contemporary mall is not merely a commercial space but a site of ideological production, where the promise of individual advancement is used to obscure and legitimize systemic exploitation.

The experiences of Ranchi's saleswomen embody a profound contradiction: they are both agents of their own economic access and tools of a controlled, gendered retail order. This research has shown that their labor is more than a simple economic exchange; it is a complex social process shaped by the intersection of emotional labor, panoptic surveillance, and multiple social hierarchies. The resulting empowerment is fragile, often built on the repression of genuine feeling and the discipline of the body. To address these issues, academics must expand their ethnographic studies to Tier-2 cities to provide more place-sensitive analysis. Employers should acknowledge the emotional toll of this work and redesign jobs, pay, and training accordingly. Policymakers and unions should advocate for labor protections that are sensitive to the particular stressors of emotional labor and surveillance. Finally, consumers must recognize the "pleasant attitude" they receive as a managed performance rather than a natural service, fostering more empathetic interactions. The case of the Ranchi saleswomen is a microcosm of larger global trends, and by subjecting their experiences to critical analysis, we can better understand the intricate links between gender, capitalism, and control in the 21st-century service economy.

References

- Acker, J. (1990). Hierarchies, jobs, bodies: A theory of gendered organizations. Gender & Society, 4(2), 139–158.
- Bartky, S. L. (1990). Femininity and domination: Studies in the phenomenology of oppression. Routledge.
- Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the intersection of race and sex: A black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory

and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum, 1989(1), 139–167.

- Foucault, M. (1977). Discipline and punish: The birth of the prison. Pantheon Books.
- Fraser, N. (2016). Contradictions of capital and care. New Left Review, 100, 99–117.
- Hochschild, A. R. (1983). The managed heart: Commercialization of human feeling. University of California Press.
- Merton, R. K. (1968). Social theory and social structure. Free Press.
- Roethlisberger, F. J., & Dickson, W. J. (1939). Management and the worker. Harvard University Press.
- Walby, S. (1990). Theorizing patriarchy. Basil Blackwell.
- Howson, Alexandra (2021) Role Conflict and Role Strain
- https://www.ebsco.com/research-starters/political-science/role-conflict-and-role-strain

बैगा जनजाति की महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

राजेश प्रसाद,
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ओबरा, सोनभद्र
डॉ जय प्रकाश यादव,
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
महात्मा गाँधी कशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश

नारी प्रकृति की नैरंतर्य है एवं ईश्वर की अद्वितीय सौगात है जिसे सम्पूर्ण मानव जाति के लिए जीवनदायिनी बनाया गया है। अनुराग, त्याग, करूणा, वात्सल्य एवं कोमलता, इत्यादि गुण उसमें स्वतः विकसित हुए हैं। प्रकृति ने उसके शरीर को अधिक कोमल नहीं बनाया वरन् उसे मनुष्य की जननी का पद देकर उसके हृदय में अधिक संवेदना, आखों में अधिक शीलवान एवं स्वभाव में अधिक कोमलता भरी हुई है। नारी चाहे वह किसी भी समाज या किसी वर्ग की हो वह मानव समाज की जननी है। इनका व्यक्तित्व विराट व अनुपम है बेहतर संस्कार देकर अपने समाज के मूल्यों व विचारों को आगे बढ़ाती है। बैगा जनजाति की महिलाएं प्रकृति के अत्यन्त करीब रहती हैं तथा उनकी अपने समाज के प्रति एक विशिष्ट योगदान है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता" अर्थात –जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है।

भारत में जनजातियाँ कुल जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे भारतीय समाज के एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं जो हमारी सभ्यता की सांस्कृतिक एतिहसिक कला के साथ एकीकृत है। भारत की जनजातीय जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत है। भारत में कई जनजातियाँ हैं, जो सामाजिक–आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न भागों में फैली हुई हैं। वे हिमालय की तलहटी से लेकर लक्षद्वीप के शिखर तक और गुजरात के मैदानों से लेकर पूर्वोत्तर की पहाड़ियों तक, संपूर्ण देश में निवास करती हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार, भारत में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 52.03 मिलियन थी। जनजातीय जनसंख्या के मामले में बिहार अन्य सभी राज्यों में सबसे आगे है। इसके बाद महाराष्ट्र और उड़ीसा का स्थान आता है।

दक्षिण भारत में कुरुम्बा, इरुला, पंगा, मध्य भारत में असुर, साओरा, ओरांव, गोंड, संथाल, भील, बैगा, खरवार, पनिका, चेरो, कोल, भुईयां, परजा तथा पूर्वोत्तर भारत में बोडो, अहोम जैसी जनजातियों के नाम प्राचीन शास्त्रीय भारतीय साहित्य में मिलते हैं। 'ट्राइब' शब्द लैटिन शब्द 'ट्रिबस' से लिया गया है। प्राचीन रोमन लोग इस शब्द का प्रयोग समाज में विभाजन को दर्शाने के लिए करते थे। बाद में इसका

प्रयोग गरीब लोगों के लिए किया जाने लगा। अंग्रेजी भाषा में इसका वर्तमान प्रचलित अर्थ उपनिवेशवाद के विस्तार के दौरान, विशेष रूप से एशिया और अफ्रीका में, अपनाया गया।

भारत में 'जनजाति' का वर्तमान प्रचलित अर्थ अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल लोगों की एक श्रेणी है। विभिन्न देशों में इसके अलग–अलग अर्थ रहे हैं। किसी भी भारतीय भाषा में जनजाति शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। भारत में 'जनजाति' शब्द का अर्थ एक विस्मयकारी और मनमोहक समूह होता है। यह पूर्व–साक्षर, स्थानीयकृत सामाजिक समूह को संदर्भित करता है जिसके सदस्य एक ही बोली बोलते हैं। जनजातीय लोगों को आदिवासी, वनवासी, वन्यजाति, आदिमजाति, गिरिजन और पहाड़ी आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। घुरे ने उन्हें पिछड़े हिंदू बताया है।

भारतीय संविधान में जनजातियों के विकास और कल्याण के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। इसी उद्देश्य से जनजातियों की एक सूची बध्द गई थी। इस सूची में समय–समय पर संशोधन किए गए हैं। 1971 में इस सूची में 527 जनजातियों के नाम शामिल थे। संविधान में सूचीबद्ध और राष्ट्रपति के क्रमिक आदेशों में उल्लिखित लोगों को अनुसूचित जनजातियाँ कहा जाता है। यह जनजाति की प्रशासनिक अवधारणा है। जनजाति को विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। हालाँकि, संविधान में जनजाति की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। संविधान में जिन लोगों को सूचीबद्ध किया गया है, उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है। शिक्षाविद जनजाति को परिभाषित करने के लिए प्रयासरत रहे हैं। समाजशास्त्र शब्दकोश जनजाति को एक 'सामाजिक समूह' के रूप में परिभाषित करता है, जिसका आमतौर पर एक निश्चित क्षेत्र, बोली, सांस्कृतिक एकरूपता और एकीकृत सामाजिक संगठन होता है।

इंपीरियल गजेटियर के अनुसार,

''जनजाति एक सामान्य नाम वाले परिवारों का समूह है जो एक सामान्य बोली बोलते हैं, एक सामान्य क्षेत्र पर कब्जा करते हैं या कब्जा करने का दावा करते हैं और आमतौर पर अंतर्विवाही नहीं होते हैं, हालांकि मूल रूप से ऐसा हो सकता है।''

जनजाति की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

गिलिन और गिलिन के अनुसार,

''कोई भी पूर्व–साक्षर स्थानीय समूह जो एक सामान्य क्षेत्र पर कब्जा करता है, एक सामान्य भाषा बोलता है और एक सामान्य संस्कृति का पालन करता है, एक जनजाति है।''

जैसा कि राल्फ लिंटन कहते हैं,

''अपने सरलतम रूप में जनजाति, समूहों का एक समूह है जो एक सतत क्षेत्र पर कब्जा करता है और जिसमें संस्कृति और हितों के कुछ समुदाय में अनेक समानताओं के कारण एकता की भावना होती है।''

रिवर्स के अनुसार,

''जनजाति एक साधारण सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक ही बोली बोलते हैं और युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्य के लिए मिलकर काम करते हैं।''

डी.एन. मजूमदार के अनुसार,

''जनजाति परिवारों का एक समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक ही क्षेत्र पर निवास करते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं और विवाह, पेशे या व्यवसाय के संबंध में कुछ वर्जनाओं का पालन करते हैं तथा जिन्होंने पारस्परिकता और दायित्व की पारस्परिकता की एक सुविचारित प्रणाली विकसित की है।''

जनजाति को स्वदेशी लोगों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया गया है, जिनका नाम, भाषा और क्षेत्र समान होता है, जो मजबूत रिश्तेदारी बंधनों से बंधे होते हैं, अंतर्विवाह का पालन करते हैं, अलग–अलग

रीति–रिवाज, अनुष्ठान और विश्वास आदि रखते हैं। ऐसी परिभाषाएं बहुत उपयोगी नहीं हैं क्योंकि हम विभिन्न जनजातियों की जीवन शैली में बहुत भिन्नताएं पाते हैं।

भारत में कई जनजातियाँ हैं, जो सामाजिक–आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न भागों में फैली हुई हैं। भारत के संबंध में विरोधाभासी चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, जहाँ खस या लश जैसी जनजातियाँ आर्थिक और शैक्षिक रूप से काफी हद तक उन्नत हैं, वहीं बिहार की बिरहोर या केरल की कट्टुनायकन जैसी जनजातियाँ पिछड़ी हुई हैं और शिकार करने , मछली पकड़ने और भोजन सन्चय करके अपना जीवनयापन करते हैं।

इसके अलावा, राजस्थान के मीणाओं या पश्चिम बंगाल के भूमाज और उनके पड़ोसियों के बीच हमें शायद ही कोई अंतर नजर आता है। इसलिए, जनजातियों को सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति का एक पड़ाव माना गया है।

एस. सी. सिन्हा के लिए जनजाति को आदर्श रूप से सभ्यता के केंद्रों के सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक संचार के नेटवर्क से उसके अलगाव के संदर्भ में परिभाषित किया गया है। सिन्हा के अनुसार, ष्अपने अलगाव में, आदिवासी समाज अपेक्षाकृत आदिम निर्वाह तकनीक, जैसे 'स्थानांतरित खेती, शिकार और संग्रहण' द्वारा जीवित रहते हैं और पूरी तरह से अशिक्षित जातीय परंपरा द्वारा निर्देशित एक समतावादी खंडीय सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं।

बैगा जनजाति मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद अधिकांश भागों में पाई जाती है, बैगा समाज में महिलाओं की स्थिति एवं कार्य शैली विकसित समाज से भिन्न होती है। वे बच्चों की देखभाल करना घर को लीपने–पोतने का कार्य करती हैं। बैगा समाज में महिलाओं के लिए कोई कठोर सामाजिक बंधन नहीं है। आज के समय की बैगा महिलाएं अपने खेत खलिहान के कामों में हाथ बटाती हैं तथा वह भी पैसे के लिए छोटे–मोटे रोजगार व मजदूरी का काम करती हैं। बैगा महिलाएं घर बनाना आंगन को लीपने–पोतने का कार्य भी बड़ी प्रसन्नता से करती हैं। वर्तमान समय में बैगा महिलाएं घर के जरूरी सामान के लिए स्वयं ही बाजार जाती हैं। वे हर्बल दवाओं के अपने पारम्परिक ज्ञान के लिए जाने जाते हैं और वन आधारित आजीविका में कुशल हैं ।

सरकार द्वारा चलायी जा रही है अनेक–तरह की योजनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर वे अपना भरण पोषण कर रही हैं। बैगा जनजाति मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के सीमा जनपद सोनभद्र के चोपन विकास खण्ड में देखी जा सकती है। इस जनजाति के विकास स्तर को देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने हाशिये पर होने के चलते बैगा जनजाति को संरक्षण दिया है जिसके फलस्वरूप इस जनजाति के लिए अनेक सरकारी योजनायें चलाये जा रही हैं। बैगा एक प्राचीन जनजाति है और इनके रहन सहन के तरीके भी प्राचीन हैं।

बैगा जनजाति के लोग वृक्ष की पूजा करते हैं तथा जिरही देवी माता की पूजा करते हुए उनको कुलदेवी का स्थान दे रखा है। बैगा पुरुष मुख्य रूप से एक लंगोट तथा सिर पर वस्त्र धारण करते हैं। वहीं बैगा महिलाएं साड़ी का प्रयोग करती हैं। आज के समय में मैदानी क्षेत्रों मे रहने वाले नौजवान युवक आधुनिक वेशभूषा का प्रयोग करने लगे हैं। बैगा जनजाति की महिलाएं आभूषण को अत्यधिक पसन्द करती हैं। बैगा महिलाएं आभूषण के साथ–साथ गोदना भी गुदवाती है। इनकी संस्कृति में गोदना का अत्यधिक महत्व है। बैगा जनजाति की महिलाएं पूरे शरीर पर गोदना करवाती हैं. दरअसल इनकी मान्यता है कि गोदना मृत्यु के बाद भी शरीर के साथ जाता है और जब किसी महिला की मौत हो जाती है तो वह मृत्यु लोक में गोदना बेचकर अपना जीवन यापन करती है. इसलिए बैगा महिलाएं ज्यादा से ज्यादा गोदना करवाने के लिए इच्छुक रहती हैं. गोदना की आकृति आभूषण के रूप में होती है, इसलिए शरीर में

जहां–जहां आभूषण पहने जा सकते हैं वहां यह आकृतियां बनवा लेते हैं और यह आकृतियां आभूषणों के जैसी ही दिखती है. इसलिए इनके माथे पर कानों में हाथों में गले में पीठ पर पैर में घुटनों तक मतलब शरीर में जहां–जहां भी आभूषण पहने जाते हैं, वहां आभूषणों की आकृति गोदना के जरिए उकेरी जाती है. इसमें इन महिलाओं को असहनीय तकलीफ से गुजर ना होता है लेकिन फिर भी यह परंपरा निभाती हैं।

बैगा जनजाति का मुख्य व्यवसाय वनोपज संग्रह, पशुपालन, खेती तथा तंत्र–मंत्र का कार्य करना है। आधुनिकता के दौर में बैगा जनजाति की संस्कृति में भी आधुनिकता का समावेश हो रहा है। बैगा अब सघन वन, कंदराओं में निवास तथा शिकार को छोड़ कर मैदानी क्षेत्रों में रहना तथा कृषि कार्य करना प्रारंभ कर रहे हैं। बैगा अपने आप को जंगल मुख्य निवासी, राजा और प्रथम मानव समझते हैं, इनका मानना है कि इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा जी के द्वारा हुई है। बैगाओं के उत्पत्ति के संबंध में अनेक किवदंतियाँ भी सुनायी देती हैं, इन किवदंतियों के माध्यम से ये अपने उत्पत्ति संबंधी अवधारणाओं को सहेज कर रखे हुये हैं। बैगा अपने आप को आदि पुरुष कहते है, उनका मानना है कि वही पृथ्वी का प्रथम मानव है। बैगाओं का ही जन्म सर्वप्रथम हुआ है, वे ही पृथ्वी पर मानव जाति को लाने वाले हैं और उनका सम्बन्ध प्रथम मानव से है।बैगा जनजाति के सम्बन्ध में सर्वप्रथम 1778 ई० में ब्लूम फील्ड ने कहा है कि बैगा जनजाति बहुत प्राचीन है और जंगल काटकर बेवर खेती करते है। ये लोग बांस से चटाई और अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। साथ ही साथ जंगली जड़ी–बूटी से रोगों का उपचार करते हैं। इसी प्रकार 1867 ई० में कैप्टन थामस ने बैगा जनजाति के बारे में लिखा है कि बैगा जनजाति बहुत ही पिछड़ी अवस्था में है और सभ्य मनुष्य के संपर्क में आने से डरती है। कर्नल वार्ड की मंडला सेटलमेंट रिपोर्ट (1870 ई०) से जानकारी मिलती है कि ये जनजाति जंगली अवस्था में रहते है और अपने समूह के साथ स्वतंत्र रूप से रहना पसंद करते है।

भारतीय समाज में जनजाति से आशय वन्य जाति, आदिवासी, वनवासी, आदिमजाति, गिरिजन आदि से है। ये जनजाति ऐसे लोगों का समुदाय है जो आज भी जंगलों में निवास करते हैं। प्राकृतिक साधनों से ही अपना भोजन ग्रहण करते हैं। आधुनिक सभ्य समाज से दूर रहते हैं तथा शिक्षा, कृषि, उद्योग–धन्धे आदि से अपरिचित है। भारत की जनगणना 1991 के अनुसार – ''ये अपने सीमित साधनों से केवल जीवित रहना ही सीख सके हैं और आज भी विज्ञान की इस चकाचौंध व सभ्यता की होड़ से अपरिचित ही है। ऐसे ही अपरिचित लोगों का उल्लेख भारतीय संविधान में अनुसूचित आदिमजाति या जनजाति (ट्रायबल) के अन्तर्गत किया गया है।''भारतीय इतिहास में आदिवासी समूह का वर्णन प्राचीन समय से मिलता है। डॉ. श्रीनाथ शर्मा के जनजातीय अध्ययन के अनुसार– ''भारतीय समाज में प्रौगेहासिक काल से लेकर आज तक आदि समूहों एवं वनवासियों का उल्लेख प्राप्त होता रहा है। वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल तथा महाकाव्य काल में जनजातियों के नाम भी उल्लेखित है। जनजाति या आदिम जाति अथवा आदिवासी 'ट्राईब्स' ज्तपइमे शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है।''अंग्रेजी भाषा में ट्राइब शब्द का अर्थ कुटुम्ब है। राजनीतिशास्त्र में अविकसित समाज को ट्राइब्स कहते हैं। स्थान तथा काल के सम्बन्ध में भी ट्राइब शब्द भिन्न है जैसे, ''यूरोप में टुण्ड्रा प्रदेश के निवासी ऐस्किमों ही ट्राइब है तथा शेष दुनिया के लिये समग्र अफ्रीकी नीग्रो ही ट्राइब है। अर्थात् सिर्फ ताकतवर और विजेता ही है जो ट्राइब नहीं है।''भारतीय समाज में विभिन्न प्रजातियों का संगम हुआ है।

भारत में जनजातियाँ 'गतिशीलता और परिवर्तन' के प्रभाव में हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ जनजातियों ने स्वयं को जाति व्यवस्था की एक बड़ी इकाई में परिवर्तित कर लिया है या कुछ ईसाई या मुसलमान बन गए हैं। वे कृषक वर्ग में भी शामिल हो गए हैं और आधुनिक समय में उद्योग, बागान और

खनन क्षेत्रों में दिहाड़ी मजदूर बन गए हैं। इसलिए, जनजाति की अवधारणा में गतिशीलता और परिवर्तन के पहलुओं को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

--

सन्दर्भ सूची:

1. स्टेटिस्टीकल प्रोफाइल ऑफ शेड्यूल्ड ट्राइब्स, जनजातीय मंत्रालय का सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार, 2013, पृ० 143
2. जैन, कल्पना, बैगा जनजाति द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले उपकरण, आदिम जाति अनुसन्धान एवं विकास संस्थान, भोपाल, 2007, पृ० 9
3. एल्विन, वैरियर, द बैगा, जॉन मुर्रय अलबेमार्ले स्ट्रीट, डब्लू लंदन, 1939, पृ०1
4. फोरस्मिथ, कैप्टन जे०, द हाइलैंड ऑफ सेंट्रल इंडिया, चौपमैन एंड हॉल, 193, लंदन, 1872, पृ० 23
5. रसेल, आर० वी०, हीरालाल, द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ सेन्ट्रल प्रोविसन ऑफ इंडिया, वाल्युम दो, लन्दन,1916, पृ०77
6. शूबर्ट, डब्लू०एच०, सुपरीटेंडेंट ऑफ सेंसेस ऑपरेशान सेन्ट्रल प्रोविसन एंड बरार, नागपुर, 1931, पृ० 404
7. एल्विन, वैरियर, द बैगा, जॉन मुर्रय अलबेमार्ले स्ट्रीट, डब्लू लंदन, 1939, पृ० 1
8. रसेल, आर०वी०, हीरालाल, द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ सेन्ट्रल प्रोविसन ऑफ इंडिया, वाल्युम दो, लन्दन,1916, पृ०
9. शर्मा, टी० डी०, "बैगा", छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2012, पृ० 22, 23
10. रसेल, आर०वी०, हीरालाल, द ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ सेन्ट्रल प्रोविसन ऑफ इंडिया, वाल्युम दो, लन्दन,1916, पृ० 78,79

11.डॉ. चौरसिया विजय 2004, प्रकृति पुत्र बैगा, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या18,19,28
12.श्रीमती शुक्ला मनीषा 2005, 'बैगा महिलाओं की स्थिति –एक अध्ययन' बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल पृष्ठ संख्या 250–254
13. मनुस्मृति : अध्याय तृतीय

कोविड–19 के दौरान प्रवासी श्रमिकों के मूल परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययनः प्रतापगढ़ जनपद के मंगरौरा विकासखण्ड, ग्राम पंचायत नरहरपुर के विशेष संदर्भ में

पूजा सिंह
शोध छात्रा समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी उत्तर ,प्रदेश

शोध सारांश–

भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है, चाहे वह कृषि श्रमिक हो या फिर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत प्रवासी श्रमिक हो। यदि बात श्रमिकों की हो तो यह आज से नही बल्कि संविधान लागू होने के पश्चात् श्रमिकों के लिए भी कुछ प्रावधान किये गये। संविधान में इस तरह की बातों का भी उल्लेख किया गया है कि कार्यरत श्रमिकों के कार्यस्थल की परिस्थितियाँ उनके अनुकूल होनी चाहिए अर्थात् श्रमिक जिस स्थान पर कार्य कर रहे होते है वहाँ का वातावरण सुलभ एवं अनुकूलित होना चाहिए।

संविधान में कामगारों के लिए प्रावधान अत्यन्त लाभकारी उद्देश्य से किया गया है अनु0 43– कर्मकारों के लिए निर्वाह एवं मजदूरी तथा अनु0 43(a)– उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना।

इतने प्रावधानों के बावजूद श्रमिकों के जीवनमार्ग में उतनी खुशहाली की छाया नजर नही आती है जितनी की वे अपेक्षा रखते है। इसका सबसे बड़ा कारण यह निकल कर आता है कि उनके रोजगार अस्थायी प्रकार के होते है। अस्थायी रोजगार के चलते उनके जीवन की गतिविधियाँ भी अस्त–व्यस्त रहती है।

बीज शब्द– कोविड–19 महामारी, प्रवासी श्रमिक, सामाजिक, आर्थिक

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य–

कोविड के दौरान प्रवासी श्रमिकों के मूल परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतो पर आधारित है।

प्रस्तावना–

इक्कीसवीं सदी में महामारी के उपरांत जिस तरह का परिवर्तन देखने को मिला उससे तत्कालीन मानवीय जीवन का आकार ही परिवर्तित हो गया और आर्थिक संरचना भी बदल सी गयी क्योंकि उनके रोजगार छिन गये। रोजगार न होने की दशा में आय के स्रोत बन्द हो गये। अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहले से की गयी जमा पूँजी में से खर्च किया जाने लगा अंततः एक समय ऐसा भी आया कि पहले की जमापूँजी भी धीरे–धीरे समाप्त होने लगी। सबसे बड़ी समस्या तब खड़ी हुई जब जमा पूँजी भी नही रही। ऐसी दशा में प्रवासी श्रमिकों का अपने परिवार के प्रति जुड़े उत्तरदायित्व का निवर्हन कर पाना कठिन सा प्रतीत होने लगा।

इसी दौरान इतनी बड़ी महामारी को नजरअंदाज करते हुए छोटे–छोटे स्वरोजगार को प्रवासी श्रमिक अपनाने के लिए बाध्य हो गये। इसी समाज में कुछ ऐसे भी परिवार देखने को मिले जो उच्च वर्ग

या कह ले प्रतिष्ठित/सम्मानित परिवार के लोग भी असंगठित क्षेत्र में कार्य कर रहे प्रवासी श्रमिक के रूप में सम्मिलित है।

ऐसे में परिवार के मुखिया का कहना है कि रोजगार इस प्रकार का हो जिससे समाज में हमारे परिवार का मान–सम्मान खण्डित न हो और जीविकोपर्जान का स्रोत बना रहे। इस दरमियान इन दोनो तथ्यों (मान–सम्मान एवं जीविकोपार्जन के स्रोत) के साथ संतुलन बना पाना कठिन हो गया। दूसरी तरफ पारिवारिक दिनचर्या को सुगम बनाना भी बेहद जरूरी था जिसके परिणामस्वरूप कुछ प्रतिष्ठित परिवारों के प्रवासी श्रमिकों ने अपने मान–सम्मान को दरकिनार करते हुए जीविकोपार्जन हेतु छोटे–छोटे स्वरोजगारों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया।

इसी सदी के दूसरे दशक के अन्त में तथा तीसरे दशक के प्रारम्भ में समस्त संसार में कोरोना महामारी का प्रवेश हुआ। जिससे सम्पूर्ण विश्व प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से दुष्प्रभावित हुआ। सम्पूर्ण विश्व में भारत भी बच नही पाया। क्योंकि आज के परिदृश्य में सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक गाँव में बदल गया है जिसकी वजह से एक देश, राज्य या गाँव की समस्या समूचें विश्व की समस्या बन जाती है। इसी तरह जब Nov, 2019 में चीन के बुहान शहर के Biological Laboratory से कोरोना वायरस का उद्‌भव हुआ। इसके उद्‌भव के पीछे का रहस्य भी काफी संशयमय है जहाँ एक ओर किसी विशेषज्ञ का कहना है कि यह कोरोना वायरस एक प्राकृतिक वायरस है वहीं दूसरी ओर कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यह कृत्रिम अर्थात् मानव निर्मित है। यह भी एक विवादास्पद तथ्य रहा है। कोरोना वायरस को 30 जनवरी 2020 तक अर्न्राष्ट्रीय स्तर पर काफी चिंतनीय जनस्वास्थ्य आपातकालीन स्थिति के रूप में देखा जाने लगा तथा 11 मार्च 2020 को वायरस, महामारी के रूप में फैलने के कारण WHO द्वारा **पैनडेमिक या कोरोना** महामारी का नाम दे दिया गया। इसीलिए WHO द्वारा नवीन कोराना वायरस से उत्पन्न बीमारी का नामकरण Corona Virus Disease-2019 किया गया। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा NCOV-2019 अर्थात नया कोरोना वायरस–2019 जिसे संक्षिप्त रूप में Covid-19 के रूप में जाना गया, नाम दिया गया। वायरसों का महापरिवार के रूप में देखा जाने लगा इसी वायरस रूपी परिवार में सर्दी, जुकाम, खॉसी, बुखार, सॉस लेने में परेशानियों के साथ–साथ अत्यन्त जानलेवा जैसी गंभीर बीमारियों का जन्म हुआ। इन्ही बीमारियों के चलते मध्यपूर्वश्वसन सिंड्रोम (MERS) और गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम (SARS) बीमारी भी बढ़ती गयी तथा नवीन कोरोना वायरस (NCOV-19) को ही SARS-COV-2 नाम से भी जाना जाने लगा।

भारत में Covid-19 का प्रवेश जनवरी एवं फरवरी 2020 में हुआ लेकिन इसका प्रसार धीरे–धीरे से तीव्र गति में मार्च माह 2020 में परिवर्तित होने लगा। कोविड से जुड़ा भारत का पहला मामला दक्षिणी भारत के केरल राज्य के त्रिशुर जिले में 'राफिया' नामक लड़की में पाया गया। जाँच के उपरांत यह मामला पॉजिटिव रहा। इस वायरस ने न तो लिंग भेद किया, न जाति भेद, न आयु भेद यहाँ तक कि स्थानों का भी भेद नही किया। कहने का तात्पर्य, क्या स्त्री और क्या पुरूष, उच्च जाति एवं निम्न जाति का कोई अंतर नही, न बच्चो पर तरश दिखाया और न बुजुर्गो को बख्शा यहाँ तक कि नगर और गाँवों में भी फर्क नही किया। Covid-19 का प्रभाव नगरों में सबसे पहले देखने को मिला तत्पश्चात धीरे–धीरे नगर से गाँवों में प्रसार होना प्रारम्भ हो गया। इसकी मुख्य वजह गाँवों की आधे से अधिक जनसंख्या शहरों में पलायन करने से नगरीय प्रवासी का गाँवों में पुनः आगमन से कोरोना का भी आगमन हो गया।

नेशनल कमीशन ऑफ पॉपुलेशन(NCP) के आँकड़ों के अनुसार 2021–2036 अर्थात् लगभग 15 वर्षो में 60 करोड़ लोग शहरो में निवास करने लगेंगे, कहने का तात्पर्य लगभग 38.6 फीसदी भारतीय शहरी क्षेत्रों में पलायन करेंगे।

भारत की लगभग 45 करोड़ जनसंख्या कार्यशील वर्ग में सम्मिलित है जिसमें से लगभग 42 करोड़ अर्थात 95.02% जनसंख्या असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगो की संख्या में प्रवासी श्रमिकों की संख्या सर्वोपरि है।

विश्व की कुल जनसंख्या में भारत, चीन, अमेरिका, इण्डोनेशिया के बाद 5वे स्थान पर उत्तर प्रदेश का स्थान है। भारत की कुल आबादी का 16.51% अर्थात् 19.98 करोड़ जनसंख्या उत्तर प्रदेश में निवास करती है।

उत्तर प्रदेश की ग्रामीण जनसंख्या 15,53,17,278(77.73%) एवं नगरीय जनसंख्या 4,44,95,063(22.27%) है। भारत की कुल शहरी जनसंख्या में महाराष्ट्र की प्रतिशतता प्रथम एवं द्वितीय स्थान पर उत्तर प्रदेश (11.79%) है।

अब बात आती है उत्तर प्रदेश की कार्यशील जनसंख्या की तो उत्तर प्रदेश की कुल आबादी का लगभग 32.9% कार्यशील जनसंख्या का है। इन कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग प्रवासी के रूप में अन्य शहरों में कार्यरत है। उत्तर प्रदेश के प्रवासी श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक महाराष्ट्र एवं राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में पायी जाती है अर्थात उत्तर प्रदेश एवं बिहार ऐसे दो अन्तर्राज्यीय प्रवासी क्षेत्र है जहाँ की कार्यशील जनसंख्या ज्यादातर महानगरों में पलायन करती है। कोविड के दौरान सर्वाधिक प्रवासी उत्तर प्रदेश में ही वापस लौटकर आये है।

कोविड के दौरान लॉकडाउन लगने के पश्चात् काम–धंधे बन्द हो गये। सारी गतिविधियाँ जहाँ के तहाँ घिर गयी। नगरों में पैसे कमाने की लालच में रह रहे प्रवासी श्रमिको को अपने गाँव वापस आना पड़ा। गाँव आने के पश्चात आमदनी के स्रोत का कोई रास्ता भी नही दिख रहा था। इस दरमियान प्रवासी श्रमिकों की आर्थिक स्थिति डगमगा सी गयी। आर्थिक स्थिति का दुष्प्रभाव धीरे–धीरे सामाजिक स्थिति की तरफ भी बढ़ने लगा। आय का स्रोत बदल जाने से प्रवासी श्रमिकों के परिवारों के प्रति समाज के लोगों के नजरिये में बदलाव देखने को मिलने लगा। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान कार्ल मार्क्स का वाक्यांश काफी सटीक लगने लगा कि आर्थिक संरचना ही सभी संरचनाओं को निर्धारित करता है।

साहित्य पुनरावलोकन–

वर्तमान ग्रामीण भारतीय समाज में जो भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है इसके पीछे प्रवास जैसी प्रक्रिया उत्तरदायी है। प्रवास की प्रक्रिया परिस्थितियों को इंगित करती हैं। कहने का तात्पर्य किसी भी समाज की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं परिस्थितिगत कारक व्यक्ति को देशांतरण करने के लिए प्रेरित करता है। अप्रवास का तात्पर्य बाहर का व्यक्ति हमारे यहाँ आकर रहना प्रारम्भ कर देता है जबकि उत्प्रवास का तात्पर्य हमारे यहाँ का व्यक्ति दूसरे नगर में जाकर बस जाता है। डॉ श्यामचरण दूबे के शब्दों में "प्रव्रजन सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समुदाय में जनसंख्या का आप्रवास अथवा उत्प्रवास होता है।" गाँव का व्यक्ति नगरों में जाता है तो ऐसा जरूरी नही कि कई वर्षो तक वह वहीं रहता हो, बीच–बीच में वह अपने मूल स्थान को वापस भी आता रहता है। इसीलिए इस प्रकार के प्रवास को अर्द्धस्थायी प्रकार की श्रेणी में रखा जाता है। एवरेस्ट ली ने प्रवास को परिभाषित करते हुए लिखा है, "प्रव्रजन स्थायी या अर्द्ध–स्थायी आवास परिवर्तन है जो ऐच्छिक या दबावमूलक दोनो प्रकार का हो सकता है।"

माइकल लिप्टन एवं **ए.एस. ओबेराय** जैसे प्रमुख विद्वानों का मानना है कि ग्रामीण निर्धनता कुछ व्यक्तियों को नगरों की ओर विकर्षित करती है। कुल मिलाकर देखा जाय तो निर्धनता को मजबूती आर्थिक सुदृढ़ता के आधार पर प्रदान की जा सकती है। **ऊर्सला शर्मा** ने हिमालय के तराई क्षेत्र के एक गाँव के अध्ययनोपरांत यह देखा कि प्रवास करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में ग्रामीण गरीबी या आर्थिक मजबूरी सम्मिलित है लेकिन ऐसा नही है कि यही एक मात्र कारक है। इन बातों को स्पष्ट करते हुए **ऊर्सला शर्मा** ने लिखा है कि, "आर्थिक मजबूरी भले ही कुछ लोगो को गाँव से शहर की ओर आने के लिए मजबूर करें, पर ऐसा नही है कि गाँव से शहर आने वाले आर्थिक रूप से सबसे मजबूर व्यक्ति है।"

प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इस शोध पत्र में आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए प्रतापगढ़ जनपद के मंगरौरा विकासखण्ड के नरहरपुर ग्राम पंचायत के 20 परिवारों का चयन इस शोध पत्र के उद्देश्य के अनुरूप किया गया है। ये 20 परिवार ऐसे परिवार है जिनमें प्रवासी श्रमिकों की उपलब्धता रही है। कोविड के पश्चात् इन प्रवासी श्रमिक परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का पता लगाना मुख्य उद्देश्य रहा है। इन्ही उद्देश्यों को दृष्टिगत करते हुए शोध पत्र की रचना की गयी है।

ऑकड़ो को प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची में शामिल प्रश्नों को सारणीबद्ध करके अधोलिखित ऑकड़े प्राप्त होते है।

सारणी संख्या : 1

परिवार में प्रवासी श्रमिकों की संख्या से सम्बन्धित विवरण

परिवारों की संख्या	प्रवासी श्रमिकों की संख्या	कुल प्रवासी श्रमिकों की संख्या
9	1	9
7	2	14
4	4	16
20	7	39

सारणी संख्या : 1 में परिवार में प्रवासी श्रमिकों की संख्या से सम्बन्धित जानकारी हेतु कुल 20 परिवारों का चयन किया गया है जिसमें 9 परिवार ऐसे है जिनमें प्रवासी श्रमिको की संख्या एक है और 7 परिवार ऐसे है जिनमें प्रवासी श्रमिको की संख्या 2–2 है तथा 4 ऐसे परिवार है जिनमे प्रवासी श्रमिकों की संख्या 4–4 है अतः 20 परिवारों में कुल प्रवासी श्रमिको की संख्या 39 है। जबकि सर्वाधिक प्रवासी श्रमिकों की संख्या की दृष्टि से 4 परिवार के 4–4 सदस्य अर्थात् 16 सदस्य प्रवासी श्रमिक के रूप में पाये गये।

सारणी संख्या : 2

कोविड–19 के दौरान गाँव वापस आने वाले प्रवासी श्रमिको की संख्या से सम्बन्धित विवरण

परिवारों की संख्या	प्रवासी श्रमिकों की संख्या	कुल प्रवासी श्रमिकों की संख्या
9	1	9
7	2	14
4	4	16
20	7	39

सारणी संख्या : 2 में क्षेत्र अध्ययन के पश्चात् यह पता चला कि 20 परिवारो के कुल 39 प्रवासी श्रमिकों की वापसी हो गयी थी कोविड–19 के दौरान। अर्थात् शत–प्रतिशत प्रवासी श्रमिक अपने मूल निवास वापस आ गये थे।

सारणी संख्या : 3

कोविड के पश्चात् प्रवासी श्रमिकों का शहरों में पुनः वापसी से सम्बन्धित विवरण

परिवारों की संख्या	प्रवासी श्रमिकों की संख्या	कुल प्रवासी श्रमिकों की संख्या
14	1	14
4	2	8
2	0	0
20	3	22

सारणी संख्या : 3 में अध्ययन हेतु 20 परिवारों का चयन किया गया जिनमें सर्वाधिक 14 परिवार ऐसे है जिनके 1–1 सदस्य(अर्थात् 14 सदस्य) प्रवासी श्रमिक के रूप में पुनः अन्य शहरो में रोजगार में संलग्न हुए और 4 परिवार ऐसे है जिनके 2–2 सदस्य(अर्थात् 8 सदस्य) प्रवासी श्रमिकों के रूप में अन्य शहर में वापस

गये जबकि 2 परिवार ऐसे भी मिले जिनका कोई भी सदस्य रोजगार की तलाश में अन्य शहरों को वापस नही गये।

अर्थात् 20 परिवारो के कुल 39 प्रवासी श्रमिको में से केवल 22 सदस्य ही प्रवासी श्रमिक के रूप में पुनः अन्य शहर में रोजगार में संलग्न हुए।

कोविड–19 महामारी के दौरान लॉकडाउन जैसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रवासी श्रमिकों के परिवारों की आर्थिक स्थिति का पता लगाने पर कुछ आँकड़ो की प्राप्ति हुई।

सारणी संख्या : 4

प्रवासी श्रमिकों के परिवारों में आर्थिक उपार्जन के बदलाव सम्बन्धित

आर्थिक उपार्जन में बदलाव	प्रवासी श्रमिकों का परिवार
हाँ	16
न्ही	04
कुल योग	20

सारणी संख्या : 4 के आँकड़ों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि सर्वाधिक 16 परिवारो के आर्थिक उपार्जन के स्रोत बदल गये थे जबकि 4 परिवारों के आर्थिक उपार्जन के स्रोत यथावत रहे।

सारणी संख्या : 5

लॉकडाउन के पश्चात् अपनाये गये रोजगार के स्वरूप से सम्बन्धित विवरण

रोजगार के स्वरूप	प्रवासी श्रमिकों का परिवार
दिहाड़ी मजदूरी	1
कृषि कार्य	2
स्वरोजगार	8
अन्य प्रकार	5
कुल योग	16

सारणी संख्या : 5 से यह आँकड़ा प्राप्त होता है कि लॉकडाउन के परिणामस्वरूप प्रवासी श्रमिकों का रोजगार छिन जाने के पश्चात् सर्वाधिक 8 प्रवासी श्रमिक ऐसे थे जिन्होंने स्वरोजगार को अपनाया।

समाज में व्यक्ति की आर्थिक स्थिति से सामाजिक स्थिति भी प्रभावित होती है। इन्ही प्रभावो का अध्ययन करने के उद्देश्य से प्रवासी श्रमिक परिवारों की सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित कुछ आंकड़े प्राप्त हुए है–

सारणी संख्या : 6

रोजगार छूट जाने के पश्चात् सामाजिक स्थिति के प्रभाव सम्बन्धित विवरण

सामाजिक स्थिति का प्रभाव	प्रवासी श्रमिकों का परिवार
हाँ	18
नही	02
कुल योग	20

सारणी संख्या : 6 से यह पता चला है कि सर्वाधिक 18 परिवारों की सामाजिक स्थिति प्रभावित हुई है।

सारणी संख्या : 7

प्रवासी श्रमिकों के परिवारों की प्रभावित हुई सामाजिक स्थिति सम्बन्धित विवरण

प्रभावित सामाजिक स्थिति का स्वरूप	प्रवासी श्रमिकों का परिवार
मान–सम्मान में कमीं	18

पूर्ववत बनी रही	00
कोई प्रभाव नही	02
कुछ कह नही सकते	00
कुल योग	20

सारणी संख्या : 7 से यह आंकड़ा प्राप्त हुआ है कि रोजगार छूट जाने के पश्चात् प्रवासी श्रमिक परिवारों की सामाजिक स्थिति प्रभावित हुई है जिसमें सर्वाधिक 18 परिवारों के मान–सम्मान में कमी पायी गयी है जबकि 2 परिवार ऐसे है जिन पर कोई प्रभाव नही पड़ा।

अध्ययन के दौरान यह भी जानने का प्रयास किया गया कि लॉकडाउन लगने के पूर्व प्रवासी श्रमिको के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति किस तरह थी। इससे सम्बन्धित कुछ आँकड़े इस तरह है–

सारणी संख्या : 8

लॉकडाउन के पूर्व प्रवासी श्रमिकों के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सम्बन्धित विवरण

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति	प्रवासी परिवारों की संख्या
बहुत अच्छी	02
अच्छी	07
सामान्य	11
कुछ कह नही सकते	00
कुल योग	20

सारणी संख्या : 8 से प्राप्त आँकड़ो से पता चलता है कि लॉकडाउन लगने तक सर्वाधिक 11 प्रवासी श्रमिको के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सामान्य थी और 7 परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अच्छी थी जबकि 2 ऐसे परिवार थे जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी।

कोविड–19 के दौरान लॉकडाउन लगने के पश्चात् प्रवासी श्रमिको के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति किस तरह प्रभावित हुई। इस बात की जानकारी कुछ आँकड़ों के माध्यम से प्राप्त हुई है ।

सारणी संख्या : 9

लॉकडाउन के पश्चात् प्रवासी श्रमिक परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सम्बन्धित विवरण

स्थिति के स्वरूप	प्रवासी परिवारों की संख्या
बहुत बुरा	15
यथावत सामान्य	03
काई प्रभाव नही पड़ा	02
कुछ कह नही सकते	00
कुल योग	20

सारणी संख्या : 9 से प्राप्त आँकड़ो के माध्यम से पता चलता है कि लॉकडाउन के पश्चात प्रवासी श्रमिको के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई है जिनमें सर्वाधिक 15 परिवार ऐसे थे जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति बहुत बुरा था तथा 3 परिवार ऐसे थे जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति यथावत सामान्य थी जबकि 2 ऐसे परिवार थे जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ा।

निष्कर्ष–

कोविड–19 महामारी के दौरान लगने वाले लॉकडाउन के पश्चात् प्रवासी श्रमिकों के रोजगार छिन जाने पर उनके आय के स्रोत बन्द हो गये। प्रवासी श्रमिकों के आय के स्रोत बन्द होने के उपरांत उसका प्रभाव उनके परिवारों पर पड़ने लगा। इन प्रभावों के स्वरूपों का पता लगाने हेतु क्षेत्रीय अध्ययन का सहारा

लिया गया। अध्ययन के उपरांत कुछ तथ्य सामने आये है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रवासी श्रमिको के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अध्ययन के लिए कुल 20 परिवारों का चयन किया गया और इन 20 परिवारों के कुल 39 सदस्य प्रवासी श्रमिक के रूप में अन्य शहरों में प्रवास किए हुए थे। लॉकडाउन लगने के पश्चात् कुल 39 प्रवासी श्रमिक अपने–अपने मूल निवास स्थान लौट आये। अध्ययन के उपरांत आंकड़ो से पता चला कि कोविड–19 के पश्चात पुनः शहरों की ओर जाने वाले प्रवासी श्रमिकों की संख्या केवल 22 रही।

लॉकडाउन लगने और रोजगार छूटने के पश्चात प्रवासी श्रमिकों के आर्थिक उपार्जन के स्रोत बदल जाने की जानकारी के लिए आँकड़ो को एकत्रित किया गया जिससे यह पता चला कि सर्वाधिक उत्तरदाता के रूप में 16 प्रवासी श्रमिक परिवार ऐसे है जिनके आर्थिक उपार्जन या कह ले कमाने का तरीका बदल गया। कमाने के तरीके में हुए बदलाव को जानने का प्रयास किया गया। लॉकडाउन के पश्चात् अपनाये गये रोजगार सम्बन्धी आँकड़ो से पता चला है कि सर्वाधिक 8 उत्तरदाताओं ने स्वरोजगार को अपनाया और 5 परिवार अन्य प्रकार के रोजगार में संलग्न हो गये एवं 2 परिवार ऐसे थे जिन्होंने कृषि कार्य को करना प्रारम्भ कर दिया जबकि 1 परिवार दिहाड़ी मजदूरी करने को मजबूर हो गया।

समाज की मानसिकता ही ऐसी बन गयी है जिसको बदल पाना अत्यन्त कठिन है। समाज में जिस व्यक्ति या परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते है और उसी के आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति प्रभावित होती है।

अध्ययन के दौरान यह भी जानने का प्रयास किया गया कि रोजगार छूट जाने के पश्चात क्या सामाजिक स्थिति प्रभावित हुई है? इस प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 18 परिवारों का कहना है कि रोजगार न होने पर उनकी सामाजिक स्थिति प्रभावित हुई और इन्ही 18 परिवारों का कहना है कि ऐसी दशा में हमारे मान–सम्मान मे कमी आयी है।

लॉकडाउन के पूर्व एवं पश्चात् प्रवासी श्रमिकों के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के विषय में कुछ आँकड़े प्राप्त किये गये जिसके आधार पर यह बताया जा सकता है कि सर्वाधिक 11 परिवारों का कहना है कि लॉकडाउन के पूर्व उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सामान्य थी।

जबकि सर्वाधिक 15 परिवारों का मानना है कि लॉकडाउन के पश्चात् उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कोविड–19 के कारण प्रवासी श्रमिकों के परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ तथा इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल जी. के., (2013–14), ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या– 173–193
- विज्ञान–प्रगति पत्रिका, Sep, 2021
- B.B.C News, 25 march, 2022, सौतिक विस्वास
- www.mygov.in.com
- सिंह, जे.पी., समाजशास्त्र (2017), अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या– 601–643 ISBN: 978-81-203-4860-8
- tv 9 hindi.com. 17 Dec.2021, ई–श्रम पोर्टल

दोहरे उत्पीड़न का दस्तावेजः शिकंजे का दर्द

डॉ0 प्रसेनजीत सागर
एसो0 प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग
डॉ0 राजेश्वर सेवाश्रम महाविद्यालय
ढिंढुई, प्रतापगढ़
मो0–9450021157

शोध सारांश

दलित विमर्श की सर्वाधिक सशक्त प्रस्तुति आत्मकथा विधा में हुई है। मराठी की दलित आत्मकथाएं ज्यादा चर्चित हैं। हिन्दी में भी दलित आत्मकथाएं प्रतिष्ठित हुई हैं। साहित्य जगत में दलित आत्मकथाओं ने अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करायी हैं। दलित स्त्रियों ने आत्मकथा लिखकर हाशिये में भी हाशिये की आवाज उठायी है। वस्तुतः दलित स्त्री दोहरे–तिहरे शोषण की शिकार होती रही है–स्त्री, दलित और निर्धन होने की यातना, प्रताड़ना से जूझना पड़ता है। वर्चस्वशाली पक्ष ने सदियों से दलित और स्त्री के साथ असमानता, भेदभाव, अपमान, शोषण करता आ रहा है। 'शिकंजे का दर्द' में सुशीला टाकभौंरे ने पितृसत्ता और जातिव्यवस्था दोनों का खुलकर सामना किया है और उसको तल्ख और मुखर स्वर दिया है। उन्होंने जातिवादी, सवर्ण मानसिकता की अपमानजन्य और असहनीय व्यवहारों पर घोर आपत्ति दर्ज की है। अपने जीवन के अनुभवों पर बेबाक टिप्पड़ी की है। वे विषमतावादी समाज को नकार कर समतामूलक समाज की आकांक्षा की है। यही आत्मकथा की मूल चेतना है। सदियों से तिरस्कृत अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर किये गये दलित जीवन की व्यथा–कथा का दर्द ''शिकंजे का दर्द'' में समाहित है। लेखिका के लिखने का उद्देश्य शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।

मूल शब्द–दलित, पितृसत्ता, जाति व्यवस्था, शोषण, उत्पीड़न, हाशिये, यातना, अस्मिता, दस्तावेज आदि।

हिन्दी साहित्य में दलित और स्त्री विमर्श सबसे अधिक चर्चित हुआ है। भारत में दलित और स्त्री उत्पीड़न दीर्घकाल से चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली विषय है। जिसमें महिलाओं के अनुभवों उनकी स्थिति हक और अधिकारों पर चर्चा की जाती है। यह विमर्श न केवल महिलाओं के जीवन को उजागर करता है बल्कि समाज में उनकी भूमिका और उनके योगदान पर भी प्रकाश डालता है। स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि में भारतीय समाज में महिलाओं को समाज में एक विशिष्ट भूमिका सौंपी गई जो मुख्य रूप से घरेलू और पारिवारिक जीवन तक सीमित रही। भारतीय सामाजिक संरचना में दलित और स्त्री की दशा प्रारम्भ से ही दयनीय रही है। दरिद्रता, अज्ञानता, जातिगत उत्पीड़न, अपमान, शोषण इनके जीवन का अटूट हिस्सा रहा है। दलित महिला न केवल जाति आधारित भेदभाव का सामना करती है। बल्कि लिंग आधारित भेदभाव का भी सामना करती है। पितृसत्तात्मक समाज के शोषण, धर्म–संस्कृति के नाम पर अनेक प्रचलित मान्यताओं, प्रथाओं, परम्पराओं और भूमिका को जबरन ढोना,

लाचारी और दीनता से उनका जीवन भरा रहता है। दलित स्त्रियों की रचनाएं दलित जीवन के साथ–साथ स्त्री जीवन की सदियों की यन्त्रणा को उजागर करती है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियों के प्रति दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है। पुरूष की अपेक्षा नारी अपने जीवन में अधिक समस्याओं का सामना करती है, नारी किसी भी जाति, धर्म की हो, वह कष्टों से घिरी रहती है। स्त्री होना हो जैसे व्यथा की बात है। जिस देश में वर्णभेद, जाति भेद, लिंग भेद की कलुषित परम्परांए हो वहाँ दलित स्त्री की पीड़ा और गहरी हो जाती है। इस दर्द को सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में व्यक्त किया है– ''दलित होने के साथ स्त्री होने की पीड़ा भी मैंने भोगी है। एक स्त्री की आत्मकथा मनुवाद द्वारा निर्मित पुरूषसत्ता प्रधान समाज में स्त्री शोषण को उजागर करती है। जैसे स्त्री धरती है, वह सहन करती है फिर भी धीरज रखती है और अपनी धुरी पर घूमती रहती है। लेकिन कब तक? आदर्शों के नाम पर स्त्री शोषण किया जाता है। अपने घर परिवार के शोषण अत्याचार की बात बताने वाली स्त्री को समाज अच्छा नहीं कहता। अपने अधिकारों की बात करने वाली स्त्रियों को भी समाज अच्छा नहीं मानता। समाज की यह मान्यता रही है– 'स्त्री देवी है या कुलच्छनी' उसे जीवित इन्सान कभी माना ही नहीं गया। जैसे वह हाड़–मांस की मानव नहीं, आदर्शो की पुतली है जो आदर्शो के लिए जीती और आदर्शों के लिए मर जाती है। वह समाज से अपने सुख–दुख का हिसाब कैसे मांगेगी भला?'' 1

21वीं सदी में आज भी दलित और सवर्ण का भेदभाव विद्यमान है। संविधान में भले ही समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व का अधिकार दे दिया गया है। आज भी आये दिन दलितों पर अत्याचार हो रहा है। वर्ण व्यवस्था ने दलितों में अमानवीयता और हीनभावना को पुख्ता किया। धर्म और संस्कृति की आड़ में भेदभाव की नींव और सुदृढ़ हुई है। डॉ0 अम्बेडकर ने माना है कि भारतीय गाँव हिन्दू व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद की साक्षात् अवस्थाएं देखी जा सकती है। उसमें स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है। जातिवाद और ऊँच–नीच के व्यवहार तथा दलितों को दयनीय स्थिति को सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार व्यक्त किया है– ''हिन्दू धर्म में नदी, पहाड़, पेड़, पौधे, गाय, साँप, सभी को महत्व और सम्मान दिया जाता लेकिन अछूत मनुष्यों को कोई स्थान नहीं, कोई सम्मान नहीं। उनके लिए कोई दया–संवेदना नहीं? हिन्दू धर्म के आडम्बर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा जाता है मगर इन्सानों को इन्सान नहीं मानते, यह हिन्दू धर्म की बिडम्वना है, हिन्दू संस्कृति का कलंक है लोग इसे ही धर्म कहते हैं।''2

दलितों ने हजारों वर्षों की सामाजिक यातना को भोगा है जो इनके अनुभव हैं उन्हें और दलित नहीं जान सकता है। अनुभव और अनुभूति में फर्क है। हिन्दी साहित्य में सवर्णों का दलित लेखन की पक्षधरता केवल सहानुभूतिपरक या करूणाजन्य है। 'शिकंजे के दर्द' में सुशीला टाकभौरे ने सदियों से मूक मानव की व्यथा को आवाज दिया है। शोषित, पीड़ित समाज को भी देखना, सुनना और बोलना और अपने अधिकारों के लिए लड़ना आना चाहिए। अपनी आत्मकथा में सच्चाई को उजागर किया हैं जिससे भविष्य में समतावादी, मानवतावादी भारतीय समाज के निर्माण का मंथन और चिंतन के लिए कदम बढ़ाया जा सके।

दलितों का अपमान, उनके प्रति घृणाभाव रखना, भेदभाव और उच्च जाति वाले लोगों के उपेक्षा और तिरस्कार को झेलना पड़ता है। ऐसी अधिकांश घटनाओं को दलित लेखिका ने जीवन के कटु अनुभव को तल्खी के साथ व्यक्त किया है। ''मैं देखती थी, गाँव में बहुत छुआछूत थी। जातिभेद का अपमान हर जगह, हर बात में सहना पड़ता था। गाँव में फूलचन्द सेठ की अनाज और किराने की बड़ी दुकान पर माँ सेठ जी को दूर से बताकर सामान लिखवाती, कभी बड़े भाई सामान की लिस्ट बना देते थे, तब वह सामान की लिस्ट का कागज दूर जमीन पर रख देती, नौकर पढ़कर बताते। सेंठ जी के कहने पर नौकर सामान की

पुड़िया बनाकर दूर से टोकरे में फेंक देते थे। अनाज ऊपर से टोकरे में डाल देते हिसाब होने पर माँ कागज के नोट नीचे जमीन पर रख देती। नौकर नोट गिनकर सेठ जी को देते थे।''3

स्त्री जन्म नहीं लेती उसे ऐसा बनाया जाता है। ये मेरा काम है, ये तेरा काम। प्राकृतिक रूप से अन्तर है पर बौद्धिक रूप से कोई अन्तर नहीं है। लिंग के आधार श्रेष्ठता और दीनता का भाव पैदा किया जाता है। परम्परागत भूमिका का निर्धारण किया जाता है। स्त्री–स्त्री में सामंजस्य होता है। पुरूष–पुरूष में सामंजस्य होता है। परन्तु प्रतिस्पर्धा की भावना स्त्री–पुरूष में आती है। श्रम का प्रतिदान जो पुरूष को मिलता है वह स्त्री को नहीं मिल पाता है। नारीवाद कहता है दोनों समान है। मिल जुलकर कर लेना चाहिए। आज स्त्री को शिक्षा दी जा रही है। पिता, पति महिलाओं को अधिकार देकर खुश हो रहा हैं परन्तु एक ऐसा समय आयेगा जब वह अपने अधिकारों के साथ पैदा होगी। वर्तमान में स्त्री विमर्श, स्त्री लेखन में धर्म जाति, वर्ग से अलग एक स्त्री का संघर्ष उसकी अस्मिता का, मनुष्य के नैसर्गिक अधिकारों का संघर्ष है। दलित लेखिकाओं की रचनाएँ इसे सशक्त रूप से रेखांकित कर रहीं हैं। शिक्षा, आर्थिक निर्भरता के साथ–साथ पितृसत्तात्मक मानसिकता में परिवर्तन के बिना स्त्री की पूर्व निर्धारित स्थिति और भूमिका में बदलाव सम्भव नहीं है। इस बदलाव के लिए पुरूष ही नहीं, स्त्री की मानसिकता को भी बदले जाने की आवश्यकता है क्योंकि स्त्री की मानसिक धारणा भी पितृसत्ता के अनुसार निर्धारित और नियन्त्रित है। यह सच है कि पुरूष ही नहीं, स्त्री भी इससे आसानी से मुक्त नहीं हो पा रही है। सुशीला टाकभौरे ने अपने आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द, में वर्चस्ववादी प्रवृत्ति को रेखांकित किया है–

''यह मेरे जीवन का अजीब दिन था। क्या पति के सामने पत्नी का कोई स्थान नहीं होता? ससुराल में बहु की स्थिति क्या इतनी नगण्य होती है? स्त्री की स्थिति इस तरह पद दलित रहती है? स्त्री इतना अपमान, इतनी पीड़ा क्यों सहती है? उसे ऐसा क्यों बनाया गया? दुख के साथ मेरे हृदय में भावनाओं का बवंडर उठा था। समाज में पत्नी पर तरह–तरह के अत्याचार करना आम बात मानी जाती है। ये बातें समाज में इस तरह व्याप्त हैं कि लोग इन्हें बुरा भी नहीं मानते। इन्हें मानों पति का अधिकार माना जाता है। छोटी–छोटी, बातों पर अपनी नाराजी बताना पति का गुण कहलाता, जैसे अपने इन्हीं गुणों से वह खुद्दार और दमदार पति माना जाता हो। ये बातें मेरे साथ भी हुई। खाना परोसने में देरी होने पर या किसी बात पर नाराज होने पर वे खाना नहीं खाते थे, तब उन्हें घण्टों मनाना पड़ता था। कभी–कभी वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे– ''मेरे पैरों पर अपना सिर रखकर माफी माँग, तब मैं तेरी बात मानूँगा।''4

दलित स्त्रियों द्वारा लिखी आत्मकथाएं हाशिये में भी हाशिये की आवाज है। वस्तुतः दलित स्त्री दोहरे–तिहरे शोषण की शिकार होती है–स्त्री होने की यातना, दलित होने की यातना, गरीबी की प्रताड़ना, क्रूरता की हद तक यातना, उत्पीड़न ने ही सदियों तक दलितों और स्त्रियों को वर्चस्वशाली पक्ष के अधीन रखा। एक दलित स्त्री को उसे अपने समाज और अपनों से लड़ता होता और अपने स्त्री होने से भी लड़ना होता है। सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में जातिभेद और नारी उत्पीड़न को अभिव्यक्त किया है– '' जातिभेद का अन्याय और नारी शोषण सदियों से हो रहें हैं, दोनों ही दर्द साथ–साथ मिलते रहे। फ्लैट में रहने के समय की बातें भी दर्द की तरह सालती हैं। असल में यह शिकंजा आजकल का या उस कालखण्ड का नहीं था। यह सदियों पुराना है जो हमारी सामाजिक व्यवस्था को पूरी तरह जकड़े हुए है। उस शिकंजे की जकड़न में रहते हुए शूद्र–अछूतों का जीवन कष्ट और अपमान से पीड़ित रहा है। साथ ही समाज में नारी की स्थिति हमेशा निर्बल असहाय रहीं। समाज में परम्परा के रूप में स्त्रियाँ न तो सम्पत्ति की अधिकारी हो सकती थीं और न ही घर की मुखिया। चाहे वे शिक्षित हों, स्वावलम्बी हों, सम्पन्न हों, उन्हें सभी सुविधाएँ प्राप्त हो, फिर भी घर का मालिक पुरूष ही होता

है। पुरूष अपनी सत्ता को कभी ताकत से कभी समझदारी से और कभी छल–कपट से हमेशा अपने अधिकार में रखते।'' 5

समाज में दलित स्त्रियों का सीधे श्रम के साथ जुड़ने के बावजूद भी न उनकी कोई पहचान है और न ही उनका कोई अस्तित्व, समाज में उसे अमानवीय कार्य से उसे कुंठित होना पड़ता है। शोषण का शिकार वह आये दिन होती रहती है। भारतीय समाज में जाति की भूमिका एक व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होती है। जिसे लेकर पूरा समाज दो हिस्सों में बँट जाता है एक दलित तो दूसरा सवर्ण, कोई दलित स्त्री है तो कोई सवर्ण स्त्री। एक दलित स्त्री की त्रासदी है कि उन्हें एक गाल पर बाह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। सवर्ण समाज की स्त्रियों का संघर्ष केवल लिंगभेद एवं पुरूष वर्चस्व के खिलाफ है, जबकि उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है और एक हद तक आर्थिक संरक्षण भी। जाति व्यवस्था में दलित स्त्रियों से आनेवाली स्त्रियों की लड़ाई दोहरी है। सुशीला टाकभौरे ने 'शिकंजे का दर्द' में स्त्री होने की पीड़ा को व्यक्त किया है। ''यह मनुवादी मानसिकता पुरूषों में है। स्त्रियों पर शासन करना, उन्हें दासी समझना, उन्हें सम्पति का अधिकारी नहीं बनने देना, उन्हें दासी समझना, उन्हें सम्पति का अधिकारी नहीं बनने देना, उन्हें हमेशा अपने नियन्त्रण में रखना, अपने दोष न देखकर स्त्रियों को दोष देना, स्त्रियों को अधिकार हीन बनाकर रखना, हिन्दूधर्म ग्रन्थों की ये बातें समाज में व्याप्त हैं। इसके अपवाद भी है, सभी पुरूष ऐसा नहीं करते है। श्रम करके आर्थिक सहयोग देने वाली पत्नी को घर में मान–सम्मान और प्राथमिकता दी जाती है। अधिकतर पुरूष अपनी पत्नी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए, उनकी सुख–सुविधाओं का पूरा ख्याल रखते हैं। मगर मेरे साथ ऐसा होता रहा। '' 6

मराठी में आयी दलित स्त्रियों की आत्मकथाओं के पश्चात कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' को दलित स्त्री द्वारा रचित हिन्दी की पहली आत्मकथा कहा जा सकता है जिसने जाति व्यवस्था और पितृसत्ता दोनों की वास्तविकताओं को उजागर किया है। बेबी कांबले, शांताबाई कांबले, जनाबाई गिरहे और कुमुद पावड़े ने स्त्रीजन्य विवशताओं से घिर कर पुरूष सत्ता से विरोध दर्ज किया है। जातिवादी और सवर्णवादी अपमानजनक और असहनीय व्यवहारों पर घोर आपत्ति दिखाई है। इन आत्मकथाओं में विषमतावादी समाज का नकार और समतामूलक समाज की अकांक्षा है और यही इन आत्मकथाओं की मूलभूत चेतना है। हिन्दी दलित आत्मकथा लेखन में स्त्री द्वारा रचित आत्मकथाओं में कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' तथा रजनी तिलक की 'अपनी जमीं अपना आसमा' ने अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। ये आत्मकथएं दलित स्त्री की संघर्ष यात्रा में शिक्षा और मुखरता के महत्व को रेखांकित किया है। दलित चेतना के साथ–साथ स्त्री चेतना और स्त्री मुक्ति के संघर्ष को प्राथमिकता दिया गया है।

सुशीला टाकभौरे ने जाति भेद–वर्णभेद का बहुत बड़ा इतिहास बताया है। ''जातिभेद–वर्णभेद की बाते कोई सामान्य बातें नहीं है। इसके पीछे बहुत बड़ा रहस्य है, बहुत बड़ा इतिहास है। यह भारत के मूलनिवासियों और यूरेशियों के बीच संघर्ष का परिणाम है। छल–कपट के साथ–साथ, साम–दाम–दंड–भेद के साथ यहाँ के मूलनिवासियों को पराजित करके उन्हें उपेक्षित, शोषित, पीड़ित बनाये रखने का इतिहास है। मैं इतना जानती थी, हमारे देश के उच्च वर्ण के चालाक लोग जातिभेद मानते हुए इंसानों में भेदभाव करते हैं। जाति के नाम पर स्वंय को श्रेष्ठ कहने वाले जाति–व्यवस्था बनाये रखना चाहते हैं। वे समाज–व्यवस्था में ऊँच–नीच की विषमता बनाये रखने के लिए, अपने ढंग से कभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, धर्म और परम्परा के नाम पर लोगों से इन बातों का पालन करवाते हैं। सामाजिक व्यवहार में मैं इन बातों को देखती थी– लोग ऐसी परम्पराओं से अपना लाभ निकालते थे।''7

'शिकंजे का दर्द' में लेखिका ने अपने बचपन की स्मृतियों, घटनाओं को भी उकेरा है और उन पर तीखी टिप्पणी भी किया है। बचपन से ही बड़े भाइयों से कम बात करना, माँ द्वारा पिता और भाई के लिए घी छुपाकर ताले में रखना, पर्व–त्योहारों की खुशियों के बीच जाति का कड़वा अहसास, खेतों में तुअर साफ करने जाना और माँ का उसे तथा बहनों को अपनी आंखो के सामने रखना, किसी को बुरी नजर देख सुरक्षा हेतु सतर्क हो जाना, जाति के कारण माँ–नानी का अपमान, पिता द्वारा शराब पीकर बामन–बनियों द्वारा उन्हें अछूत और लाचार बनाये रखने पर क्रोधित होना, आदि सन्दर्भो को लेखिका ने रेखांकित किया है। ग्रामीण जीवन में दलित बंदिशों, बन्धनों से जकड़े स्त्री जीवन को उजागर किया है। स्त्री जीवन की आज भी बदहाल स्थिति पर चिन्तन के मजबूर किया है। अभावग्रस्त जीवन, भूख की पीड़ा, पिता–भाइयों का कठोर श्रम, भूखे पेट पानी पीकर सो जाना। भूख से व्याकुल भाई–बहनों की पीड़ा को लेखिका ने अपनी सघन अनुभूति को आत्मकथा में दर्शाया है।

निष्कर्ष–

'शिकंजे का दर्द' एक दलित स्त्री की अथक यात्रा है, स्त्री की विकलता, विद्रोह, आक्रोश, छटपटाहट को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये आत्मकथाएं सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालती है तथा समाज में समानता और उच्च आदर्शो की वकालत करती है। लेखिका अम्बेडकरवादी विचारधारा से ओत–प्रोत है। लेखिका ने अपने जीवन संघर्षो और कटु अनुभवों को साझा किया है। इस आत्मकथाओं में स्त्री होने तथा दलित होने का संताप है। शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की कथा है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किये गये स्त्री और दलित जीवन की व्यथा–कथा का दर्द समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है। यहाँ दलित स्त्री के प्रति नकारात्मक व्यवहार और पुरूषवादी मानसिकता से होने वाले उत्पीड़न को उजागर किया गया है। यह आत्मकथा दलित स्त्री के दोहरे अभिशाप को दर्शाती है। जहाँ एक तरफ स्त्री होने का दर्द तो दूसरी तरफ दलित होने का दर्द। समाज में व्याप्त अशिक्षा, गरीबी, अन्धविश्वास, भेदभाव के कारण दलित स्त्री का जीवन और भी कठिन हो जाता हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1– टाकभौरे सुशीला, 'शिकंजे का दर्द,' वाणी प्रकाशन दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण–2020, पृ0 8
2– वही, पृ0 51
3– वही, पृ0 49
4– वही, पृ0 144
5– वही, पृ0 221
6– वही, पृ0 197, 198
7– वही, पृ0 175

वैश्वीकरण और भारतीय किसानसामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का समाजशास्त्रीय अध्ययन :

रागिनी यादव
शोध–छात्रा,समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005
ragini2yadav48@gmai.com

सारांश :–

भारतीय ग्रामीण संरचना में कृषि सदैव से ही हमारे सामाजिक व आर्थिक उन्नति का माध्यम रही है। कृषि उत्पादन में वैश्वीकरण ने अतीत की तुलना में बहुत तेजी से आगे बढ़ने का अवसर दिया है। वैश्वीकरण ने कृषि की भूमिका को सुदृढ़ता प्रदान किया है। आधुनिक कृषि में प्रौद्योगिकी की उपलब्धता के साथ–साथ उच्च उत्पादन व उत्पादक में वृद्धि से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि हुई है और रोजगार के अनेक नये मार्ग प्रशस्त हुए हैं। हालाँकि 90 के दशक के मध्य उत्पादन की दर में मंदी के साथ कृषि के लिए स्थितियाँ प्रतिकूल लगने लगी, जिस के परिणाम स्वरूप किसानों की आय में गिरावत आई जिससे कृषि संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है और पिछले दशकों में किसानों की आत्महत्या की संख्या में भी भारी वृद्धि देखी गई है। इससे देश की खाद्य सुरक्षा पर भविष्य में प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वैश्वीकरण का दुष्प्रभाव हमारी भारतीय कृषि पर न पड़े इसके लिए आवश्यक है कि सरकार द्वारा ऐसी नीतियों का निर्माण किया जाये जिससे छोटे व सीमान्त किसानों को वास्तविक लाभ मिल सकें। कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि के लिए तकनीकी विकास के साथ ही रूपान्तरित फसलों का प्रयोग सिंचाई व ऋण की सुदृढ़ व्यवस्था होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत लेख वैश्वीकरण के सन्दर्भ में भारतीय किसानों के अवसर व चुनौतियों तथा सरकारी नीतियों पर ध्यान केन्द्रित करने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्द– भारतीय ग्रामीण संरचना, वैश्वीकरण, कृषक आत्महत्या, कृषि संकट ।

प्रस्तावना–

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व के और भी अनेक कारण है। भारत की परिवहन रेलवे व सड़क मार्ग का अधिकांश व्यापार कृषि–वस्तुओं को लाने–ले–जाने में होता है। अंतर्देशीय व्यापार की वस्तुएँ भी मुख्यतः कृषि वस्तुएँ ही हैं। इसके अतिरिक्त, अच्छी फसल के कारण किसानों की क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिससे उद्योग–निर्मित वस्तुओं की मांग और कीमते बढ़ जाती हैं। परिणामतः उद्योगों की प्रगति होने लगती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, और कृषि की सम्पन्नता पर भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि निर्भर करती है। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पादकता से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। इस सम्बंध में पंजाब व हरियाणा का मुख्य, उदाहरण है जहाँ कृषि आज भी शुद्ध राज्यीय घरेलू उत्पाद का 40 प्रतिशत उपलब्ध करायी है। इस कारण राज्य के समग्र विकास को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

प्रत्येक देश के द्वारा वस्तु, सेवा, पूंजी एवं बौद्धिक सम्पदा का बिना किसी प्रतिबन्ध के आदान–प्रदान ही वैश्वीकरण कहलाता है। अन्य शब्दों में, किसी देश की अर्थव्यवस्था को अन्य देश की

अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ने एवं उनके समक्ष प्रतिस्पर्धा क्षमता का विकास करने से है। वैश्वीकरण के कारण वित्त और बैकिंग, व्यापार व राजकोषीय सम्बन्धी तथा मानवीय जीवन के तौर तरीकों से सम्बंधित क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है। इन परिवर्तनों ने भारतीय कृषि क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक व संस्थात्मक शक्तियों का निर्माण किया है। इन परिवर्तनों का भारतीय कृषि पर बहुत अधिक प्रभाव देखने को मिलता है क्यूकि ये ग्रामीण क्षेत्र ,कृषि व जनजीवन व कृषि के भौगोलिक व सामाजिक सीमा के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से जुड़ चुके है। अतः यह कहा जा सकता है कि कृषि से सम्बन्धित आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षिक, मनोरंजन, मनोवैज्ञानिक आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर विश्व को सम्बद्ध संस्थाओं व तकनीकी से जोड़ दिया है लेकिन वर्तमान में वैश्वीकरण ने कृषि व व्यापार में विकसित व विकासशील देशी के बीच खाई बना दी है, जिसे मिटाना अति आवश्यक है वैश्वीकरण ने कृषि उत्पादन को अतीत की तुलना में बहुत तेजी से बढ़ने की अनुमति दी है। कुछ दशकों पहले तीव्र विकास प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत से अधिक था। अर्थात् विकास की इस उच्च दूरी में इसकी संरचना में काफी बदलाव शामिल है। वैश्वीकरण एक प्रक्रिया के रूप में भारतीय कृषि व्यवस्था को अनेक प्रकार से प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

अध्ययन की समस्या :–

भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला कृषि है देश की दो तिहाई जनसंख्या कृषि व कृषि से सम्बंधित क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। देश का आर्थिक विकास किए बिना कृषि विकास के सम्भव नहीं है। भारत में कृषि क्षेत्र को अंतर्राष्ट्रीय बाजार मिलने से किसानों के उत्पादन में अधिक वृद्धि हुई है। नई तकनीक, बीच, कृषि पद्धतियाँ आदि में सुधार हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी सकल घरेलू उत्पाद में निरन्तर वृद्धि हुई है। खाद्यानों की उत्पादकता में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई है। हरितक्रान्ति को अपनाने से गेहूँ व चावल में तेजी से वृद्धि हुई लेकिन मोटे अनाज, दाल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है परिणामस्वरूप भारत में खाद्यान का विशाल भंडार एकत्र हो गया। भारत वर्तमान में खाद्यान आयातक की बजाज निर्यातक देश हो गया है।

कीटनाशकों व उर्वरकों में आधुनिक कृषि तकनीकी की उपलब्धता के साथ–साथ खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए उच्च उपज वाली फसलों की नई नस्लों को नियोजित किया जाता है अब कृषि जीवनयापन का साधन न होकर व्यवसाय हो गया है। नयी कृषि व्यूह रचना के अनुसार सरकार कृषि शिक्षा व अनुसन्धान कार्यों को भी बढ़ावा दे रही है। आज देश में कृषि विश्वविद्यालयों का विस्तार किया जा रहा है। कृषि अनुसंधान के लिए भारतीय अनुसन्धान परिषद है जो अपने अनुसंधान केंद्रों व प्रयोगशालाओं के माध्यम से कृषि की नवीन किस्म विकसित करती रहती है। कृषि उत्पादकता में सुधार लाने, अनुसन्धान कार्यों को किसानों तक पहुँचाने व आधुनिक तकनीकी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए टीवी, रेडियों, इंटरनेट आदि का भी उपयोग किया जा रहा है।

विश्व व्यापार संगठन की शर्तों के कारण सभी देशों को समान अवसर प्राप्त होते हैं, इसलिए कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि होती है। विश्व बैंक द्वारा प्रदान किए गए आंकड़ों के अनुसार, निर्यात में भारत का हिस्सा 1990 में 0.54ः से बढ़कर वैश्वीकरण के पांच साल के भीतर 1999 तक 0.67ः हो गया। इसी अवधि के दौरान भारतीय निर्यात में भी वृद्धि हुई है। भारतीय बाजार में निर्यात में वृद्धि होगी व कीमतें बढ़ेगी तो लाभ होगा। यह भी सच है कि विकासशील देशों में वैश्वीकरण को आमतौर पर अमीर व गरीब के बीच की खाई को बढ़ाने के रूप में जाना जाता है। भारत की चिंता गरीबी को दूर करना है, और यदि भारत प्रयास करता है, वैश्वीकरण इससे छुटकारा पाने की कुंजी हो सकता है। भारत में गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का प्रतिशत, निरन्तर घट रहा है।

वैश्वीकरण विकासशील देशों में उन किसानों की आय को कम करता है जिन्हें सब्सिडी नहीं मिलती है। और चूंकि विकासशील देशों में 70 प्रतिशत लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है, इसका मतलब है कि विकासशील देशों की आय कम है।

वैश्वीकरण के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी हैं यन्त्रीकरण, विद्युतीकरण, परिवहन संसाधनों व छोटी जोतों ने बेरोजगारी को निरन्तर बढ़ाया है। वैज्ञानिक खेती से बेरोजगारी तेजी से बढ़ी है। श्रम व पशु प्रधान खेती के स्थान पर पूँजीवादी व मशीनीकृत खेती को बल मिला है।

वैश्वीकरण के बाद देश में कृषि आदानी–बीज, उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, सिंचाई, आदि की लागत में काफी वृद्धि हुई हें जबकि कृषि उत्पादों की कीमत में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हुई है। आदानों एवं कृषि लागत में यह वृद्धि सिंचित क्षेत्रों में अधिक हुई हैं। अपनी उपज का उपयुक्त मूल्य प्राप्त नहीं होते तथा कर्ज के बोझ से डूबते जा रहे किसानों द्वारा समय–समय पर किसी न किसी राज्य में आत्महत्याएँ करने के समाचार आते रहते हैं, चाहे वह राज्य आंध्रप्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश या महाराष्ट्र हो।

ग्रामीण भारतीय समाज के संरचनात्मक व्यवस्था में किसानों की अग्रणी भूमिका है जिससे सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है। वैश्वीकरण ने रास्ट्रीय खाद्यान व् वैश्विक व्यापर का स्तर उच्च किया है जिससे कृषि विकास के साथ ही किसानों की आय में वृद्धि हुई है परन्तु इसके साथ ही वैश्वीकरण में छोटे , सीमांत व् भूमिहीन कृषिको पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है द्य इस लेख में वैश्वीकरण के प्रभाव से कृषक जनजीवन में हुए बदलाव का अध्यन किया गया है **अध्ययन की प्रासंगिता :–**

1. ग्रामीण क्षेत्र के लोगों एवं किसानों का ग्रामीण संरचना में बहुत बड़ा योगदान है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के रूप और राष्ट्रीय विकास को बढ़ाने में किसानों की अग्रणी भूमिका है।
2. किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव से उनमें प्रौद्योगिकी विकास, कृषि विकास के पश्चात् उनके आय में वृद्धि हुई है। जिससे राष्ट्रीय खाद्यान एवं वैश्विक व्यापार का भी स्तर बढ़ा है।
3. किसानों के विकास से जुड़े किसान ऋण कार्य योजना एवं किसान क्रेडिट कार्ड का सकारात्मक प्रभाव से किसानों को कृषि कार्य करने में बहुत असानी होती है।
4. मनरेगा कार्यक्रम द्रारा ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्तन व भूमि सुधार हुए हैं।

उद्देश्य :–

1. उत्तरदाताओं के सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. भारतीय ग्रामीण संरचना में किसानों पर पड़ रहे वैश्वीकरण के प्रभावों का अध्ययन करना है।
3. किसानों के माध्यम से विकास, व्यवसाय का स्तर एवं उसके दैनिक जीवन में परिवर्तन का अध्ययन करना है।

शोध प्रश्न :–

1. उत्तरदाता के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में किस तरह बदलाव हुआ है ?
2. भारतीय ग्रामीण संरचना में किसानों पर वैश्वीकरण का किस प्रकार प्रभाव पड़ा रहा है।
3- किसानों द्वारा कृषि विकास व्यवस्था के स्तर एवं दैनिक जीवन में परिवर्तन का स्वरूप कैसा है ?

अवधारणात्मक व्याख्या :–

भारतीय ग्रामीण संरचना :–

भारतीय ग्रामीण संरचना से आशय व्यवस्था के संग्रह से है जिसके अन्तर्गत गाँव, समुदाय, परिवार ओर जाति ग्रामीण सामाजिक संरचना के मूल घटक हैं। यह सम्पूर्ण जीवन क्षेत्र अर्थात ग्रामीण लोगों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

वैश्वीकरण :–

वैश्वीकरण से तात्पर्य राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की एकीकरण से है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है और यह कई रणनीतियों के संग्रह का परिणाम है जो विश्व को अत्यधिक परस्पर निर्भरता एवं एकीकरण की दिशा में बदलने के लिए निर्देशित है। इसमें नेटवर्क का निर्माण और सामाजिक–आर्थिक राजनीतिक एवं भौगोलिक बाधाओं को बदलने वाले कार्य शामिल हैं।

किसान या कृषक :–

किसान से तात्पर्य कृषि से जुड़े हुए कार्य करने वाले व्यक्ति से है जो खेती की फसलों पशुधन को बढ़ाने का संयोजन करते हैं, उन्हें हम कृषक के श्रेणी में रखते हैं। ये कृषक किसी भूमि का मालिक हो सकता है या दूसरों के स्वामित्व वाली भूमि पर श्रमिक के रूप में कार्य कर सकता है। अधिकांश विकसित अर्थव्यवस्थाओं में एक कृषक साधारणतः एक खेत का मालिक होता है जबकि खेत के कर्मचारियों को कृषि श्रमिक के रूप में जाना जाता है।

अध्ययन क्षेत्र :–

प्रस्तुत शोध–पत्र उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के देवकली विकासखण्ड के तलीसा गाँव का चयन किया गया है।

समग्र एवं न्यायदर्श का चयन :–

प्रस्तुत अध्याय 25 ईकाइयों का चयन सरल दैव निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया है तथा तथ्य संकलन के लिए अवलोकन एवं साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन पद्धति :–

प्रस्तुत अध्ययन पद्धति अन्वेषणात्मक एवं सह वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

तथ्य संकलन के स्रोत :–

प्रस्तुत शोध–पत्र को पूर्ण करने हेतु प्राथमिक एवं दैतीयक दोनों स्रोतों से तथ्यों का संकलन किया गया है।

तथ्य संकलन का उपकरण एवं विधि :–

प्रस्तुत शोध–पत्र में तथ्य संकलन के लिए अनुसूची तथा साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का वर्गीकरण सारणीयन एवं विश्लेषण :–

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण वह सारणीबद्ध किया गया है तथा सारणी के तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष देने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में सारणीवार तथ्यों की विवेचना निष्कर्ष सहित इस प्रकार है।

उत्तरदाताओं के आयु के आधार पर स्थिति

सारणी संख्या–1.1

प्रत्युत्तर (वर्षा)	आवृत्ति	प्रतिशत
18–25	8	32.00
26–30	7	28.00
31–35	5	20.00
36–40	3	12.00
41 से अधिक	2	08.00
योग	**25**	**100.00**

उपरोक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 32.00 प्रतिशत सर्वाधिक लोग उत्तरदता 18–25 वर्ष, 28.00 प्रतिशत उत्तरदाता 26–30 वर्ष, 20.00 प्रतिशत उत्तरदाता 31–35 वर्ष, 12.00 प्रतिशत उत्तरदाता 36–40 वर्ष, 08.00 प्रतिशत उत्तरदाता 41 वर्ष से अधिक के हैं।

अतः निष्कर्ष के रूप में प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 32.00 प्रतिशत उत्तरदाता 18–25 वर्ष के अन्तर्गत किसान के रूप में कार्य कर रहे हैं। अर्थात् आज भी ज्यादातर लोग बेरोजगार हैं।

भारतीय ग्रामीण समाज में संरचनात्मक परिवर्तन

सारणी–1.2

संरचनात्मक परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	21	84
न्हीं	4	16
योग	**25**	**100.00**

उपरोक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 84 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि भारतीय ग्रामीण समाज में संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है, वही पर 16.00 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि आज भी बहुत से कार्य परम्परागत तरीके से संचालित हो रहा है, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 84 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना कि भारतीय ग्रामीण संरचना में किसानों पर वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ा है।

किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के परिणमस्वरूप स्थिति में परिवर्तन

सारणी संख्या–1.3

किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप स्थिति में परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	18	72
न्ही	4	16
कह नहीं सकते	3	12
योग	**25**	**100.00**

उपर्युक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के परिणामरूप स्थिति में परिवर्तन हुआ है और 17 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि किसानों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है और 12 प्रतिशत उत्तरदाता कह नहीं सकते हैं के रूप में उत्तर प्रदान किए।

अतः परिणामतः कहा जा सकता है कि सर्वाधिक 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप स्थिति में बहुत से स्तरों पर बदलाव हुए हैं। आज उनके खान पान, रहन सहन व उत्पादन में वृद्धि हुई है।

किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के पश्चात् गरीबी में कमी

सारणी संख्या–1.4

वैश्वीकरण का किसानों पर प्रभाव के पश्चात् गरीबी में कमी	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	17	68

न्हीं	3	12
कह नहीं सकते	5	20
योग	**25**	**100.00**

उपरोक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के पश्चात् गरीबी में कमी आयी है और 12 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि कोई खास बदलाव नहीं हुआ है तो वहीं पर 20 प्रतिशत उत्तरदाता कह नहीं सकते के रूप में उत्तर प्रदान किया।

अतः स्पष्ट रूप से कहां जा सकता है कि सर्वाधिक तौर पर 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि किसानों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के पश्चात् गरीबी में कमी आयी है। उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई जीवन यापन व खान–पान का स्तर उच्च हुआ है एवं गरीबी के स्तर में कमी आयी है।

किसानों के हित में संचालित सरकार की योजनाओं का प्रभाव

सारणी संख्या–1.5

किसानों के हित में संचालित सरकार की योजना का प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	20	80
न्हीं	3	12
कह नहीं सकते	2	8
योग	**25**	**100.00**

उपरोक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि किसानों के हित में संचालित सरकार की योजनाओं का प्रभाव पड़ा है। 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कोई प्रभाव नहीं पड़ा और 8.00 प्रतिशत उत्तरदाता कह नहीं सकते हैं कि रूप उत्तर प्राप्त हुआ।

अतः परिणामतः कहा जा सकता है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि किसानों के हितों में संचालित सरकार योजना का प्रभाव पड़ा है, जिससे उन्नत बीजों व् खादों की उपलाभ्धता, सिचाई के संसाधनों का विकास व् भूमि सुधार जैसे कार्यों ने कृषक जनजीवन को उच्च बनाया है जिससे किसानों के कार्य आसान हुए है|

किसानों पर जनसंचार माध्यमों का प्रभाव

सारणी–1.6

किसानों पर जनसंचार माध्यमों का प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	21	84
न्हीं	2	08
कह नहीं सकते	2	08
योग	**25**	**100.00**

उपरोक्त सारणी से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 84.00 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि किसानों पर जनसंचार माध्यमों का सीधा प्रभाव पड़ा है। 8 प्रतिशत उत्तरदाता प्रभाव मानने से इंकार कर दिया। जबकि वहीं पर 8 प्रतिशत उत्तरदाता कह नहीं सकते के रूप में उत्तर प्रदान किया।

अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 84 प्रतिशत लोगों का कहना है कि किसानों पर जनसंचार माध्यमों का स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ा है जिससे नये किस्म के बीजों, तकनीकी का प्रयोग आसान हो पाया है रेडिओ टेलीविजन इत्यादि द्वारा सहजतापूर्वक कृषि सम्बन्धी जानकारियां किसानों तक पहुँच पाती हैं |

किसानों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

सारणी संख्या–1.7

सानों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	16	54
नही	4	16
कह नहीं सकते	5	20
योग	**25**	**100.00**

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 54 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि बदलते परिवेश में किसानों पर आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है। 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि आज भी ज्यादातर किसान परम्परागत तरीके से खेती करते हैं। कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। जबकि 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कह नहीं सकते के रूप में अपना जवाब दिया।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अत्यधिक 54 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि किसानों के रहन–सहन, जीवन–यापन, व्यवसाय के आयात एवं निर्यात में वृद्धि से स्पष्ट हुआ कि उन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष :–

पिछले कुछ वर्षों में कृषि विकास में कमी आई है। किसानों के लिए आवश्यक समर्थन पद्धतियों जैसे कि अनुसंधान, विस्तार, इनपुट आपूर्ति और आश्वस्त लाभप्रद विपणन के लिए अवसरों की समीक्षा और उनमें सुधार करने की आवश्यकता है। वर्तमान में सरकार की नीतियां जरूर बनती है लेकिन उनका सही क्रियान्वयन नहीं हो पाता, जिससे उनका उद्देश्य हासिल नहीं हो पाता। फसल बीमा योजना, कृषि सिंचाई योजना, परंपरागत कृषि विकास योजना, किसान संपदा योजना, स्वास्थ्य हेल्थ कार्ड आदि सरकारी योजनाओं से किसानों से उत्साहवर्धन अवश्य हुआ लेकिन इन योजनाओं का सही क्रियान्वयन नहीं हो पाया जिससे उद्देश्य हासिल नहीं हो पाया।

स्वतंत्र भारत से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय किसानों की दशा में केवल 19–20 का ही अंतर नजर आता है। समृद्ध किसानों की गिनती मात्र उंगलियों पर की जा सकती है। किसानों को ऋण माफ किए जाने की व्यवस्था को और मजबूत तथा उदार बनाने की आवश्यकता है। ऋण माफी से निश्चित रूप से उन किसानों को लाभ हुआ है जो कभी अच्दे ऋण भुगतानकर्ता थे ही और उनमें यह प्रवृत्ति विकसित हुई कि ऋण की अदायगी करने से कोई लाभ नहीं है। किसी न किसी समय जब सरकार माफ करेगी तो इसका लाभ उन्हें मिलेगा ही।

आज भारतीय किसान परावलंबी हो गया हैं। उसे बीच के लिए उर्वरक के लिए, जुताई के लिए और बिक्री के लिए दूसरों पर निर्भर होना पड़ रहा है। इससे खेती की लागत बढ़ती जा रही है। छोटे किसानों के लिए खेती करना असंभव सा हो गया हैं वहीं उन्हें दूसरों के खेतों पर मजदूरी करने पर बाध्य होना पड़ रहा है। भारत के किसान और भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ फिर से बने इसेक लिए आवश्यकता है कि किसानों को पैंदावार का उचित मूल्य मिलना चाहिए, उन्हें कम ब्याज पर समय पर ऋण मुहैया कराना चाहिए, फसल नष्ट होने पर बीमा या अन्य स्रोतों से उचित मुआवजा मिलना चाहिए। इसके साथ ही सिंचाई की व्यवस्थ, समय पर और उचित कीमत पर उर्वरक की उपलब्धता हासिल होनी चाहिए।

यूरोपीय देशों में किसानों के प्रति हेक्टेयर सीधे'–धीरे खेती करने के लिए सब्सिडी देती है। अमेरिका सहित सभी विकसित देशों में ऐसी व्यवस्था है। किसानों की आय बढ़ाने के लिए यूरोपीय देशें की तरह सरकार को एकमुश्त आमदनी सुनिश्चित करनी चाहिए। यह लाभ छोटे और मझोले किसानों को दिया जाना चाहिए। खेती के सहायक उद्योग पशुपालन को बढ़ावा देना होगा।

स्थानीय तौर पर उपलब्ध गोबर–पत्ती, फसल अवशेष, गोमूत्र, नीम आदि के बेहतर उपयोग और साथ ही जैव–विविधता और उचित फसल चक्रों को अपनाकर भूमि के प्राकृतिक उपजाऊपन को बनाए रखने और हानिकारक कोड़ों को दूर रखने का उद्देश्य प्राप्त करना चाहिए। इसके साथ ही फसलों और प्रत्येक फसल की किस्मों की विविधता और उचित फसल चक्र भी महत्वपूर्ण है। सहकारिता के माध्यम से किसान खेती को लाभकारी ही नहीं बल्कि रोजगार सृजित कर भारत की अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने में भी फसल होंगे। कृषि की समृद्धि और पशुपालन की समृद्धि को एक–दूसरे का पूरक मान कर आगे बढ़ना चाहिए। सभी पशुओं की भलाई पर ध्यान देना चाहिए और गाय–बैल रक्षा का विशेष प्रयास करना चाहिए। गांवों और पास के कस्बों में छोटे अैर कुटरी उद्योगों की अधिकतम प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

सन्दर्भ :–

1. तिवारी, जयकान्त, 2003, ''भारत का समाजशास्त्र'', अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ।
2. ओझा सीमा, 2009, भारत, प्रकाश विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली।
3. ओझा, एन0एन0, नवम्बर 2017, अंक, 4, ''भारत योजना 2009'', क्रॉनिकल, क्रानिकल पब्लिकेशन प्रा0 लि0 नई दिल्ली।
4. सिंह कटार, (2011) 'ग्रामीण विकास सिद्धान्त नीतियाँ एवं प्रबन्ध', रावत पब्लिकेशन जयपुर।
5. कोरेथ, जार्ज, वडेहरा किरण (2012), 'ग्रामीण महिला सशक्तिकरण' उपलब्धि अभिप्रेरणा के माध्यम से सूक्ष्म–उद्यम, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. चलम, के0एस0, (2011), 'आर्थिक सुधार और सामाजिक अपवर्जन', भारत में उपेक्षित समूहों पर उदारीकरण का प्रभाव, सेज प्रभा, नई दिल्ली।
7. शर्मा, नीलमणि, (अगस्त 2018), 'भारतीय किसान–दशा और दिशा', पत्रिका संचार सौरभ, नई दिल्ली।
8. कुमारी, विमलेश (दिसम्बर 2022), भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि पर वैश्विककरण का प्रभाव, एन्थ्रोलॉजी द रिसर्च ऑफ जर्नल, अजमेर राजस्थान।
9. कोटवे, मधुकर : 'गाँवों से पलायन का बदलता स्वरूप', कुरूक्षे, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अंक 11, सितम्बर 2014।
10. कुमारी, सविता : 'गाँवों के सर्वांगीण विकास पर जोर', कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अंक 06, अप्रैल 2015।

11. सिंह, आशुतोष कुमार : 'बदलते गांव, उभरता गांव', कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अंक 02, दिसम्बर 2015।

भारतीय शिक्षा प्रणाली का बदलता स्वरूप एवं नई शिक्षा नीति

नीलम मौर्या
शोधछात्रा**,** समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ**,** वाराणसी उत्तर प्रदेश
mauryanilam@31gmail.com

सारांश –

प्रारंभिक भारत में गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था का पालन किया जाता था। गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था के मुख्य चार उद्देश्य थे, नैतिक चरित्र का निर्माण , पवित्रता और धार्मिकता का विकास, व्यक्तित्व विकास एवं संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना। किंतु समयानुसार भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन होते चले गए और शिक्षा के उद्देश्य भी बदल गए। औपनिवेशिक व्यवस्था के आने के पश्चात अंग्रेजी भाषा का विस्तार हुआ। अंग्रेजी भाषा अब सीखने, निर्देश देने एवं रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल की जाने लगी। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय शिक्षा व्यवस्था का पूरा परिदृश्य बदल गया।यद्यपि ब्रिटिश शासन का शिक्षा प्रसार का मुख्य उद्देश्य पाश्चात्य शिक्षा, ज्ञान एवं संस्कृति का प्रसार करना तथा भारत में अंग्रेजी हुकूमत के लिए पाश्चात्य विचारधारा वाले क्लर्क उत्पन्न करना था। किंतु यह कहना गलत नहीं होगा कि, इसी दौरान बीसवीं शताब्दी के लिए उच्च शिक्षा का आधार तैयार हुआ। भारतीय शिक्षा नीति 1968 (स्वतंत्र भारत की पहली नीति "कोठारी आयोग" 1964- 66) की सिफारिशों पर आधारित था जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन संस्कृत भाषा के शिक्षा को प्रोत्साहन देना, शिक्षा पर केंद्रीय बजट का 6% व्यय का लक्ष्य एवं माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू करना था। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का उद्देश्य असमानता को दूर कर विशेषत: भारतीय महिलाओं, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जाति समुदायों के लिए समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना था एवं प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड चलाया गया था । इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी के साथ-साथ ओपन यूनिवर्सिटी का विचार प्रस्तुत किया गया, तथा ग्रामीण भारत में जमीनी स्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए महात्मा गांधी के दर्शन पर आधारित ग्रामीण विश्वविद्यालय मॉडल तैयार किया गया। 1992 में इस नीति में संशोधन कर व्यवसायिक और तकनीकी कार्यक्रमों में प्रवेश के लिए अखिल भारतीय आधार तैयार किया गया, जो विभिन्न प्रवेश परीक्षाएं आयोजित कराने के लिए जिम्मेदार था। बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की पूर्ति हेतु एवं नवाचार और अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अनावरण किया गया। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य विद्यार्थियों के लिए लचीलापन, शैक्षणिक धाराओं के बीच अलगाव की समाप्ति, बहू विषयक और समग्र शिक्षा, वैचारिक समझ, अनुभवजन्य ज्ञान पर जोर,बहुभाषावाद, कौशल विकास, रोजगारपरक, अनुसंधान एवं नवाचार के साथ-साथ मानवीय एवं संवैधानिक मूल्यों पर बल चरित्र निर्माण एवं समग्र विकास पर बल दिया गया है।

प्रस्तावना-

वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के मार्गदर्शन में 29 जुलाई 2020 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति का पुनर्जन्म हुआ। नई सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिस्थितियों से निपटने के लिए बनी इस नीति की विश्व स्तर पर प्रशंसा की गई। इस नई शिक्षा नीति की विचारधारा के 4 स्तंभ है, भारतीय विद्या परंपरा, महात्मा गांधी का विजन, डॉक्टर अंबेडकर का सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार करने के लिए विद्यार्थियों के भागीदारी को सुनिश्चित करना। हालांकि भारत में शिक्षा प्रदान करने की समृद्ध परंपरा प्राचीन समय से ही रही है ,प्राचीन काल में गुरुकुल व्यवस्था थी जहां गुरु और शिष्य साथ- साथ रहने की परंपरा थी। भारत में शिक्षा प्रणाली की कई शाखाओं की उत्पत्ति भारत में मानी जाती है, जैसे नालंदा विश्वविद्यालय। ब्रिटिश काल के दौरान भारतीय शिक्षा प्रणाली पर अंग्रेजों की हुकूमत थी, जिनकी प्राथमिकताएं अलग थी अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली की स्थापना की जिसका प्रभाव अभी तक भारत में बना हुआ है। उन्होंने देश में शिक्षा की सदियों पुराने प्रणाली को अंग्रेजी तरीके से परिवर्तित कर दिया। आजादी के 75 वर्ष पश्चात भारत किसी भी बाधा को पार कर विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है और अभूतपूर्व ढंग से प्रगति के पथ पर अग्रसर है। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति को आकार देने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आजादी के 75 वर्ष पूर्ण होने के पश्चात भारतीय शिक्षा व्यवस्था की यात्रा कई परिवर्तनों, चुनौतियां एवं अवसरों को प्रदर्शित करती है, जो भारत को प्रगतिशील और गतिशील बनाती है।

उद्देश्य-

1. भारतीय शिक्षा प्रणाली के आवश्यकता अनुसार परिवर्तन का विश्लेषण करना।
2. नई शिक्षा नीति के 3 वर्ष पूर्ण होने के पश्चात इसकी उपलब्ध एवं चुनौतियों को ज्ञात करना ।

अनुसंधान पद्धति-

प्रस्तुत आलेख द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है जिसमें आलेख से संबंधित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं रिसर्च पेपर्, समाचार पत्रों एवं इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन किया गया है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का बदलता स्वरूप-

भारतीय शिक्षा प्रणाली कि संरचना पिरामिड के आकार की है,

1. प्राथमिक स्तर- 5 से 6 साल तक के लिए।
2. प्रारंभिक शिक्षा का स्तर- 6 से 14 साल तक।

6 से 14 आयु तक के बच्चों को संवैधानिक अनुच्छेद 21(a) के अंतर्गत शिक्षा का अधिकार दिया गया है, इसी संदर्भ में सर्व शिक्षा अभियान का संचालन किया गया था।

3. माध्यमिक स्तर- 14 से 18 आयु तक तक।

इस लेवल पर सर्व शिक्षा अभियान को राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में परिवर्तित किया गया।

4. उच्च शिक्षा के स्तर पर सामान्यत: तीन लेवल U. G. , P.G. , M.phil/P.hd अतः उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान का गठन किया गया था।

सतत विकास लक्ष्य के प्रमुख लक्ष्यों में समावेशी और सामान गुणवत्ता वाले शिक्षा को सुनिश्चित करने और सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ाने के लक्ष्य को रखा गया है।

भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास के संदर्भ में मैकाले मिनट से वुड- डिस्पैच और विभिन्न आयोग जैसे सैडलर आयोग एवं भारतीय शिक्षा नीति 1904 आदि विभिन्न आयोगों ने भारतीय शिक्षा प्रणाली के नीव का निर्माण किया। अंततः समग्र विकास को सुनिश्चित करने एवं आधुनिकीकरण के इस युग में हो रहे तेज परिवर्तन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन को सुनिश्चित किया है। तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर भारत एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न चुनौतियों को पार करते हुए इस क्षेत्र में आवश्यक परिवर्तनों

को भी सुनिश्चित किया है जो निम्न है- 1. गुरुकुल से

क्लासरूम संरचना मे परिवर्तन

प्राचीन समय में भारत में गुरुकुल व्यवस्था विद्यमान थी, जहां कक्षाएं चार दीवारों में न होकर खुले वातावरण में पेड़ों के नीचे कक्षाओं का संचालन किया जाता था। किंतु क्लासरूम संरचना के विकास ने कक्षाओं का संचालन चार दीवारों के भीतर तक सीमित कर दिया, अब कक्षाओं का संचालन चार दीवारों के अंदर ही किया जाता है।

2 औपनिवेशिक काल के दौरान भारतीय शिक्षा अंग्रेजों के द्वारा ही निर्धारित की जाती थी अपितु अंग्रेजो के द्वारा निर्धारित शिक्षा उनकी अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु था । भारत में शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व का हिस्सा माना जाता था किंतु उनके स्वार्थ ने शिक्षा को व्यापारिक बना दिया। अंग्रेजों द्वारा संचालित शिक्षा ने समाज के प्रत्येक शिक्षार्थी को प्रतिस्पर्धी बनाया । प्रतिस्पर्धी समाज अपने स्वार्थ में सही गलत सब कुछ करने को तैयार रहते हैं ऐसी शिक्षा एक चिंता का विषय है

3 औद्योगिक क्रांति के पश्चात हुए तकनीकी विकास के कारण शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी का महत्व पूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन समय में जहां लकड़ी के तख्ते आदि पर चॉक -डस्टर का प्रयोग लिखने के लिए किया जाता था, समय के साथ लकड़ी के तख्ते ब्लैक बोर्ड में परिवर्तित हो गए इसके साथ ही ग्रीन बोर्ड का विकास हुआ, ग्रीन बोर्ड के पश्चात वाइट बोर्ड जिस पर मार्कर पेन से लिखा जाता है, का विकास हुआ।

4 ऑफलाइन लर्निंग से ऑनलाइन लर्निंग लगातार प्रौद्योगिकी के विकास एवं तकनीकी के उपयोग ने शिक्षा क्षेत्र को भी प्रभावित किया इसकी प्रमाणिकता कोविड-19 महामारी के दौरान देखने को मिली। जब स्कूल कॉलेज बंद हो गए तब मात्र तकनीकी ही शिक्षा का एकमात्र सहारा बने। शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का अच्छा उपयोग हुआ है चाहे वह वेबीनार, यूट्यूब, वेब आधारित लर्निंग, कंप्यूटर आधारित लर्निंग, आभासी कक्षाओं का संचालन , पावरप्वाइंट प्रेजेंटेशन का उपयोग हो, अभ्यास या मिश्रित शिक्षा या ऑनलाइन क्लासेस हो । वर्तमान की पीढ़ी तकनीकी प्रेमी है और डिजिटल इंडिया प्रोग्राम वास्तव में इस परिवर्तन में सहायक रही है। किसी भी समय और कहीं भी अध्ययन सामग्री तक पहुंच इसका महत्वपूर्ण पहलू है।

5. लर्निंग से ई-लर्निंग डिजिटल मीडिया के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना है ही ई लर्निंग कहलाता है। जो पाठ्य पुस्तकों वाली कक्षा विद्यार्थियों को उबाऊ लगती थी अब तकनीकी के उपयोग जैसे मोबाइलफोन, टैब, लैपटॉप आदि के माध्यम से उन्हें सीखने में रुचि प्रदान करती है। गेमीफिकेशन या खेल पद्धति के माध्यम से विद्यार्थियों को सिखाया जाता है। मोबाइल फोन, लैपटॉप, टैब आदि के विकास ने विद्यार्थियों को आभासी वास्तविकता, संवर्धित वास्तविकता एवं शिक्षा के मिश्रित प्रणाली को जन्म दिया है, जो विद्यार्थियों को सीखने में रुचि प्रदान करती है। इसके माध्यम से विद्यार्थी न केवल किताबों को पढ़ते हैं बल्कि उपयुक्त प्रणाली के द्वारा वास्तविकता का अनुभव भी कर सकते हैं। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी का उपयोग बढ़ता जा रहा है, ई -पुस्तकालय, ई-शिक्षा आदि इसके उदाहरण है।

उपयुक्त परिवर्तनों के साथ शिक्षा के निजीकरण ने शिक्षा जगत में विभिन्न समस्याओं को उत्पन्न किया। जहां शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास एवं सामाजिक प्राणी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना होता है, वही शिक्षा के निजीकरण के पश्चात शिक्षा केवल व्यापार की वस्तु बन कर रह गया । जहां उच्च वर्ग के विद्यार्थी तो शिक्षा को प्राप्त करने में समर्थ है लेकिन ऐसे विद्यार्थी जो गरीब तबके की है वह शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ते जा रहे हैं। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिक मुल्यो, विचारों, आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करना एवं विभिन्न कौशल प्रदान कर उनको सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। शिक्षा का वर्तमान उद्देश्य किताबों को रट कर केवल नौकरी पाने तक एवं धन संपन्नता अर्जित करने तक ही सीमित रह गया है । जबकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सृजनशील एवं संवेदनशील बनाना होना चाहिए किंतु वर्तमान शिक्षा व्यक्ति को न तो संवेदनशील बनाते है और नहीं रचनात्मक। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1985 के लगभग 34 वर्ष पश्चात नई शिक्षा नीति 2020 का गठन डॉ. के.

कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में किया गया। एक लंबे अंतराल के पश्चात शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता को इस शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास, भारतीय मूल्य एवं शिक्षा से वंचित वर्गों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसमें किए गए प्रावधान भारत को ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। इस नई शिक्षा नीति में यह प्रयास किया गया है की शिक्षा में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों का प्रवाह हो । इसीलिए इस शिक्षा नीति मे सम्मिलित चार आधार - भारतीय विद्या परंपरा, महात्मा गांधी का विजन, डॉक्टर अंबेडकर का सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भर भारत के सपने पर आधारित है। उच्चतर शिक्षा के स्तर पर विद्यार्थियों के लिए लचीलापन, अत:र्विषयक, समालोचना को बढ़ावा, समग्र शिक्षा, रटने के बजाय वैचारिक समझ को बढ़ाना, अनुभवजन्य ज्ञान पर जोर, बहुभाषावाद, कौशल विकास, व्यवसाय तथा रोजगारपरकता, शोध एवं नवाचार के साथ-साथ मानवीय एवं संवैधानिक मूल्यों पर वर्षबल और चरित्र निर्माण एवं छात्रों का समग्र विकास आदि इसके महत्वपूर्ण बिंदु है।किंतु यथार्थ रूप में इन तत्वों को मूर्त रूप देना एक बड़ी चुनौती है।

1986 के पश्चात नई शिक्षा नीति-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शैक्षणिक वर्ष 2023 - 2024 में लागू हुआ। इसके साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में यह धीमी गति से बदलाव ला रहा है । पाठ्यक्रम बदलाव से लेकर ग्रेडिंग संरचना में परिवर्तन तथा भारतीय तरीकों के बुनियादी पहलुओं पर जोर दिया गया है। तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की भारत की महत्वाकांक्षा अत्यधिक कुशल कार्यबल पर निर्भर करती है। वैश्वीकरण, तकनिकीकरण और डिजिटल परिवर्तन ने शिक्षा में बदलाव की आवश्यकता को सुनिश्चित किया है, समय के साथ इसमें महत्वपूर्ण भूमिका कृत्रिम बुद्धिमत्ता की होगी। इन परिवर्तनों के साथ ही नई शिक्षा नीति 2020 के 34 वर्ष पश्चात भारत ने औपचारिक स्कूली शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए प्रारंभिक बचपन के देखभाल (NCF) और शिक्षा को एकीकृत कर एक महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है। प्रारंभिक चरण के लिए पहले, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचे का कार्यान्वयन जो 3 से 8 वर्ष के बच्चों के लिए खेल शिक्षा शास्त्र पर आधारित है और इसका समर्थन करते हुए कक्षा एक व कक्षा दो के लिए नई पाठ्यपुस्तक पेश की जा रही है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा मूलभूत साक्षरता और शिक्षा के गुणात्मकता प्राप्त करने में राष्ट्रीय निपुण भारत मिशन में महत्वपूर्ण योगदान दें रही है। समावेशी शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए बहुभाषी भाषा को बढ़ावा देने के लिए भारत के लगभग 22 भाषाओं में 150 पाठ्य पुस्तकों को विकसित किया गया है, इन पुस्तकों का डिजिटल स्वरूप पीएम ई विद्या के माध्यम से सुलभ है, इसके अतिरिक्त सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत उभरते भारत के लिए पीएम श्री (स्कूल फॉर राइजिंग इंडिया) कोई स्थापित कर रही है। इस योजना के तहत समान, समावेशी और आनंदपूर्ण स्कूल परिवेश में उच्च गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान करने में अपने -अपने क्षेत्र के स्कूलों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी, जो बच्चों की विविध पृष्ठभूमि, बहुभाषी आवश्यकताओं एवं विभिन्न शैक्षिक क्षमताओं पर ध्यान देंगे। इस योजना की अवधि 2022- 2023 से 2026 -2027 तक प्रस्तावित है, इस योजना से लाभान्वित विद्यार्थियों की अनुमानित संख्या लगभग 2 लाख से अधिक है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति मिश्रित शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देते हुए समग्र शिक्षा को कौशल विकास योजना के साथ जोड़ रहे हैं। समग्र शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए भारत यूनाइटेड नेशन की E-9 योजना में शामिल हुआ है जिसका प्रमुख उद्देश्य डिजिटल लर्निंग को बढ़ावा और लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना है।, भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण भारत में निवास करती है । शिक्षा के तकनिकिकरण के कारण इन क्षेत्रों में शिक्षा की पहुंच अत्यंत सरल हो गई है। लचीलापन इस शिक्षा नीति की महत्वपूर्ण विशेषता है। विद्यार्थी अपने प्रतिभा एवं रुचि अनुसार पाठ्यक्रम चुन सकते हैं। नवनिर्मित करिकुलम फ्रेमवर्क में छात्रों को न केवल अपने मन के अनुकूल विषय से जुड़े पाठ्यक्रम चुनने का अधिकार है बल्कि ऐच्छिक विषय के साथ भी वह अन्य स्ट्रीम के कोर्स से पढ़ सकेंगे, अर्थात विज्ञान वाला छात्र मानवीकी से संगीत या भूगोल अथवा कॉमर्स या मार्केटिंग का कोर्स भी पढ़ सकते हैं। रुचि के विषय के विशेष ज्ञान के साथ ही बहु विषय का ज्ञान प्राप्त करने के पूर्ण अवसर प्रत्येक विद्यार्थी को उपलब्ध होंगे। किसी कारणवश पढ़ाई छूट जाए तो विद्यार्थी को प्रथम वर्ष में सर्टिफिकेट, द्वितीय वर्ष में डिप्लोमा एवं शेष पढ़ाई को पूरा करने का अवसर भी प्राप्त है। आत्मनिर्भर

भारत के सपने को ध्यान में रखते हुए शिक्षा नीति 2020 कौशल विकास, व्यवसायिकता और रोजगार परकता पर बल देती है। बहु भाषावाद भी शिक्षा नीति का प्रमुख बिंदु है संविधान के अनुच्छेद 8 में उल्लेखित सभी भारतीय भाषाओं ध्यान में रखते हुए त्रिभाषा सूत्र को अपनाया गया है। राष्ट्र की उन्नति में शोध एवं नवाचार की भूमिका को समझते हुए शिक्षा नीति ने इस पर बहुत जोर दिया है जिसको ध्यान में रखते हुए विभिन्न विश्वविद्यालय स्नातक स्तर पर ही इसे पाठ्यक्रम का हिस्सा बना रहे हैं। विद्यार्थियों का समग्र विकास मानवीय एवं नैतिक मूल्यों के अभाव में संभव नहीं पश्चिमी जीवन शैली, वास्तविकता के बजाय आभासी जिंदगी, शारीरिक खेलकूद की जगह गैजेट गेम्स और बढ़ते अकेलेपन आदि ने युवाओं को एक खतरनाक गिरफ्त में लेना शुरू कर दिया है, इसके दुष्परिणामों से आकार लेने वाले असंतुलित व्यक्तित्व समाज एवं देश के लिए अनउत्पादक और खतरनाक साबित होंगे। इस समस्या के समाधान के के लिए शिक्षा नीति में मानवीय एवं संवैधानिक मूल्यो, चरित्र निर्माण आदि पर बल दिया है। प्रमुख विशेषताओं के साथ शिक्षा नीति के मूर्त रूप लेने में एक बड़ी चुनौती है। जहां विभिन्न शैक्षणिक संस्थाएं असमंजस की स्थिति में है कि वह कैसे शिक्षा नीति को क्रियान्वित करें, वही शिक्षा मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य भागीदारियों के समग्र प्रयासों से इसके क्रियान्वयन पर प्रगति के संकेत स्पष्ट दिखते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय इस शिक्षा नीति क्रियान्वयन में एक पथ प्रदर्शक के रूप में सामने आया है, दिल्ली विश्वविद्यालय ने इस नीति को सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों ही स्तरों पर व्यवस्थित, संगठित और समग्रता से लागू किया है। इस विश्वविद्यालय में पहले चरण में इसका कार्यान्वयन स्नातक स्तर पर किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत विद्यार्थियों की वित्तीय सहायता के लिए विभिन्न प्रकार के स्कॉलरशिप प्रोग्राम भी चलाए जा रहे हैं। वैश्विक स्तर पर भारतीय शिक्षा प्रणाली में सहयोग हेतु भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों ने विदेशी विश्वविद्यालयों से सहयोग लिया है राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भारत के शैक्षिक क्षेत्र में विदेशी निवेश को सुनिश्चित किया है विभिन्न देश भारत में आईआईटी केंपस स्थापित करने के लिए कदम बढ़ा रहे हैं । अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बाधित करने के साथ ही शिक्षा क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है, जो समावेशी विकास पर बल देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति क्रियान्वयन में उत्पन्न चुनौतियां- भारत का शैक्षणिक इतिहास नीतियों से तो समृद्ध रहा है किंतु क्रियान्वयन में सफलता ही हाथ लगी है ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन में प्रमुख उल्लेखनीय चुनौतियां है-

भारत मे शिक्षा के लिए आवंटित फंड का पूरा इस्तेमाल न किया जाना, योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी को दूर करना, शिक्षा की अच्छी गुणवत्ता को बढ़ाना, विद्यार्थियों में ड्रॉप आउट की संख्या को कम करना, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा इत्यादि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समक्ष अन्य प्रमुख चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों से निपटने का प्रयास पहले भी किया जा चुका है लेकिन उपलब्धियां सराहनीय् नहीं रही। इस संबंध में कुछ सुझावों को लागू करने की आवश्यकता है, इस नीति के तहत शिक्षा अभियान को सफल बनाने के लिए सरकार, नागरिक, सामाजिक संस्थाओं, अभिभावकों, समुदाय के सदस्यों को अपने स्तर पर काम करना चाहिए। शैक्षिक संस्थानों, कार्यान्वयन एजेंसी और छात्रों को औद्योगिक क्षेत्र मे रोजगार के अवसर को बढ़ावा देने के लिए उद्योग संस्थानों को शिक्षण संस्थानों से जुड़ना चाहिए और शिक्षा को राजनीतिकरण से बचना चाहिए।

निष्कर्ष- इस पेपर के माध्यम से भारत के शिक्षा पद्धति में समयानुसार परिवर्तन की आवश्यकता एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए 3 वर्ष पश्चात हुए इसके क्रियान्वयन मैं उत्पन्न चुनौतियां एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन समय की मांग है प्रौद्योगिकी के बढ़ते उपयोग, वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार एवं रोजगार में बढ़ती विविधता इसके महत्वपूर्ण पहलू है। आज के शिक्षा प्रणाली के साथ सबसे बड़ा मुद्दा यह है कि 30 - 40 छात्रों की एक कक्षा में सीखने की विभिन्न क्षमता रखने वाले छात्र है और शिक्षक सिर्फ एक। ऐसे में यह समस्या एक भारी नुकसान की ओर इशारा करती है । युवाओं के बीच कौशल की कमी देश में बेरोजगारी की उच्च दर के कारणों में से एक है, जब हम भविष्य की बात सोचते हैं कि भारत में बढ़ती युवा आबादी के लिए नौकरियां सृजित की जाएगी तो सब कुछ ध्यान में रखते हुए हमें शिक्षा को प्राथमिकता देनी होगी और साथ ही

आजीविका के लिए विभिन्न रोजगार को प्राप्त करने में सक्षम बनाना है। डिजिटल तकनीकी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है ।यह प्रौद्योगिकि कंपनियों को संचालित करने में सक्षम है और उत्पादकता बढ़ाने, नवाचार करने, नए उत्पादों के निर्माण के लिए तत्पर है अतः इन्हें इस कार्य हेतु कुशल व्यक्ति की आवश्यकता होती है। वर्तमान श्रम बाजारों में कौशल की मांग बढ़ रही है। रचनात्मक, आलोचनात्मक सोच, सहयोग, संचार, समस्या समाधान आदि 21वीं सदी के सबसे ज्यादा चर्चित कौशल है अतः पाठ्यक्रम मैं उनके अनुरूप बदलाव छात्रों का मार्गदर्शन करेंगे। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 - 21वीं सदीं के आवश्यकताओं के अनुरूप है, आवश्यकता है तो बस उचित क्रियान्वयन एवं वित्तीय सहायता की। दिल्ली विश्वविद्यालय की तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रतिबद्धता और स्थिरता के साथ लागू किया जाना एक सराहनीय कदम है ।

संदर्भ-

1. vij, sandip (2020), transforming education, transforming india, retrieved from http//:www.resrearchgate.com

2. malik,nikita.sigh,garish.malik,preeti.(july2021). effort towards transforming india's education landscape, retrievedfromhttp//:www.researchgate.com

3.vadudevan,rupa. (oct,13,2021)transformation of the indian education system-the national education policy 2020.retrieved from http//:www.linden.com

4.national education policy 2020:the new transformation in the education system(sep,9,2022),retrieved from times of India.

5.technology has brought turning point in education system will narrow equity gap,retrieved from http//: www.outlook.com

6.inclusive education :a comprehensive guide for teachers of special need children, retrieved from India today.

7.3year of NEP:pm modi uneveils new initiatives for inclusive education retrieved from India today.

8.bansal,shruri. Adapting to the digital age:trends in learning and upskilling retrieved from India today.

9.singai,c,kumaraswamy,T.R.and chandra,A.(2020)reforming higher education in india:in pursuit of excellence. International confrence on higher education advances,(HEAd'20)p.p.1209-1213,valencia spain.

10.http//:www.livemint.com

11.http//:www.clearias.com.

12.http//:www.drishtiias.com.

13.http//:www.electsonline.com.

14.http//:www.collegevidya.com

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मानव समाज : अवसर और चुनौतियां

डॉ.अनीता सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
सुधाकर महिला पीजी कॉलेज वाराणसी

सारांश

इस शोध-पत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) के विकास और इसके मानवीय समाज पर प्रभाव का गहन अध्ययन किया गया है। इसमें बताया गया है कि कैसे Ai ने स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, कृषि और सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में परिवर्तन लाए हैं, Ai ने जहां कार्य क्षमता स्वचालन और डाटा प्रबंध में क्रांति लाई है, वहीं इसमें जुड़े नैतिक सामाजिक और आर्थिक जोखिम भी उभर कर सामने आए हैं। यह शोध तकनीकी विकास के सामाजिक, राजनीति और सांस्कृतिक आयामों के बारे में बताता है कि किस प्रकार इस तकनीक का उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर इससे उत्पन्न नैतिक सामाजिक और आर्थिक चुनौतियां क्या है। यह शोध वर्तमान और भविष्य में Ai की भूमिका की पड़ताल करता है और यह भी बताता है कि किस प्रकार से समाज कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक सहयोगी के रूप में अपना कर संतुलित विकास कर सकता है।

कुंजी शब्द-कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव समाज,तकनीकी विकास, नैतिकता डेटा सुरक्षा नीतिगत ढांचा

प्रस्तावना

21वीं सदी तकनीकी क्रांति की सदी मानी जाती है और इनमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में उभरा है कृत्रिम बुद्धिमत्ता का तात्पर्य उन तकनीकों से है जो मानव मस्तिष्क जैसी सोचने समझने निर्णय लेने और सीखने की क्षमता मशीनों को प्रदान करती है। आज के समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग न केवल मशीनों और रोबोटिक तक सीमित है बल्कि यह मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रहा है।

भारत समेत पूरी दुनिया में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है जहां एक और यह अवसरों के नए द्वार खोल रहा है, वहीं दूसरी ओर यह समाज के लिए अनेक प्रकार की चुनौतियां भी प्रस्तुत कर रहा है जैसे बेरोजगारी नैतिक दुविधाएं और सामाजिक और असमानता लेकिन जहां एक ओर कृत्रिम बुद्धिमत्ता असीम संभावनाओं के द्वारा खोलता है, वहीं दूसरे ओर यह कई नैतिक, सामाजिक और आर्थिक चुनौतियां भी प्रस्तुत करता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता अब केवल विज्ञान कथाओं तक सीमित नहीं रहा बल्कि यह हमारे रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन चुका है। स्मार्टफोन बॉयस असिस्टेंट से लेकर सोशल मीडिया पर सुझाव है बैंकिंग क्षेत्र में धोखाधड़ी की पहचान से लेकर अस्पतालों में स्वचालित निदान तक कृत्रिम बुद्धिमत्ता हर जगह मौजूद है। यह तकनीक समाज में न केवल सुविधाएं बढ़ा रही है बल्कि उसके मूल ढांचे को भी परिवर्तित कर रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की विशेषता यह है कि अनुभव से सीख सकता है और अपने प्रदर्शन को बेहतर बना सकते हैं। यही इसकी सबसे बड़ी ताकत है और सबसे बड़ा खतरा भी। जब मशीन अपना

निर्णय लेने स्वयं लगेंगी। तब उनके निर्णय की जिम्मेदारी किसकी होगी?Ai से जुड़ी नैतिक चुनौतियां भी अत्यंत गंभीर है। अगर कोई स्वचालित प्रणाली किसी निर्दोष व्यक्ति को अपराधी घोषित कर दे या अगर ड्राइवरलेस कार किसी दुर्घटना के कारण बने- तो उसकी जवाब दे ही किसकी होगी? क्या ऐसी मशीनों के लिए कोई कानूनी ढांचा तैयार है? क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता को अधिकार और उत्तरदायित्व देने का कोई आधार है? इन प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है ।

भारत जैसे विकासशील देश के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक दो धारी तलवार की तरह है। एक ओर यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य शिक्षा और कृषि जैसी सेवाओं को बेहतर बनाने में सहायक हो सकता है, वहीं दूसरी ओर इसकी पहुंच केवल शहरी और उच्च वर्ग तक सीमित रह गई तो डिजिटल डिवाइड को और अधिक बढ़ा सकता है भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस मिशन' की शुरुआत की है, जिसका उद्देश्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता को समावेशी और उत्तरदाई बनाना है।

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता की परिभाषा और विकास

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कंप्यूटर विज्ञान की वह शाखा है जो ऐसे सिस्टम विकसित करती है जो इंसानों की तरह सोच सके निर्णय ले सके और कार्य कर सके। इसका आरंभ 1956 में हुआ लेकिन पिछले एक दशक में मशीन लर्निंग डीप लर्निंग और डाटा विशेषण की प्रगति में इसे नयी ऊंचाइयों पर पहुंचाया।

2. कृत्रिम बुद्धिमत्ता से प्राप्त होने वाले प्रमुख

2.1 स्वास्थ्य क्षेत्र में क्रांति

कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा बीमारी का पूर्वानुमान निदान और उपचार योजनाएं बनाना संभव हुआ है। IBM watson जैसे प्लेटफार्म कैंसर जैसी जटिल बीमारियों के इलाज में मददगार साबित हो रहे हैं।

2.2 शिक्षा का व्यक्तीकरण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शैक्षिक ऐप्स जैसे Byjus chatGPT आदि विद्यार्थियों को उनकी गति और समझ के अनुसार सामग्री प्रदान करती है।

2.3 कृषि में वृद्धि

फसल का पूर्वानुमान, सिंचाई की योजना, कीट नियंत्रण इत्यादि कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से संभव हो सका है । precision Farming में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका उल्लेखनीय है।

2.4 उद्योग और विनिर्माण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित रोबोटिक प्रणाली कारखाने में दक्षता बढ़ती हैं और लागत को घटाती है। यह 'Industry 4.0' का मुख्य स्तंभ बन चुका है।

2.5 सार्वजनिक सुरक्षा और न्याय

सीसीटीवी कैमरे में जुड़ी फेस रिकॉग्निशन तकनीकी, अपराध की भविष्यवाणी करने वाले सॉफ्टवेयर और न्यायालयों में केस विश्लेषण जैसे क्षेत्र कृत्रिम बुद्धिमत्ता में सशक्त हो रहे हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का नकारात्मक प्रभाव

नौकरी विस्थापन और आर्थिक असमानता कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित स्वचालन से नौकरियों में भारी कमी आ सकती है।

पूर्वाग्रह और भेदभाव कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम डाटा पर प्रशिक्षित होते हैं।

गोपनीयता संबंधित चिंताएं कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियों को प्रभावित ढंग से कार्य करने के लिए अक्सर भारी मात्रा में डेटा कि आवश्यकता होती है। गोपनीयता और सुरक्षा को लेकर चिंताएं पैदा होती हैं। व्यक्तिगत डेटा के दुरुपयोग की संभावना एक गंभीर चिंता का विषय है।

नैतिक दुविधाएं कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास और परियोजना।

सामाजिक अलगाव और आलोचनात्मक सोच में कमी

दुर्भावनापुण उपयोग

मानवीय जुड़ाव का नुकसान

नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए महत्वपूर्ण बातें

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने नैतिक विकास और परियोजना को बढ़ावा देना

शिक्षा और पुनः प्रशिक्षण कार्यक्रमों में निवेश करें

मजबूत नियमन और सुरक्षा उपाय विकसित करें

जन जागरूकता और संवाद को बढ़ावा देना

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक पक्ष

- **पारदर्शिता**
  कृत्रिम बुद्धिमत्ता निर्णय कैसे ले रहा है, यह उपयोगकर्ता को समझ में आना चाहिए।
- **पक्षपात और निष्पक्षता**
  AI सिस्टम को जाति,लिंग,धर्म या वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए।
- **निजता**
  AI सिस्टम को उपयोगकर्ताओं की व्यक्तिगत जानकारी को सुरक्षित रखना चाहिए।
- **उत्तरदायित्व**
  जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता कोई गलती करता है तो उसकी जिम्मेदारी किसकी होगी- यह तय होना चाहिए।
- **मानव गरिमा**
  कृत्रिम बुद्धिमत्ता को ऐसा नहीं होना चाहिए जो इंसानों की गरिमा को चोट पहुंचाए।
- **नौकरी पर प्रभाव**
  कृत्रिम बुद्धिमत्ता से नौकरी छिनने की संभावना है, जिससे नैतिक संपर्क उत्पन्न हो सकता है।
- **मानव नियंत्रण**
  अंतिम निर्णय में मनुष्य की भूमिका बनी रहनी चाहिए।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कानूनी पक्ष

- **डेटा सुरक्षा कानून**
  GDPR यूरोप जैसे कानून डेटा संग्रहण और उपयोग पर नियंत्रण रखते हैं।
- **बौद्धिक संपदा अधिकार**
  कृत्रिम बुद्धिमत्ता बनाए गए कंटेंट (जैसे लेख चित्र) का मालिक कौन होगा।
- **उत्तरदायित्व कानून**
  अगर कृत्रिम बुद्धिमत्ता से दुर्घटना होती है (जैसे सेल्फ ड्राइविंग कार) तो जिम्मेदार कौन होगा?
- **नियमन की आवश्यकता**

सरकारों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर नियंत्रण के लिए विशेष कानून बनाने की आवश्यकता है।

- **नौकरी से संबंधित कानून**

  कृत्रिम बुद्धिमत्ता से रोजगार में कटौती के कारण श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानून की जरूरत

समाज पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव

- स्वास्थ्य सेवा में सुधार आई से जल्दी और सटीक डायग्नोसिस संभव हो सकता है
- शिक्षा में व्यक्तिगत मार्गदर्शन छात्र के स्तर के अनुसार सीखने की सुविधा
- व्यवसाय में उत्पादकता में वृद्धि तेजी से कृषि निष्पादन और लागत में कमी।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का भारतीय सुरक्षा प्रणाली पर प्रभाव

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आज के समय में एक क्रांतिकारी तकनीकी बन चुकी है जो लोग जो लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित कर रही है विशेष रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली को भारत जैसे विशाल और विविधता से भरपूर देश में जहां सुरक्षा चुनौतियां अनेक है चाहे वह सीमाएं की रक्षा हो साइबर सुरक्षा हो आतंकी गतिविधियों की निगरानी या आतंकी सुरक्षा एक शक्तिशाली उपकरण बनकर उभर रहा है।

1. सीमाओं के निगरानी और नियंत्रण ड्रोन व निगरानी उपकरणों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग: भारतीय सीमा सुरक्षा बल और रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन कृत्रिम बुद्धिमत्ता सक्षम ड्रोन कैमरा और सेंसेर्स का उपयोग कर रहे हैं जिसमें सीमाओं पर घुसपैठ रोकने में सहायक बनते हैं।
2. साइबर सुरक्षा एआई आधारित साइबर हमले की पहचान: भारत में बढ़ते साइबर हमले की बीच कृत्रिम बुद्धिमत्ता साइबर थ्रेट्स की पहचान विश्लेषण और प्रतिक्रिया देने में तेजी लाता है डाटा एनालिटिक्स व फीशिंग अटैक पहचान कृत्रिम बुद्धिमत्ता बड़े डाटा को स्कैन करके असामान्य गतिविधियों को तुरंत पकड़ सकता है।
3. आतंकवाद और अपराध नियंत्रण: चेहरे की पहचान तकनीकी(Facial recognition technology): अपराधियों आतंकवादियों और संदिग्धों की पहचान में उपयोगी सीसीटीवी फुटेज विश्लेषण कुछ मिनट में कृत्रिम बुद्धिमत्ता कर सकता है, जो समय और संसाधन दोनों बचाता है।
4. डिफेंस और आर्म्ड फोर्सज में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग कृत्रिम बुद्धिमत्ता सक्षम हथियार प्रणाली: भारत कृत्रिम बुद्धिमत्ता में लेस युद्ध टैंक मिसाइल और डोन विकसित कर रहा है
5. इंटेलिजेंस और राष्ट्रीय सुरक्षा एजेंसियां कृत्रिम RAW,IB,NIA मे बुद्धिमत्ता का उपयोग:
   खुफिया जानकारी को प्रोसेस करने संदिग्ध नेटवर्क का विश्लेषण करने और आतंकवादी गतिविधियों की पहचान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता मदद करता है।

शिक्षा में AI

शिक्षा में शिक्षकों द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के विभिन्न अवसर हैं

- पाठ योजनाओं और अन्य गतिविधियों के लिए विचारों का मसौदा तैयार करना।
- विभिन्न आवश्यकताओं वाले छात्रों के लिए अनुकूलित शिक्षक जानकारी तैयार करना
- दोहराए जाने वाले प्रशासनिक कार्यों को स्वचालित करना
- अंकन सहित कार्यभार काम करना

कृत्रिम बुद्धिमत्ता में शिक्षार्थियों के लिए विभिन्न अवसर

विचारों को तैयार करना जैसे निबंध संरचनाएं बनाना

भाषा संबंधी बाधाओं में सहायता करना

फीडबैक सहित सुलभ और किफायती शिक्षित सहायता प्रदान करना

आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता जिज्ञासा और सहयोग कौशल विकसित करना।

हालांकि शिक्षकों और शिक्षार्थियों दोनों के पास अपने काम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करने के लिए आवश्यक कौशल समर्थन और तकनीक की कमी हो सकती है

एआई टूल्स की विभिन्न सीमाएं हैं, जैसे कि कुछ मॉडल अनुपयुक्त राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से पक्षपाती या तथ्यात्मक रूप से गलत जानकारी उत्पन्न करने के लिए उत्तरदाई है। कुछ हित धारकों ने चिंता व्यक्त की है कि मूल्यांकन को निहित करने या मॉडरेट करने के लिए उपयोग किए जाने वाले पक्षपाती एल्गोरिदम अनुचित परिणाम दे सकते हैं। 8-9 कृत्रिम बुद्धिमत्ता टूल्स ऐसी सामग्री का उपयोग कर सकते हैं जिसका उल्लेख नहीं किया जा सकता है और इसमें कॉपीराइट उल्लंघन जैसे जोखिम बढ़ सकते हैं शिक्षा संस्थान छात्रों के बारे में बड़ी मांग में संवेदनशील डाटा एकत्र कर सकते हैं जैसे की शैक्षणिक रिकार्ड और कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम को कार्यों में सहायता के लिए इन जानकारी तक पहुंचाने की आवश्यकता हो सकती है। [10][11] इससे डेटा उल्लंघनों को जोखिम होता है जिससे संभावित रूप से व्यक्तिगत जानकारी उजागर हो सकती है या निगरानी सहित उत्तर का अनुचित उपयोग हो सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों का उपयोग करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे तक अलग-अलग पहुंच जैसे की इंटरनेट या कंप्यूटर जैसे जिसे डिजिटल विभाजन के रूप में जाना जाता है के परिणाम स्वरुप शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लाभों तक अलग-अलग पहुंच हो सकती है।

बच्चों और युवाओं पर प्रभाव

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग कैसे किया जाता है इसके आधार पर कुछ शिक्षाविदों ने बच्चों और युवाओं द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता का अवसर उपयोग करने के बारे में चिंता जताई है।

- युवा लोगों का शिक्षकों और सहपाठियों के साथ कम संपर्क होना।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता युवाओं को अनुचित या हानिकारक सामग्री के संपर्क में ला सकता है।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता एल्गोरिदम मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं जैसी व्यसन, अकेलापन, अलगाव और संबंधों की कमी को बढ़ा रहे हैं।

कुछ शिक्षाविद शिक्षा में जेनरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के सामाजिक तरीकों पर शोध कर रहे हैं जो शिक्षार्थियों को लक्ष्य साझा करने तक एक साथ कार्य करने और आपसी समझ तक पहुंचाने के लिए बातचीत करने में मदद कर रहे हैं। उदाहरण में जेनरेटिव कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा किसी विचार को व्यक्त करने की वैकल्पिक तरीके उत्पन्न करना या समूह के साथ शोध करने और समस्याओं को हल करने में मदद करना शामिल है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बारे में शिक्षा लोगों को तेजी से डिजिटल होते समाज में कार्य बल और समकालीन जीवन के लिए आवश्यक कौशल प्राप्त करने में भी सहायता कर सकती है।(7) यूके के कार्यबल (पी.एन697) में कृत्रिम बुद्धिमत्ता में विशेष कौशल की मांग बढ़ रही है और राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय कार्यालय के 2023 के आंकड़े से पता चलता है कि यूके के 6 संगठनों में से लगभग एक कम से कम एक कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक का उपयोग कर रहा हैं।

कुछ शिक्षाविदों और शिक्षा प्रदाताओं ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि कैसे छोटे बच्चों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल साक्षरता शिक्षा उन्हें सूचित डिजिटल नागरिक बनने ऑनलाइन जानकारी और संसाधनों का जिम्मेदारियां से उपयोग करने और रचनात्मक और समस्या सुलझाने के कौशल को बढ़ावा मदद कर सकती है। 24-25 कुछ शिक्षाविदों ने बताया कि कैसे कृत्रिम

बुद्धिमत्ता के बारे में प्रारंभिक शिक्षा डिजिटल डिवाइड से निपट सकती है जिस में गरीबी या बुनियादी ताचे ढाचे की कमी जैसे कारकों के कारण कई लोग तेजी से डिजिटल रूप से बहिष्कृत हो रहे हैं।

बच्चों और परिवारों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लाभ

यह सीखने का एक मूल्यवान उपकरण है कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग छोटे बच्चे और किशोर की व्यक्तिगत जरूरत के अनुसार पाठ और सीखने के अनुभव को तैयार करने के लिए किया जा सकता है यह शिक्षकों और अभिभावकों को विकास के विभिन्न चरणों में सभी और क्षमताओं वाले बच्चों के लिए सीखने को समृद्ध बनाने के तरीके में मदद करता है

यह रचनात्मकता को बढ़ावा दे सकता है हमें एक दृश्य दुनिया में रहते हैं इसलिए बच्चों को तस्वीर चित्रों ग्राफ आदि के माध्यम अपने विचारों को व्यक्त करने के तरीकों की आवश्यकता होती है कृत्रिम बुद्धिमत्ता न केवल नबोधित कलाकारों के लिए बल्कि उन बच्चों के लिए भी उपयोगी है जो डाटा डिजिटल चार्ट सरल कार्टून और अन्य बनाना चाहते हैं।

यह बच्चों को नए तरीके से प्रेरित और व्यस्त कर सकता है कृत्रिम बुद्धिमत्ता बच्चों के लिए इंटरएक्टिव और मजेदार हो सकता है जिसमें उन्हें अपनी दुनिया का आनंद लेने और उसे तलाशने के नए तरीके मिल सकते हैं कुछ लोगों के लिए यह जीवन बदलने वाला अनुभव हो सकता है जो नए रास्ते खोलना है स्कूल में अनेक प्रदर्शन और बेहतर बनाता है और उनके वयस्क जीवन की चुनौतियों के लिए तैयार करने में मदद करता है।

दिव्यांगजनों के लिए सहायक

नेत्रहीनों के लिए वॉइस असिस्टेंट श्रवण बंधितों के लिए रियल टाइम सब टाइट लिंग जैसे तकनीक ने उन्हें आत्मनिर्भर बनाया है

कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जुड़ी चुनौतियों

बेरोजगारी और असमानता: ऑटोमेशन में मजदूरी कलर्स कॉल सेंटर कर्मचारियों की नौकरियों के खतरे में है गरीबी और तकनीकी रूप से पिछड़े समाज पीछे छूट सकते हैं जिसमें जिससे डिजिटल डिवाइस बढ़ेगा

समाधान और सुझाव: नितिन निर्माण सरकारों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक और सामाजिक उपयोग के लिए स्पष्ट नीति बननी चाहिए शिक्षा और पुनः शिक्षक मजदूरों को नई तकनीकी स्किल सिखाई जानी चाहिए ताकि वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता युक्त भविष्य के लिए तैयार होसके

डेटा सुरक्षा कानून: सख्त साइबर सुरक्षा और निजात संरक्षण कानूनी जरूरी है

समावेशी कृत्रिम बुद्धिमत्ता विकास: कृत्रिम बुद्धिमत्ता विकास में सभी वर्गों और समुदायों की भागीदारी होनी चाहिए ताकि कोई पीछे नाछूट

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसा उपकरण है जो मानव समाज को नए शिखरों तक पहुंचा सकता है बसे हम इसका उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से करें यह समाज को अधिक कुशल सुरक्षित और समृद्ध बना सकता है लेकिन यदि इसकी दिशा नियंत्रित नहीं की गई तो यह सामाजिक असंतुलन बेरोजगारी अनैतिक और नैतिक संकट उत्पन्न हो सकता है अतः यह आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानव केंद्रित दृष्टिकोण से किया जाए जिससे यह मानवता के लिए वरदान साबित हो सके।

संदर्भ सूची

1.NITI Aayog– National Strategy for Artificial Intelligence

2. World Economic Forum Reports – AI and Jobs

3. UNESCO Report on AI Ethics

4. The Hindu, Indian Express, Economic Times (2023-2025 लेख)

5. OECD Report: Artificial Intelligence and Society

6. Stanford AI Index Report

7. Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY), Govt. of India

8. "AI Superpowers" – Kai-Fu Lee

9. "Weapons of Math Destruction" – Cathy O'Neil

10. PRS Legislative Research, India

Impact of Social Media on Women's Empowerment: A Sociological Analysis (With Special Reference to Ranchi Municipal Corporation)

Sippy Kumari
Research Scholar
University Department of Sociology,
Ranchi University, Ranchi

Abstract

The present study examines the role of social media in promoting women's empowerment within the Ranchi Municipal Corporation, focusing on educational, economic, social, political, and safety-related dimensions. Social media has become a powerful platform through which women can access knowledge, develop skills, engage in economic activities, build social networks, and become aware of their rights and civic responsibilities. It serves as a medium for communication, learning, business promotion, awareness generation, and social interaction, allowing women to expand their horizons and challenge traditional gender norms. The study highlights that social media significantly contributes to educational empowerment, enabling women to acquire knowledge, enhance skills, and participate in learning opportunities. Social empowerment is achieved through improved networking, increased self-confidence, and the ability to confront stereotypes. Economic empowerment is facilitated as women use social media for business promotion, exploring employment opportunities, and connecting with wider markets. Women also demonstrate growing awareness of civic and political rights, and use digital platforms to access safety-related information and report harassment, thereby strengthening personal security. The study underscores that the impact of social media varies across age groups, education levels, and socio-economic backgrounds, indicating the need for targeted measures to ensure equitable access and benefits. Social media emerges as a transformative tool for empowering women, enhancing their participation in various spheres of life, and fostering overall social development. Strategic initiatives, digital literacy programs, and supportive measures can further amplify its potential, promoting inclusive and sustainable empowerment for women in the urban context of Ranchi Municipal Corporation.

Keywords: *Social Media, Women Empowerment, Digital Literacy, Economic Participation, Awareness*

Introduction

Women empowerment, from a sociological perspective, is a multidimensional process that enables women to gain control over their own lives, participate fully in societal decision making, and access equal opportunities in all spheres of life social, economic, political, and cultural[i]. It involves challenging existing patriarchal norms, dismantling structural inequalities, and creating an environment in which women can exercise autonomy and agency. Sociologists emphasize that empowerment is not merely the provision of resources but also the ability to make independent choices, influence policies, and transform one's socio-economic status. Empowerment encompasses both individual transformation such as enhanced self-esteem, knowledge, and skills and collective transformation, where women's groups mobilize for shared goals. In modern societies, empowerment is also linked to access to information, participation in governance, and representation in leadership. The lens of social stratification further reveals that empowerment is influenced by factors like caste, class, religion, and geography, which determine the pace and scope of change in different communities.

The digital revolution has transformed communication patterns, and social media has emerged as one of the most influential platforms for social change. Platforms like Facebook, WhatsApp, Instagram, YouTube, and X (formerly Twitter) are no longer limited to personal networking; they serve as spaces for awareness generation, advocacy, political mobilization, and economic opportunities. From a sociological angle, social media reduces information barriers, facilitates horizontal communication, and creates virtual communities that can transcend geographic and cultural limitations. For women, especially in contexts where mobility is restricted, social media offers a relatively accessible and cost-effective medium to voice concerns, share experiences, and access support networks. Globally, social media movements like #MeToo and #TimesUp have demonstrated its power in amplifying women's voices against harassment and inequality. In India, platforms have been used for campaigns on women's safety, health awareness, education, and entrepreneurship. Thus, social media functions both as an empowerment enabler and as a catalyst for challenging deep-seated gender norms.

Ranchi, the capital of Jharkhand, is an urban center marked by a mix of tribal and non-tribal populations, rapid urbanization, and growing internet penetration. The Ranchi Municipal Corporation (RMC) governs diverse wards that include both developed and underdeveloped areas, providing an ideal microcosm for studying varied socio-economic realities. Women in Ranchi face a dual context: traditional gender norms influenced by cultural and tribal practices, and the modernizing influence of education, urban employment, and technology. Over the past decade, smartphone adoption and affordable internet access have significantly increased in the city, opening avenues for women to engage with social media in new ways. Yet, digital literacy levels, socio-economic disparities, and cultural factors still influence how women use and benefit from these platforms. Studying RMC provides an opportunity to analyze the intersection of technology, gender, and urban governance within a heterogeneous social environment.

Gaps in Existing Literature

Although there is a growing body of research on women empowerment and social media, several gaps persist. First, much of the existing literature focuses on global or national-level trends without examining micro-level, context-specific dynamics. Second, studies in the Indian context often center on metropolitan cities, leaving smaller capitals like Ranchi underexplored. Third, while secondary data highlights social media penetration rates, there is limited empirical evidence on how such usage translates into tangible empowerment outcomes, such as increased political participation, economic independence, or improved self-efficacy. Fourth, very few studies integrate both primary and secondary data to offer a comprehensive sociological analysis that accounts for local cultural, economic, and infrastructural realities. Addressing these gaps is essential for developing targeted interventions that enhance the empowering potential of social media.

Objectives of the Study

1. To study how women in Ranchi Municipal Corporation use social media in their daily lives.
2. To find out the impact of social media on different aspects of women empowerment.

Research Questions

1. In what ways do women in Ranchi Municipal Corporation use social media?
2. How does social media influence the empowerment of these women?

Review of Literature

For the present study in review of the literature, three theoretical perspectives are particularly relevant Feminist Theory, Modernization Theory, and Empowerment Theory. Feminist Theory examines the structural inequalities and patriarchal barriers that women face and emphasizes agency and equality. Modernization Theory highlights how technological change, including social media, transforms traditional societies by expanding opportunities. Empowerment Theory focuses on building individual and collective capacities for decision-making and social influence. Globally, studies have shown that social media enables women to express themselves, participate in activism, and access economic opportunities across various socio-cultural contexts. In India, research indicates that digital platforms support women's entrepreneurship, political participation, and awareness creation, though challenges like the digital divide and online harassment remain. Jharkhand-specific studies, though limited, reveal that tribal women often use WhatsApp and community radio for awareness, while urban women in Ranchi are engaging with Facebook, Instagram, and YouTube for business, advocacy, and networking.

A.Rajina Banu (2020)[ii], As per the author, Indian feminism is understood as a multifaceted movement that has evolved in response to the country's unique socio-cultural and political realities. The work highlights that, unlike Western feminism which often focuses primarily on gender-based inequalities in a relatively uniform socio-economic setting, Indian feminism must address the intersecting influences of caste, class, religion, region, and ethnicity. The author explains that the theoretical foundation of Indian feminism is deeply rooted in both

the historical struggles against colonial patriarchy and the ongoing battles against indigenous patriarchal structures. It emphasizes that empowerment in the Indian context cannot be limited to legal rights or economic independence alone; rather, it must include cultural autonomy, access to education, political participation, and the dismantling of social hierarchies. The text further explores how feminist practices in India have adapted to changing times, incorporating both grassroots activism and digital advocacy. The author points out that social media platforms have opened new spaces for women's voices, enabling them to challenge stereotypes, mobilize communities, and demand policy changes. However, the work also cautions that online platforms can reproduce offline inequalities, as access to technology and digital literacy remains uneven across regions and socio-economic groups.

Sushama Sahay (1998)[iii], As per the author, women's empowerment is a key goal of democratic and participatory movements, requiring not just rights but active involvement in political, social, and economic life. The work provides a conceptual framework for empowerment and outlines strategies such as grassroots activism, self-help groups, capacity building, and policy advocacy. It stresses the value of community-based initiatives, especially in rural areas, and highlights that empowerment is both an individual and collective process involving skill development and societal change. This perspective is relevant to the present study, as it connects traditional strategies with modern tools like social media for empowering women in contexts such as Ranchi.

Hridai Ram Yadav (2015)[iv], In the opinion of the author, women's empowerment must be understood in both its historical and contemporary contexts, particularly at the grassroots level such as village panchayats. The study traces the position of women from the Vedic period through the pre-independence and post-independence eras, highlighting the gradual yet uneven progress in their social, economic, and political status. It critically examines the National Policy for the Empowerment of Women, evaluating its objectives, implementation mechanisms, and effectiveness in addressing gender disparities. The analysis also encompasses various constitutional provisions, laws, and legislations aimed at preventing crimes against women and ensuring their safety and dignity. The author emphasizes that the real measure of empowerment lies in its practical application at the local level, where women can participate in decision-making, access resources, and influence community development. By examining the functioning of panchayats in Amethi, the study sheds light on how national policies and legal measures translate or fail to translate into tangible changes in women's lives. The work underscores the necessity of bridging the gap between policy frameworks and ground realities, stressing that empowerment must be both a legal entitlement and a lived experience.

Kasturi Bhadra Ray (2016)[v], In the opinion of the author, the migration of women following the Partition of India and later after the creation of Bangladesh in 1971 brought unique challenges that reshaped their social, economic, and personal realities. Many of these women migrated either with their families or alone, often under conditions of compulsion, and were forced to adapt to the hardships of refugee life. Their struggle for survival in unfamiliar and often hostile environments led to profound changes in their attitudes, behaviour, and outlook on life.

The author observes that the status of these women migrants was precarious, marked by uncertainty both at home and in the workplace. Based on primary surveys conducted in the migrant-dense districts of Nadia and Murshidabad in West Bengal and Kendrapara in Orissa, the study presents a detailed picture of their socio-economic conditions between 1971 and 2001. It explores the ways in which uprooting from ancestral land, the erosion of their native homeland, and the constant struggle for economic survival reshaped their social standing and altered their role within the family framework. The work further situates these women within the larger framework of Indian society, highlighting the interplay between gender, migration, and marginalization. By providing empirical insights into the lived experiences of women migrants, the study offers valuable perspectives for disciplines such as economics, demography, and women's studies.

Manju Kak, Prajnashree Tripathy, Manjula Lal (2007)[vi], In the opinion of the authors, the media plays a crucial role in shaping public perception and influencing the developmental trajectory of women, yet its potential remains underutilized in many parts of India. The study, conducted across the states of Uttaranchal, Chhattisgarh, Jammu & Kashmir, Uttar Pradesh, and Jharkhand, examines how the press addresses or overlooks the developmental needs of women. The analysis reveals that while there is sporadic coverage of women-related issues, much of it remains event-driven rather than focusing on deeper structural challenges such as education, health, economic independence, and political participation. The authors argue that the press has the power to serve as a platform for amplifying women's voices, advocating policy changes, and creating awareness about gender inequalities. However, its tendency to prioritize sensational stories over substantive developmental issues often limits its role as a catalyst for empowerment. The study highlights cases where media intervention brought attention to local problems, mobilized communities, and even influenced government action, showing its potential as an agent of social change when used responsibly. By situating the role of media within the broader context of gender and development, the work emphasizes the need for consistent, informed, and sensitive reporting that reflects women's real challenges and aspirations. For the present study, this perspective is particularly relevant as it aligns with the exploration of how contemporary media platforms especially social media can fill the gaps left by traditional press in addressing women's developmental needs in regions like Ranchi, thereby enhancing their empowerment through greater visibility and engagement.

A.P. Chaaru Latha, S. Emimah (2023)[vii], The author explores the integral connection between women's empowerment and the broader process of nation-building, framing empowerment as both a social necessity and a developmental imperative. In this context, social media emerges as a powerful catalyst, reshaping how women access opportunities, express their voices, and participate in public life. The work illustrates how digital platforms enable women to break through traditional barriers geographical, cultural, and institutional by creating spaces for learning, networking, advocacy, and collaboration. Through this lens, social media is presented not merely as a communication tool but as an engine of transformation, allowing women to engage in entrepreneurial ventures, gain educational resources, join political discussions, and

mobilize for collective action. The author highlights cases where online activism and knowledge-sharing have led to tangible social and economic advancements, thus reinforcing the idea that digital inclusion is central to inclusive development. However, the analysis also acknowledges the challenges that accompany this digital shift, such as the prevalence of online harassment, the spread of misinformation, and the persistence of the digital divide. These issues, if left unaddressed, risk undermining the empowering potential of social media. The author calls for targeted interventions, including policy support, digital literacy programs, and safe online spaces, to ensure that the benefits reach women across all social strata. For the present study, this viewpoint provides a timely framework for examining how social media functions as a driver of empowerment within the urban and semi-urban context of Ranchi Municipal Corporation, linking local realities to national aspirations.

Research Methodology

For the present study research methodology has been designed to provide both a comprehensive and in-depth understanding of the subject. The approach combines descriptive and analytical elements, enabling the study not only to describe existing patterns and trends but also to analyze underlying factors influencing the role of social media in women's empowerment. The descriptive aspect focuses on presenting factual data collected from the field, while the analytical component examines the relationships, causes, and implications of these findings within the sociological framework. The study draws upon both primary and secondary data to ensure a well-rounded analysis. The primary data has been collected through fieldwork involving direct interaction with respondents. This includes structured interview schedules, focus group discussions (FGDs), and key informant interviews. The interview schedule was carefully designed to capture socio-demographic details, access to and usage of social media, perceived benefits, challenges faced, and its impact on various dimensions of empowerment such as economic participation, social awareness, and decision-making power. FGDs were conducted with groups of women from different socio-economic backgrounds to elicit diverse perspectives and shared experiences. Key informant interviews were held with representatives from NGOs, social activists, and local leaders to gain expert insights into the subject matter. The secondary data was collected from credible sources, including the Census of India, reports from the Government of Jharkhand, publications from NGOs working in the field of women's empowerment, and relevant academic research articles. These sources helped contextualize the findings from the primary survey and offered comparative viewpoints with existing literature.

The research focuses on the jurisdiction of Ranchi Municipal Corporation (RMC), encompassing the city's urban core as well as its adjoining peri-urban wards. Ranchi, as the capital of Jharkhand, represents a socio culturally diverse population, including tribal and non-tribal communities. The RMC area comprises various wards that differ in terms of economic activities, educational levels, and digital access. Understanding these variations is essential for assessing how social media impacts women in different socio-economic and cultural settings within the same administrative boundary. The sample selection has been carried out using purposive sampling, a non-probability technique chosen deliberately to include respondents who are

relevant to the study objectives. Women users of social media from various wards of the RMC were selected to ensure diversity in age, education, occupation, and socio-economic background. The total sample size for the study is 80 women respondents. This size was determined based on time, resource availability, and the need to achieve sufficient representativeness within the chosen scope. For data analysis, descriptive statistics have been employed to summarize and interpret the collected information. Frequencies, percentages, and cross-tabulations are used to present the socio-economic characteristics of respondents and their patterns of social media use. Qualitative responses from FGDs and key informant interviews have been thematically analyzed to capture nuanced perspectives and contextual details.

Impact of Social Media on Women Empowerment

Social media has become a transformative force in enhancing women's empowerment, influencing various aspects of their personal, social, and professional lives. In the educational domain, women increasingly use platforms like YouTube, WhatsApp, and Facebook to access knowledge, participate in online courses, watch tutorials, and exchange information with peers. This access to digital learning opportunities helps women improve literacy, develop new skills, and make informed decisions, thereby strengthening their confidence and self-reliance[viii]. Economically, social media provides avenues for entrepreneurship, business promotion, and employment. Women use these platforms to advertise products, connect with clients, explore market trends, and engage in online transactions, enabling financial independence and fostering small-scale or home-based enterprises. Socially, digital platforms allow women to expand networks, share experiences, and challenge traditional stereotypes. Online communities serve as spaces for mentorship, emotional support, and collaboration, helping women build self-confidence and assert their presence within families and communities.

In terms of political empowerment, social media increases awareness about rights, governance processes, and civic responsibilities. Women can participate in discussions, campaigns, and local governance initiatives, giving them a voice in decision-making and policy matters. Social media also enhances safety and security by enabling women to report harassment, learn precautionary measures, and connect with support networks, creating a sense of protection and agency. The influence of social media varies according to age, education, socio-economic background, and digital access. It functions as a versatile tool that supports learning, networking, economic engagement, civic participation, and personal safety. Its role in fostering autonomy, confidence, and inclusive growth underscores social media's potential as a catalyst for sustainable development and gender equality in contemporary society.

Data Analysis and Interpretation

For the present study, the Data Analysis and Interpretation section seeks to systematically examine the patterns, trends, and implications of social media usage among women in Ranchi Municipal Corporation. Using data collected from 80 women respondents through surveys, interviews, and focus group discussions, along with secondary sources such as government reports and academic publications, this section presents both quantitative and qualitative insights. The analysis focuses on the socio-demographic profile of respondents, their social media usage

patterns, frequency and purpose of engagement, and the impact of digital platforms on various dimensions of women empowerment, including educational, economic, social, political, and safety-related aspects. By interpreting this data, the study aims to provide a clear understanding of how social media functions as a tool for empowerment, the challenges faced by women users, and the potential avenues for enhancing its role in fostering social, economic, and political participation. This section forms the empirical backbone of the research, linking theoretical perspectives with lived experiences and offering evidence-based insights into women's digital engagement in an urban Indian context.

On the basis of Age group of the respondents

Table:-1.1 (Age Group of the respondents)

Age Group	Number of Respondents	Percentage (%)
18–25	35	43.75
26–35	23	28.75
36–45	17	21.25
46+	5	6.25
Total	80	100

Table 1.1 shows that the majority of respondents, 43.75% (35 women), are aged 18–25, indicating that young women are the most active social media users in Ranchi Municipal Corporation. The 26–35 years group (28.75%) and 36–45 years group (21.25%) also engage with social media, mainly for professional, social, and community purposes. The 46+ years group (6.25%) has minimal participation, likely due to lower digital literacy or limited exposure. Overall, social media usage is highest among younger women, highlighting its role in empowering this age group while suggesting the need to promote digital inclusion for older women.

On the basis of Marital status of the respondents

Table 1.2: Marital Status of Respondents

Marital Status	Number of Respondents	Percentage (%)
Single	25	31.25
Married	53	66.25
Widowed/Separated	2	2.5
Total	80	100

Table 1.2 shows that the majority of respondents, 66.25% (53 women), are married, indicating that married women are the most active social media users in Ranchi Municipal Corporation. Single women (31.25%) also participate significantly, primarily for education, networking, and

skill development. The widowed/separated group (2.5%) has minimal representation, likely due to socio-cultural and access-related constraints. Overall, marital status influences social media engagement, with married women using it extensively for empowerment-related purposes.

Social media usage patterns

Table 1.3: Social Media Platforms Used by Respondents (Total 80 Women)

Social Media Platform	Number of Respondents	Percentage (%)
WhatsApp	70	87.50
Facebook	55	68.75
Instagram	40	50.00
YouTube	45	56.25
Multiple Platforms	60	75.00

Table 1.3 shows that WhatsApp is the most used platform (87.5%) among women respondents in Ranchi Municipal Corporation, followed by Facebook (68.75%), YouTube (56.25%), and Instagram (50%). Additionally, 75% of women use multiple platforms, reflecting a tendency to combine different tools for communication, learning, and networking. Overall, the data indicates that social media is widely embraced and serves as an important medium for women's empowerment in education, social engagement, and economic opportunities.

Impact of social media on various dimensions of women empowerment

Table 1.4: Impact of Social Media on Women Empowerment (Total 80 Women)

Dimension of Empowerment	Number of Respondents	Percentage (%)	Impact
Educational Empowerment	55	68.75	Access to online courses, skill-building tutorials, knowledge sharing
Economic Empowerment	45	56.25	Business promotion, job search, market networking, online sales
Social Empowerment	50	62.50	Networking, building self-confidence, challenging stereotypes
Political Empowerment	30	37.50	Awareness of rights, participation in local governance, online campaigns
Safety and Security	25	31.25	Reporting harassment, awareness of safety measures, digital vigilance

Table 1.4 highlights the multifaceted role of social media in empowering women respondents in Ranchi Municipal Corporation. Educational empowerment is the most prominent impact, reported by 68.75% (55 women). Respondents use platforms such as YouTube, WhatsApp, and Facebook to access tutorials, participate in online courses, and share knowledge within peer networks, enabling skill-building, improved literacy, and enhanced decision-making capabilities. Social empowerment follows closely, with 62.5% (50 respondents) recognizing benefits such as networking, boosting self-confidence, and breaking social stereotypes. Through online communities, women connect with like-minded individuals, gain mentorship, and challenge traditional gender norms, which strengthens their voice and agency in society. Economic empowerment is reported by 56.25% (45 women). Social media provides avenues for business promotion, market access, job search, and entrepreneurial ventures. Women leverage digital platforms to advertise products, expand client networks, and remain updated on market trends, contributing to financial independence and economic participation. Political empowerment and safety/security show lower but significant impact, with 37.5% (30 women) and 31.25% (25 women) respectively. Social media aids in awareness of rights, participation in local governance initiatives, and engagement in campaigns, while also serving as a medium for reporting harassment and learning about safety measures. The lower percentages may reflect challenges like limited political engagement or apprehensions around digital safety.

Conclusion and suggestions

For the present study, the analysis of data collected from 80 women respondents in Ranchi Municipal Corporation highlights several key patterns and insights regarding the impact of social media on women's empowerment.

Key Patterns Observed: Social media is widely adopted among women across different age groups, education levels, and socio-economic backgrounds, though usage varies significantly. Younger women (18–25 years) are the most active users, leveraging platforms for educational growth and social networking. Married women form the largest group of respondents, utilizing social media for communication, social engagement, and economic activities. WhatsApp emerges as the most frequently used platform, followed by Facebook, YouTube, and Instagram, with a significant proportion of women (75%) using multiple platforms to maximize benefits.

Notable Statistical Results: The data reveals that 68.75% of respondents report educational empowerment, 62.5% experience social empowerment, and 56.25% gain economic empowerment through social media. Political empowerment and safety awareness are comparatively lower, at 37.5% and 31.25% respectively. Age, education, and socio-economic status significantly influence the frequency and purpose of social media usage, with higher engagement observed among younger, educated, and higher-income women.

Qualitative Insights from Interviews/FGDs: Interviews and focus group discussions provided deeper understanding of empowerment dynamics. Respondents highlighted how social media facilitates access to knowledge, professional networking, and community engagement. Many women emphasized the role of online groups in boosting confidence, challenging traditional gender norms, and providing emotional support. However, concerns were also noted regarding

online harassment, misinformation, and limited access for women in lower socio-economic or semi-rural wards, indicating barriers that need to be addressed.

In conclusion, the study demonstrates that social media is a powerful and transformative tool for women's empowerment in Ranchi Municipal Corporation, impacting multiple aspects of their lives. Women actively use digital platforms for communication, social interaction, accessing education, enhancing skills, expanding economic opportunities, and building social networks. Platforms provide access to knowledge, tutorials, online courses, and awareness about rights, policies, and community initiatives. Educational empowerment has increased through social media, with women reporting better access to learning resources and skill-building opportunities. Socially, platforms help women expand networks, increase self-confidence, and challenge traditional gender norms and stereotypes, strengthening their sense of agency. Economic empowerment is evident as women use social media to promote businesses, explore job opportunities, and gain exposure to broader markets, contributing to financial independence and entrepreneurial growth. In the political domain, awareness of local governance, legal rights, and civic participation is improving, while safety and security are supported through tools to report harassment, learn precautionary measures, and connect with support networks. The extent of empowerment varies according to age, education, socio-economic status, and urban-rural differences within the municipal area. Younger, educated, and higher-income women experience more benefits, while older women or those from lower socio-economic backgrounds face limitations due to access, digital literacy, and socio-cultural factors. These findings indicate the need for targeted interventions, digital literacy programs, awareness campaigns, and infrastructure development to ensure social media empowers all women equitably in Ranchi. Social media has already shown its potential to support educational, social, and economic empowerment. By improving access, promoting safe and informed use, and encouraging active participation, it can strengthen women's capabilities and contribute to gender equality, social development, and inclusive growth in the urban context of Ranchi Municipal Corporation.

Suggestions

Targeted Digital Literacy Programs: Conduct workshops and training sessions to enhance digital skills, especially for older and less-educated women.

Enhanced Access and Infrastructure: Improve internet connectivity and affordability in semi-urban and peri-urban wards to ensure equitable access.

Awareness Campaigns: Promote safe social media practices, online security measures, and awareness about legal rights and political participation.

Support Networks: Encourage the formation of women-centric online communities and mentorship platforms to foster social and economic empowerment.

Policy Interventions: Government and NGOs should collaborate to design inclusive programs that leverage social media for skill-building, employment, and community engagement.

References: -

1. Hiremath, Sumanth, S. (2021), Women Empowerment In The 21st Century: A Sociological Perspective, Blue Diamond Publishing, Chattisgarh, Pg-08-12

2. Banu, A,.Rajina (2020), Indian Feminism: Theory and Practice, Krishna Publication House, Gujrat, Pg-18-27

3. Sahay, Sushama (1998), Women and Empowerment: Approaches and Strategies, Discovery Publishing House, New Delhi, Pg-34-38

4. Yadav, Hridai, Ram (2015), Women Empowerment (Volume 1), Concept Publishing Company Pvt. Limited, New Delhi, Pg-28-41

5. Ray, Kasturi, Bhadra (2016), Status Of Women Migrants, Smriti Publishers, West Bengal, Pg-110-119

6. Kak, Manju, Tripathy, Prajnashree, Lal, Manjula (2007), Whose Media? a Woman's Space: The Role of the Press in Projecting the Developmental Needs of Women, Concept Publishing Company, New Delhi, Pg-62-92

7. Latha, A.P., Chaaru, Emimah, S. (2023), Women Empowerment in Nation Building, Shanlax Publications, Tamilnadu, Pg-54-59

8. Kumar, Ravinder (2025), A Paradigm Change in Women's Empowerment Role of Leadership Innovation and Technology Adoption, Alborear (OPC) Pvt. Ltd., Maharashtra, Pg-08-12

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : संभावनाएं और चुनौतियां

डॉ. प्रियंका गिरि
असिस्टेंट प्रोफेसर(समाजशास्त्र)
सुधाकर महिला पी.जी कॉलेज
पांडेयपुर, वाराणसी।

सारांश
नई शिक्षा नीति 2020 देश में 34 वर्षों बाद आई है जो शोध पर नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है। सरकार का यह प्रयास है कि 45000 से अधिक महाविद्यालय और 15 लाख से अधिक स्कूलों में नई शिक्षा नीति के अनुरूप परिवर्तन किया जाए। सरकार का ऐसा प्रयास है कि तेजी से बदलते सामाजिक, आर्थिक,तथा वैश्विक परिवेश में देश के युवाओं को सशक्त बनाया जाए। नई शिक्षा नीति 2020 का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिसमें भारतीय परंपराओं और मूल्यों को जगह मिले। तथा शिक्षा प्रणाली में इंडिया की जगह भारत की झलक दिखाई दे।

मुख्य शब्द - समावेशी शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020

प्रस्तावना

उच्च स्तरीय शिक्षा स्थलों जैसे तक्षशिला और नालंदा आदि के बल पर भारत प्राचीनतम समय से ही देश-विदेश का विश्वगुरु रहा है। आजादी के बाद से शिक्षा को ही परिवर्तन का माध्यम माना जाने लगा है ।शिक्षा में हर बार नए प्रयोग कर विकास के लक्ष्यों की प्राप्त करने का प्रयास किया जाता रहा है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा पर अनेक परिवर्तन समय-समय पर किए जाते रहे हैं लेकिन फिर भी यह लगता है कि हर बार कुछ ना कुछ छूट रहा है। वर्तमान नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस अभाव को पूरा करने के लिए देश के शिक्षा व्यवस्था को समावेशी और उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का उद्देश्य

i. नई शिक्षा नीति 2020 के बारे में जानना
ii. इस नीति के लक्ष्यों एवं सिद्धांतों के बारे में जानना
iii. नई शिक्षा नीति 2020 पुराने शिक्षा नीति से किस प्रकार भिन्न है इसको जानना
iv. नई शिक्षा नीति में अभिभावकों एवं शिक्षकों हेतु क्या नवाचार है? को जानना

शोध विधि

प्रस्तुत लेख पत्र में द्वितीय स्त्रोत (विभिन्न रिपोर्ट समाचार पत्रों एवं पुस्तकों) के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है।

बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए ,शिक्षा के गुणवत्ता को बढ़ाने, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए, भारतीय शिक्षण व्यवस्था को वैश्विक स्तर पर पहुंच सुनिश्चित करने के लिए तथा शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए नई शिक्षा नीति की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से परंपरागत शिक्षा पद्धति प्रचलित थी जिसमें गुरुकुल व्यवस्था के अंतर्गत विद्यार्थियों को बाल्यकाल में शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरुकुल भेज दिया जाता था। यह व्यवस्था हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथो, रामायण, महाभारत आदि में वर्णित आश्रमों, नालंदा व तक्षशिला विश्वविद्यालय जैसी प्रतिष्ठित संस्थानों से समझी जा सकती है जिनमें विदेश से अध्ययन हेतु विद्यार्थी आते थे। आधुनिक युग में हमारे देश में शिक्षा व्यवस्था हेतु प्रमुख रूप से शिक्षा नीतियां वर्ष 1968, 1986 एवं 2020 में लागू की गई है। वर्तमान में केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पूरी तरह लागू करने का लक्ष्य वर्ष 2040 तक रखा गया है। नई शिक्षा नीति में रोचक, महत्वपूर्ण व अनुकरणीय विचार समाहित किए गए हैं। साथ ही इसमें कुछ नई चुनौतियां भी उपस्थित होने की संभावना है। अवसर के तौर पर इसमें बालक की सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अनेक प्रावधान किए गए हैं, साथ ही नवाचारों को भी प्रोत्साहित किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में हुए इन नये सृजनात्मक स्वरुप को सही मायने में गुणात्मक अभिवृद्धि के रूप में तभी देखा जा सकता है जबकि इसके क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं को दूर कर दिया जाए।

भारत सरकार द्वारा गंभीर मंथन एवं वर्तमान में प्रचलित शिक्षा नीति की कमियों से सबक लेते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रस्तुत की गई है। यह प्रारूप सरकार, शिक्षाविदों तथा भारत के आम जनता से प्राप्त हुए बहुमूल्य एवं सार्थक विचारों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है जो कि आज हम सभी के समक्ष राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्थूल रूप में विद्यमान है।

इस प्रारूप को भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय (वर्तमान में शिक्षा मंत्रालय) द्वारा तैयार किया गया है वस्तुतः इस प्रारूप पर भारत सरकार द्वारा विगत 5 वर्षों से निरन्तर कार्य किया जा रहा था। इस वर्ष माह मई 2019 में इसे सार्वजनिक कर दिया गया था तत्पश्चात संबंध पक्षों सहित आम जनता से सुझाव मांगे गए थे।सरकार का यह कदम भारत के लोकतांत्रिक शासन में आम जनता का विश्वास बनाएं रखने एवं मजबूत करने में वृहद लक्ष्य को रेखांकित करता है । नई शिक्षा नीति 2020 को भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को कैबिनेट की मंजूरी के पश्चात घोषित किया गया तथा वर्ष 2020 में इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के कारण ही इसका नामकरण राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 रखा गया। नई शिक्षा नीति लागू करने वाला सबसे पहला राज्य कर्नाटक है।

भारत के इस नई शिक्षा नीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के पश्चात यह बात निश्चय ही हमारे मस्तिष्क पटल पर आती है कि इस विस्तृत शिक्षा नीति को एक अवसर के रूप में लेकर भारत सरकार की नींव को सुंदरता प्रदान की जाती है। इस अध्ययन के मुख्य विषय नई डिजाइन की पाठ्यक्रम व्यवस्था 5 + 3 + 3 + 4 में किस प्रकार हमें अवसर मिलेंगे ,यह देखा जा सकता है।

प्रथम स्तर जिसे फाउंडेशन स्तर कहा गया है, उसे 5 साल के कालखंड को दो स्तर प्रथम स्तर के 3 वर्ष जिसमें बालक को आंगनबाड़ी के माध्यम से खेल-खेल में सीखना किंडर गार्डन विधि के माध्यम से तथा द्वितीय स्तर में 2 वर्ष जिसमें कक्षा एक से दो तक मातृभाषा के बिना किसी बोझ के बालक को आधारभूत वस्तुओं का ज्ञान करने में विभक्त किया गया है। यह एक सुनहरा अवसर हो सकता है क्योंकि जब तक बालक की नींव मजबूत नहीं होगी वह आगे जाकर किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता इस व्यवस्था को सार्थक एवं साकार रूप देने के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण भी आवश्यक है मनोविज्ञान के आधार पर यदि देखा जाए तो विभिन्न अध्ययनों में यही कहा गया है कि बालक के सीखने के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष उसके प्रारंभिक 6 वर्ष होते हैं।

इस प्रकार प्रीपेटरी स्तर (3 वर्ष,)कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों को सभी प्रकार का अध्ययन उनकी अपनी समझ के आधार पर मातृभाषा या किसी क्षेत्रीय भाषा मे होने से अधिगम का प्रतिशत बढ़ सकेगा। इस स्तर पर विद्यार्थी पर किसी अन्य भाषा को अध्यारोपित नहीं किया जा सकेगा। यह भी एक सुअवसर है जिसमें विषय के मूल ज्ञान को समझने के लिए बच्चों को किसी भाषा विशेष मे ही उलझ कर रहना ना पड़े। जैसा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा है कि –

“निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल”

इसी क्रम में कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों को और अधिक आवश्यकता है कि इस समय इन्हें अपनी मातृभाषा में सभी नियम सिद्धांत सिखाए जाएं।

इस नीति में एक नए अवसर के तौर पर 10 दिन बस्ता रहित अवधि (bag less period) के रखे गए हैं जिससे बच्चे अपनी व्यक्तिगत क्षमता एवं रुचि के हिसाब से वह किसी भी व्यवसाय, शिक्षा जैसे काष्ठकला, बागवानी मिट्टी कला, स्थानीय कलाकारी इत्यादि की शिक्षा प्राप्त करे। हमारे देश में वर्तमान में मौजूद शिक्षा प्रणाली में बालक केवल किताबी ज्ञान तथा बस्ते के बोझ के मारे अपनी रुचियों को पोषित करने का अवसर ही खो देता है। यह एक अच्छी पहल है।

कक्षा 9 से 12 तक के 4 वर्ष जिसे सेकेंडरी स्तर कहा गया अत्यंत महत्वपूर्ण है इस स्तर पर बालक में समझ आ जाती है कि वह किस विषय में रुचि रखता है। कक्षा 9 में ही उसे विभिन्न क्षेत्रों के विषयों काष्ठ कला, बागवानी मिट्टी कला, स्थानीय कलाकारी इत्यादि में से अपनी पसंद के विषय चुनकर पढ़ने की स्वतंत्रता होगी तथा साथ ही व्यवसाय या रुचि के आधार पर कोई अन्य भाषा को सीखने का अवसर मिलेगा। इस व्यवस्था में बालक की अंतर्निहित कलाओं, क्षमताओं तथा रुचि के साथ अध्ययन का सुनहरा अवसर मिलेगा। इस प्रकार इस नई शिक्षा नीति को यदि भारत की युवा तथा आने वाली पीढ़ी के लिए शुभ अवसर के रूप में लिया जाए तो भारत अपने प्राचीन बौद्धिक स्तर को प्राप्त कर सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020: क्रियान्वयन की चुनौतियां - भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को नई शिक्षा नीति जारी की गई थीं यह शिक्षा क्षेत्र के लिए 21वीं सदी की पहली और सबसे व्यापक नीति है। शिक्षा जगत के लिए 1986 के बाद पहली बार अनेक मक़सदों-वाला नीतिगत दस्तावेज सामने रखा गया। इसमें कोई शक नहीं कि भारत का शिक्षा क्षेत्र फिलहाल संकट के दौर से गुजर रहा है। लिहाजा नई शिक्षा नीति के सामने समस्याओं से पार पाने की चुनौती है। ये सही है कि NEP ने कुछ हद तक रफ्तार पकड़ी है लेकिन

इसको पूरी तरह से अमल में लाने का रास्ता रुकावट से भरा है। निश्चय ही नई शिक्षा नीति 2020 को पूरे देश में क्रियान्वित करना चुनौती पूर्ण कार्य है। मेरे विचार में नई शिक्षा नीति 2020 को लागू करने में कुछ मुख्य चुनौतियां हैं जो निम्न प्रकार से है –

भारत जैसे देश का विशाल आकार और यहां के शिक्षा जगत की विविधता के मद्देनजर किसी नयी पहल को लागू करना पहाड़ चढ़ने जैसा है। मिशाल के तौर पर हम सिर्फ स्कूली शिक्षा तंत्र के आकार को ही ले सकते हैं। आकार के मामले में भारत का शिक्षा तंत्र दुनिया में दूसरे स्थान पर है। भारत में 15 लाख से ज्यादा स्कूल 25 करोड़ से अधिक छात्र और तकरीबन 89 लाख शिक्षक हैं। देश में उच्च शिक्षा से जुड़ा तंत्र भी बहुत बड़ा है। AISHE(आल इंडिया सर्वे आन हायर एजुकेशन) की 2019 की रिपोर्ट में भारत में उच्च शिक्षा से जुड़े तमाम आंकड़े पेश किए गए हैं। रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 3.74 करोड़ छात्र उच्च शिक्षा हासिल कर रहे हैं। देश में तकरीबन 1000 विश्वविद्यालय, 39931कॉलेज और 10725 स्वतंत्र संस्थान है। जाहिर है कि नई शिक्षा नीति को देशभर में अमल में लाने से जुड़ी कवायत बहुत विशाल है इनमें राज्य जिला और तहसील स्तर के अनेक किरदार शामिल है। भारत में राज्य और जिलों के स्तर पर बहुत अधिक विविधताएं मौजूद हैं। निश्चित रूप से निजी क्षेत्र के साथ-साथ इन तमाम किरदारों के बीच जिम्मेदारियां और मालिकाना दर्जे का साक्षा स्वरूप तैयार करना बहुत बड़ी चुनौती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन में हमारे समक्ष एक चुनौती इस रूप में भी विद्यमान है कि भारत सरकार द्वारा शिक्षा पर हमारे देश की जीडीपी का लगभग 6% खर्च किया जाना प्रस्तावित है परंतु यह तथ्य वर्तमान में भी वाद-विवाद के योग्य है की क्या यह 6% अंश खर्च किया जा रहा है या अब किया जाएगा ? यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि यह प्रावधान देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के पूर्व में लागू की गई दो शिक्षा नीतियों में भी किया गया था परंतु वास्तव में धरातल पर आंकड़े ऐसा नहीं दर्शाते आर्थिक समीक्षा 2018-19 के आंकड़ों पर यदि गौर किया जाए तो स्पष्ट होगा कि हमारा देश कुल जीडीपी के तीन प्रतिशत से भी कम शिक्षा पर खर्च करता है। शिक्षा पर कुल सार्वजनिक खर्च प्रति विद्यार्थी तथा शैक्षिक गुणवत्ता की दृष्टि से भारत का विश्व में 62वां स्थान है। शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात भारत में अभी भी अत्यंत न्यून है। देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र टाइम्स आफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार भूटान, जिंबॉब्वे, स्वीडन, फिनलैंड, ग्रेट ब्रिटेन, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका इन सभी देशों में शिक्षा पर उनके जीडीपी का भारत से अधिक प्रतिशत खर्च किया जा रहा है। कोठारी आयोग(1964) में भी 6% अंशदान ही शिक्षा पर खर्च करने का प्रावधान था परंतु 2021 तक यह नहीं हो पाया एक रोचक तथ्य यह भी सामने आता है कि जैसे-जैसे हमारी कुल जीडीपी में वृद्धि हुई है वैसे-वैसे उसका 3% से भी कम शिक्षा पर खर्च किया गया है इसमें सुधार करके शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर किया जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन में हमारे समक्ष चुनौती इस रूप में विद्यमान है कि राष्ट्रीय टेस्टिंग एजेंसी द्वारा ही राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा आयोजन कर देश के सभी विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय में प्रवेश दिया जाएगा तथा समस्त विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय अलग से अपनी परीक्षा आयोजित नहीं करवा पाएंगे यह एक अच्छी पहल है परंतु यदि इनमें परीक्षा व शिक्षा के अंकों के अतिरिक्त यदि किसी विद्यार्थी के अन्य रुचि जैसे कोई खेल कला आदि को भी साथ में वरीयता देने की बात कही जाए तो कहीं बेहतर विकल्प होता। वहीं शिक्षा के समवर्ती सूची में होने के कारण अलग-अलग राज्य और क्षेत्रवाद भी भिन्नता से विवाद उत्पन्न होने की आशंका रहेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की क्रियान्वयन में हमारे समक्ष एक अन्य चुनौती इस रूप में विद्यमान है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कक्षा 5 या कक्षा 8 तक मातृभाषा में ही शिक्षण की बात कही गई है। यह भी केवल वैकल्पिक है आवश्यक नहीं है। इस व्यवस्था को जो निजी क्षेत्र के बड़े विद्यालय हैं उन्हें मानने के लिए कोई बाध्यता नहीं होने से उनका शिक्षा प्रदान करने का माध्यम तो अंग्रेजी रहेगा तथा केवल सरकारी विद्यालयों में मातृभाषा में आधारभूत शिक्षा प्रदान करने से क्या यह भारत के बालकों को दो वर्गों में विभाजित नहीं करेगा? सामाजिक, आर्थिक विषमता की इस गहरी खाई को आज भी समाज में देखा जा सकता है मनोवैज्ञानिक तौर पर भी एक बालक के शुरुआती वर्षों में शिक्षा या कोई भाषा को सीख पाना ज्यादा आसान होता है क्या जिस बालक ने कक्षा 5 या 8 तक अंग्रेजी भाषा को जाना ही नहीं वह भविष्य में अंग्रेजी भाषा वह माध्यम में कुशलता से शिक्षा ग्रहण कर सकेगा वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में अंग्रेजी भाषा की मान्यता सर्व विदित है चाहे कोई नौकरी या कोई अन्य कार्य हो उसमें अंग्रेजी की महत्ता व वरीयता को कोई भी नजर अंदाज नहीं कर सकता हमारे देश में यही वास्तविकता है प्रसंगवश एक उदाहरण हमें चीन का भी ध्यान रखना चाहिए जहां पहले अंग्रेजी नहीं सिखाई जाती थी किंतु अब उसको प्राथमिकता से सिखाया जाता है।

स्नातक स्तर पर बहु विषयक या बहु आयामी तरीके से पढ़ाई की एक बेहतर विकल्प है परंतु इतने प्रयास के बाद भी कुछ महत्वपूर्ण तथा जागरूकता फैलाने वाले आवश्यक विषय जैसे स्त्री शिक्षा, लैंगिक शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा, विषमता एवं बहिष्करण

शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, विकास की शिक्षा यह सभी हाशिए पर रह गई है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संबंधी मुद्दे पर अध्ययन करने की परम आवश्यकता है।

अध्यापक प्रशिक्षण भी एक प्रमुख चुनौती है। जैसे गुणवत्तापूर्ण अध्ययन के लिए कुशल शिक्षकों प्रशिक्षण की वित्तीय व्यवस्था कहां से होगी इसका मूलभूत ढांचा क्या होगा? मूल्यांकन प्राधिकरण कौन होगा? इन सभी प्रश्नों के बारे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मौन है।

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समावेशी शिक्षा की बात कही गई है इसके आधार पर इस प्रारूप में कहा गया है कि ऐसे विद्यार्थी जो अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग और विशेष पिछड़ा वर्ग से संबंधित है उनके लिए मेरिट के आधार पर स्कॉलरशिप के प्रयासों में तेजी लाई जाएगी तथा राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल को विस्तारित किया जाएगा जिसमें छात्रवृत्ति मिलने में सहायता मिले तथा यह कार्य अभिलंब हो सके। सरकार की यह पहल स्वागत योग्य है परंतु इस नीति में अनारक्षित वर्ग के ऐसे विद्यार्थी जिसकी आय बहुत कम है उन विद्यार्थियों के लिए कोई ध्यान नहीं दिया गया है। यदि कोई एक वर्ग भी छूट गया या अछूता रह गया तो समावेशी शिक्षा का सपना कैसे साकार हो सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शक्ल नामांकन अनुपात लक्ष्य उच्च शिक्षा में 50% तथा माध्यमिक शिक्षा में 100% का लक्ष्य रखा गया है वर्तमान में यह लक्ष्य उच्च शिक्षा में 25.8% तथा कक्षा 9 माध्यमिक शिक्षा में 68% है यह लक्ष्य वास्तविक तौर पर कुछ अधिक वास्तविक प्रायोगिक व प्राप्त करने योग्य होने चाहिए क्योंकि आज के परिप्रेक्ष्य में कक्षा 8 के बाद ड्रॉप आउट बच्चों की संख्या अधिक है इनमें इस कम करके ही हम माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा में सम्माननीय सकल नामांकन अनुपात प्राप्त कर सकते हैं

नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालय के मार्ग प्रशस्त किया गया है विभिन्न शिक्षाविदों का मानना है कि विदेशी विश्वविद्यालय के प्रवेश में भारतीय शिक्षा व्यवस्था महंगी होने की संभावना है परिणाम स्वरुप निम्न वर्ग के छात्रों के लिए उच्च वर्ग उच्च शिक्षा प्राप्त करना चुनौती पूर्ण हो जाएगा। विदेशी विश्वविद्यालय के पलायन के प्रवेश से भारत के दक्ष शिक्षक भी इन विश्वविद्यालय में अध्यापन हेतु पलायन कर सकते हैं वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्या है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बारे में विचार किया गया तथा इनमें निहित संभावनाओं और चुनौतियों पर समीक्षा करके विचार प्रस्तुत किए गए है। निष्कर्ष के तौर पर यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में चुनौतियों को स्वीकार करते हुए हम सभी भारतवासियों को इसके सभी सकारात्मक पक्षों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। कुल मिलाकर कहे तो NEP 2020 सचमुच हर लिहाज से एक क्रांतिकारी दस्तावेज है नीति के तहत तमाम दूसरे मसलों के साथ-साथ शैक्षणिक मुद्दों और ढांचागत विषमताओं के निपटारे पर जो जोर दिया गया है इनमें 21वीं सदी में भारत की जरूरतों के मद्देनजर शिक्षा को व्यापक और सुलभ बनाने और छात्रों की भावी मांग के हिसाब से तैयार करने का खाका खींचा गया है। इसके साथ ही NEP के सामने शिक्षा जगत की अनेक समस्याएं से निपटने की कठिन चुनौतियां भी हैं। निश्चित रूप से भारत अपनी युवा आबादी का लाभ उठाना चाहता है। साथ ही तेज गति से बढ़ती ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में पैदा होने वाले अवसरों को भी हम अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। ऐसे में नई शिक्षा नीति पर प्रभावी रूप से अमल करना निहायत जरूरी हो जाता है। हाल के महीनों में सरकार की ओर से नई शिक्षा नीति से जुड़े कई कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। कई राज्यों में भी आधिकाधिक रूप से इस नीति को लागू कर दिया गया है। कई दूसरे राज्यों में इसे अपनाने की प्रक्रिया जारी है। हालांकि सभी NEP को एक लंबा रास्ता तय करना है। राज्य जिला और निजी क्षेत्र समेत विभिन्न संबंधित पक्षों के बीच तालमेल और सहयोग कायम करने की जरूरत होगी। विशाल आकार और अमल से जुड़ी जटिलताओं के चलते निश्चित रूप से यह एक कठिन एक बहुत कठिन काम है। इसके साथ ही वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता से जुड़ी समस्याओं से भी पार पाना होगा। भारत का शैक्षिक तंत्र नए विचारों और नवाचारों को आसानी से स्वीकार नहीं करता है लिहाजा इस मोर्चे पर भी ठोस पहल की जरूरत होगी। हालांकि सबसे बड़ी चुनौती NEP पर आम सहमति कायम करने की है। 1986 के बाद पहली बार आए इस प्रकार के कार्यक्रम से जुड़ने के लिए राज्यों को तैयार करना होगा। संक्षेप में कहे तो NEP की कामयाबी काफी हद तक सहकारी संघवाद पर निर्भर है। इसके लिए राज्यों को सुधार प्रक्रिया की अगुवाई करनी होगी।

आधारभूत शिक्षा से ही प्रारंभ किया जाए तो सर्वप्रथम आंगनबाड़ी केंद्रो व कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान कर तथा आर्थिक सहायता तार्किक रूप से सुसंगत करते हुए उन्हें सुदृढ़ बनाया जाए। प्राथमिक शिक्षा में भी आधारभूत शिक्षा में मातृभाषा की आवश्यकता को स्वीकार करने के साथ ही वैश्विक स्तर पर वर्तमान में प्रासंगिक एवं मान्य अंग्रेजी को भी पूरी तरह से उपेक्षित नहीं

किया जाना चाहिए। कक्षा 9 (माध्यमिक शिक्षा) में ड्रॉप आउट बच्चों के अनुपात कम किए जाने की तरफ विचार किया जाना आवश्यक है। माध्यमिक, उच्च माध्यमिक शिक्षा एवं स्नातक स्तर पर जो विचारणीय बिंदु है जैसे किसी भी स्ट्रीम की बाध्यता समाप्त कर बहु विषयक शिक्षा के क्रियान्वयन के लिए उन अन्य देशों में जहां यह व्यवस्था चल रही उनका व्यापक अध्ययन एवं अनुसरण करें तथा प्राप्त सुझावों को लागू करने की मानसिकता सकारात्मक बनाने में भी पीछे नहीं हटना चाहिए।

अंत में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 हमारे लिए एक नए अवसर तथा चुनौती दोनों ही लेकर आई है जिसे हम सभी को एकजुट होकर क्रियान्वित करके तथा चुनौतियों का निराकरण करने के लिए कार्य करने के लिए तत्पर होना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रकाश कुमार 21वीं सदी की मांग पूरी करेगी नई शिक्षा नीति आउटलुक हिंदी 24 अगस्त 2020
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा 2005 मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार
- आर्थिक समीक्षा 2018-19 वित्त मंत्रालय भारत सरकार
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 और 1986 शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार
- Nandini,ed-29 July 2020,new education policy 2020 highlights School and higher Education to see major challenge-Hindustan Times.
- Aithal P.S.& Aithal S-J-2020 Analysis of The Indian national education policy 2020 towards achieving its objective international journal of management technology and social science,5 (2), 19-41
- Duff et.AI,2008, Engineering the YouTube Google - Eyed generation: Strategies for using web 2.0 in teaching and learning Electronic journal of e-learning 6(2),119-130.
- https://www-unicef-org/india/hi/mode/701

जैन समाज में नारियों की स्थिति

प्रो. उपमा वर्मा* एवं विजय कुमार वर्मा**
*प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष : प्राचीन इतिहास
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या, उ.प्र.
**शोध–छात्र : डॉ. रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

सारांश

जहाँ पर पति–पत्नी, माता–पिता एवं भाई–बहन एक साथ रहते हैं, वही परिवार है। इस प्रकार नारी से ही परिवार का निर्माण होता है, चाहे उसे पत्नी के रूप मे देखा जाय या माता के रूप में या फिर बहन के रूप में देखा जपाय। जैन समाज में नारियोंकी मूर्तियाँ बड़ी संख्या में दिखलायी दे रही हैं, जिससे यह माना जाता है कि इस समाज में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उस समय जैन समाज में संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी और नारियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि तत्कालीन समय में मातृप्रधानता थी। परिवार का उम्रदराज व्यक्ति घर का मुखिया होता था, लेकिन नारी की स्थिति अच्छी थी। पिता की सम्पत्ति पर केवल पुत्र का ही अधिकार था। पत्नी को गृहस्थी का मुखिया माना जाता था। इससे परिवार आनन्दित रहता था।

मुख्य शब्द– वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, मौर्यकाल के पूर्व, मौर्यकाल के पश्चात, नारी समाज, महाभारतकाल, महावीर जैन।

जैन समाज में नारियों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परिवार की इकाई परम्परागत परिवार था। परिवार में अति निकट सम्बन्धी सदस्य एक ही घर में रहते थे। जिसमें माता–पिता की सन्तानें होती थीं। नारियों की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में होने के कारण यह माना जाता है कि परिवार तथा समाज में नारी को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रारम्भ में परिवार में मातृप्रधानता थी।[1] ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि उनमें उपयोगी फलों का ज्ञान था, जिसको वे खाते थे। वे मांसाहारी और शाकाहारी दोनों थे। अनेक मूर्तियाँ जो वैदिक युग के पहले की हैं, उनमें स्त्री–पुरुष के वस्त्रहीन चित्र मिलते हैं। परन्तु इसका आधार यह नहीं है कि वे वस्त्रों के प्रति उदासीन थे। शरीर को ढकने के लिए स्त्रियाँ वस्त्र पहनती थी। स्त्रियाँ सर पर एक विशेष प्रकार का वस्त्र धारण करती थी, जो सर के पीछे की तरफ उड़ता रहता था। स्त्रियों में श्रृंगार की प्रधानता देखने को मिलती थी। मातृदेवी की मूर्ति से इसके प्रमाण मिलते हैं। वे आभूषण का भी प्रयोग करती थी। आभूषणों की आकृति आकर्षक तथा कलात्मक होती थी, ये प्रायः बहुमूल्य धातु की होती थी।[2] बाली, पायल, अंगूठी, करधनी आदि मुख्य आभूषण थे। उस समय मनोरंजन के साधन भी थे।

वैदिक काल में समाज पितृसत्तात्मक था, लेकिन नारी को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। परिवार का उम्रदराज व्यक्ति पिता या पितामह परिवार का प्रधान होता था। उसे गृहपति कहा जाता था। परिवार के सभी सदस्यों द्वारा उसकी आज्ञा का पालन किया जाता था। गृहपति की मृत्यु के बाद उसका जयेष्ठ पुत्र या पिता का छोटा भाई गृहपति होता था। कतिपय परिस्थितियों में परिवार का विभाजन भी होता था।[3] पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार नहीं था। उस समय जैन समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली थी।[4] परिवार के सम्मान में समस्त परिवार के सदस्य तत्पर रहते थे। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक कार्यों में भाग लेती थी। पत्नी को गृहस्थी माना गया है। इससे परिवार में आनन्द मिलता है।[5] परिवार की सम्पन्नता का मापदण्ड परिवार का वृहद रूप होता था।[6]

वैदिक युग में जैन समाज भोजन में दूध, दही तथा उससे बने अन्य पदार्थ को भोजन के साथ ग्रहण करते थे। इस समय स्त्रियाँ शाकाहारी भोजन लेती थी। गाय को माता के समान माना गया।[7] सुरा को निन्दनीय माना गया।[8] श्रृंगार में स्त्रियों की विशेष रुचि थी। वे अपने केशों को अनेक प्रकार से गूथती थी, स्त्री की सुन्दरता का प्रतीक सर का बाल ही है। स्त्रियाँ कीमती धातु का आभूषण भी पहनती थी। वे कानों में कर्णशोभन, गले में निष्क, हाथों में कड़े और गले में मड़ियाँ पहनती थी। उस समय मनोरंजन की अनेक विधियाँ थी। आमोद–प्रमोद के लिए विभिन्न उत्सवों तथा समनों का आयोजन किया जाता था।[9] लोग नृत्य एवं गायन का आनन्द लेते थे।

सामाजिक मान्यता के अनुसार स्त्रियों का पद बहुत उच्च था। समाज में स्त्रियों को काफी सहयोग मिलता था। उत्तर वैदिक युग में सामाजिक जीवन में उत्तरोत्तर विकास हुआ और उसमें स्थिरता देखी गयी। इस काल में जैन समाज में माता का बहुत आदर होता था।[10] पैतृक सम्पत्ति संयुक्त परिवार की होती थी, उसकी बढ़ोत्तरी में लोग लगे रहते थे। संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों के घर में ही रहने के कारण उनमें कलह भी देखने को मिलता था। कलह के कारण कई स्त्रियाँ ससुराल छोड़कर मायके चलर जाती थी।[11] पति–पत्नी के सम्बन्ध सुखद भी दिखलायी देते हैं। कई जगहों पर प्रेम के बड़े सुन्दर वर्णन मिलते हैं। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी घर की देखभाल करती थी तथा सास–ससुर, देवर, ननद सभी उसका बड़ा सम्मान करते थे।[12] परिवार ही सत्य, धर्म तथा शान्ति की पवित्र संस्था माना जाता था।[13]

उत्तरवैदिक काल में जैन समाज में स्त्रियों के लिए भोजन रुचिकर, पौष्टिक तथा विविधतापूर्ण था। वे गेहूँ, जौ की रोटी तथा साग सब्जियाँ खाती थी। उस समय गोवध का निषेध था, लेकिन भेड़–बकरे का मांस खाया जाता था।[14] स्त्रियाँ वस्त्र और आभूषण की भी शौकीन थी। वे किनारेदार साड़ी पहनती थी और पुष्पों द्वारा वेड़ियों का अलंकरण करती थी। अपने अंगों का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए वे विभिन्न लेपों का प्रयोग करती थी, वे सिर में तेल तथा आँखों में काजल लगाती थी। स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनती थी। सोने, चाँदी तथा मोती के विभिन्न आभूषण बनाये जाते थे। सभ्यता के विकास के साथ–साथ यह स्वाभाविक है कि मानव के अभिरुचियों में परिवर्तन एवं भिन्नता होगी। जहाँ एक तरफ नारी निन्दा एवं उनकी पराधीनता के प्रमाण मिलते हैं, तो दूसरी तरफ उनके सम्मान के विवरण भी मिलते हैं। ऋग्वेद में पुत्री के जन्म पर खिन्नता व्यक्त करने का उल्लेख है[15], जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में अनेक विदुषी स्त्रियों के नामों का उल्लेख है।[16] अतः समाज में स्त्रियों को आदर तथा सम्मान तो प्राप्त था, परन्तु उत्तरवैदिक युग में अपेक्षाकृत उनका पद गिर गया था और स्त्रियों के अधिकार सीमित हो गये।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में युवक–युवतियों के प्रेम सम्बन्धों का वर्णन है।[17] धनी कन्या से विवाह करने के लिए युवक इच्छुक रहते थे।[18] स्त्री–पुरुष अपनी इच्छानुसार विवाह करते थे। सामाजिक दृष्टि से विवाह का बड़ा महत्व था। स्त्री ही पुरुष को पूर्णतया प्रदान करती थी। पति की प्राप्ति के लिए कन्या ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करती थी।[19] इससे यह स्पष्ट होता है कि युवावस्था आने पर कन्या का विवाह कर दिया जाता था। विवाह संस्कार में उत्सव जैसा आयोजन होता था। इस समय जाति व्यवस्था इतनी कठोर नहीं थी। अन्य जातियों में विवाह किया जाता था। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय छोटी जातियों में वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ते थे। क्षत्रिय राजा शर्यात की पुत्री सुकन्या ब्राह्मण च्यवन ऋषि के साथ ब्याही गयी थी। इस समय बहुविवाह का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि एक पुरुष अनेक पत्नियाँ रख सकता था, लेकिन एक स्त्री एक ही समय में अनेक पति नहीं रख सकती थी।[20] विधवा स्त्री को दूसरा विवाह करने का अधिकार था वह प्रायः देवर से विवाह करती थी।

जीवन में विवाह काफी महत्त्वपूर्ण था। पुरुष के सुखी जीवन के लिए स्त्री आवश्यक मानी जाती थी। यज्ञ एवं हवन के लिए पुत्र आवश्यक था और पुत्र की प्राप्ति के लिए विवाह अनिवार्य था। बिना

वैवाहिक स्त्री के मनुष्य का जीवन अधूरा माना जाता था (शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10)। अविवाहित पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था (शतपथ ब्राह्मण, 5.1.6.10)। विवाह अपने ही वर्ग या वर्ण में होता था। अतः सजातीय विवाह प्रथा प्रचलित थी, लेकिन कहीं–कहीं अन्तर्जातीय विवाह भी देखने को मिलता था। उच्च वर्ण के पुरुष निम्न वर्ग की कन्या से विवाह कर सकते थे। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय पुरुष वैश्य की कन्या से विवाह कर सकते थे और वैश्य शूद्र कन्या से विवाह कर सकते थे। परन्तु शूद्र पुरुष उच्च वर्ण की कन्या से विवाह नहीं कर सकते थे। उत्तर वैदिक काल में विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित हुई, लेकिन सगोत्री विवाह नहीं होता था। प्रायः एक पत्नी रखने की व्यवस्था थी, जिससे स्त्रियों का सम्मान हो सके। फिर भी राजवंशों एवं उच्च वर्ण में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियों का उल्लेख है। बहुपत्नी विवाह प्रथा प्रचलित होने के कारण कुलीन वंश की विवाहित नारियों को अपनी सौतों की उपस्थिति के कारण अन्दर कष्ट सहने पड़ते थे। उनका जीवन कलहपूर्ण रहता था। इस सम्बन्ध में कुछ रानियों का भाग्य चमक जाता था, जो कुछ काफी दुखी रहती थी।

विभिन्न स्मृति–ग्रन्थों में स्त्रियों के कर्तव्यों और अधिकारों के विष्य में विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। मनु ने समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान नहीं दिया हैं उन्होंने वैदिक युग में प्रचलित स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उनका कहना था कि विवाह के पूर्व नारी की सुरक्षा की जिम्मेदारी पिता या भाई की होती है। विवाह के बाद यौवनावस्था में वह पति के नियन्त्रण में होती है और पति के न रहने पर वृद्धावस्था में वह पुत्र पर आश्रित होती है। विवाह के सम्बन्ध में स्मृतिकारों में मतभेद भी है। मनुस्मृति में बाल विवाह का समर्थन किया गया हैं इस समय कन्या के पिता द्वारा कन्यादान करते समय वर के पिता द्वारा धन लिया जाता था। इसका मनु द्वारा कई बार समर्थन भी किया गया है, लेकिन कुछ जगहों पर इसका विरोध भी हुआ हैं मनुस्मृति में उन्होंने लिखा है कि एक दास को भी अपनी कन्या का मूल्य नहीं लेना चाहिए।

याज्ञवल्क्य का कहना है कि नारी अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी हैं विभिन्न स्मृतियों में वर्णित स्त्रियों के अधिकारों, कर्तव्यों और दशाओं का अवलोकन करने से पता चलता है कि वैदिक युग की अपेक्षा स्मृतियों के युग में स्त्री की सामाजिक स्थिति खराब थी। वैदिक युग में नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त था, जो स्मृति युग में नहीं रह गया। महाकाव्य काल में पुत्री को संकट का मूल समझा जाता था (महाभारत 5.97.15–16)। वह अपने माता–पिता और पति तीनों के लिए संकट थी। इससे नारी की हीन दशा का संकेत मिलता है। लेकिन कहीं–कहीं कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि माता–पिता पुत्री को प्यार भी करते हैं। स्त्रियों की प्रतिष्ठा से देवता भी खुश रहते हैं। सीता, सावित्री, कुन्ती, दमयन्ती, द्रोपदी, उत्तरा आदि सम्मानित और प्रतिष्ठित स्त्रियाँ थीं। स्त्रियाँ गृहकार्य में दक्ष होने के साथ दर्शनशास्त्र की भी ज्ञाता थी, वे संगीत ओर नृत्य की भी शिक्षा ग्रहण करती थी।

समाज में स्त्रियों की दशा श्रेष्ठ थी, उनकी नैतिकता और आदर्श श्रेष्ठ थे। माता के रूप में शुरू से भी अधिक वे श्रेष्ठ थी (महाभारत, 1.196.15)। पत्नी के रूप में वहपति की अर्द्धांगिनी और श्रेष्ठ समझी जाती थी और गृहिणी के रूप में वह सभी सुखों का स्रोत मानी जाती थी।

वृहदारण्यक उपनिषद् में स्त्री शिक्षकों का उल्लेख मिलता है। याज्ञवल्क्य की पत्नी को ब्रह्म विद्या में बड़ी रुचि थी। बौद्धिक क्षेत्रों में स्त्रियाँ महत्वपूर्ण कार्यों में भाग लेती थी। दार्शनिकों की परिषद में गार्गी द्वारा भाषण दिये जाने का उल्लेख मिलता है। परिवार में अतिथि के आगमन को सौभाग्यसूचक तथा कृपास्वरूप माना जाता था। सामाजिक शान्ति, व्यवस्था तथा सहयोग के अनेक आदर्शों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[21]

महाभारत काल में बाल–विवाह की प्रथा प्रचलित हुई। अनुशासन पर्व में भीष्म ने कहा है कि तीस वर्ष की आयु का पुरुष दस वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है। इस समय नियोग प्रथा भी प्रचलित थी। पति की मृत्यु होने पर स्त्री देवर के साथ नियोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकती थी। रामायण काल में नारी जीवन उच्च आदर्शवादी तथा प्रतिष्ठित था। रामायण में कहा गया है– अनन्य रूपा पुरुषस्य द्वारा अर्थात पत्नी रूप में स्त्री पुरुष का अनन्य रूप है। महाभारत के अनुसार स्त्री–पुरुष की सर्वप्रिय सखा तथा अर्धांगिनी है। माता गुरूतरा भूमैः अर्थात् माता रूप में नारी भूमि से भी उच्च है। गुरूणाम चैव सर्वेषाम माता परमकौ गुरूः अर्थात् माता रूप नारी गुरू से भी श्रेष्ठ है। इन सभी उल्लेखों द्वारा नारी के सम्मान और आदर का पता चलता है।

सूत्रों में स्त्रियों की स्थिति का अनेक उल्लेख मिलता है। बोधायन तथा गौतम के अनुसार स्त्रियाँ यज्ञ के लिए स्वतन्त्र नहीं थीं। वे अपनी इच्छा से यज्ञ नहीं कर सकती थी।[23] वशिष्ठ ने स्त्रियों को सम्पत्ति के अन्तर्गत रखा है।[24] उन्होंने नारी की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया है। परन्तु इस आधार पर स्त्रियों की दशा को निरर्थक नहीं माना जा सकता है। नारी का विवाह युवावस्था में होना, उनका उपनयन, ब्रह्मचर्य, वेदों का अध्ययन, विशेष स्थिति में पति से तलाक एक पत्नी की प्रथा का होना आदि व्यवस्थाओं से यह माना जाता है कि स्त्रियों को समाज में पर्याप्त अधिकार, पद, सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गौतम के अनुसार माता के रूप में नारी का पद पिता और आचार्य से भी श्रेष्ठ है। वशिष्ठ के अनुसार यदि माता पतित है, तब भी उसका त्याग नहीं किया जा सकता है। बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार यदि कन्या का विवाह होते समय उसमें मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाय तो वह पश्चाताप किया जाना चाहिए।[25]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार जो पति अपनी पत्नी का त्याग बिना किसी कारण के कर देता है, वह पापी है। परन्तु धन सम्पन्न तथा राजाओं द्वारा अनेक पत्नियाँ रखी जाती थी। पुत्र प्राप्ति के लिए लोग दूसरा विवाह भी कर लेते थे। मृतक पति का दाह संस्कार करने के बाद पत्नी घर को लौट आती थी। इससे यह पता चलता है कि उस समय सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति थी। यदि पति परिव्राजक है या पतित है तो पत्नी उससे विवाह विच्छेद कर सकती थी।[26]

वैदिक धर्म में यज्ञ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परन्तु जैन धर्म में यज्ञ का स्थान मूर्तिपूजा ने ले लिया। देवताओं के समान जैन धर्म के तीर्थंकर की पूजा होने लगी। ईसा की प्रथम शताब्दी में जैन धर्म में परिवर्तन हुआ। यह धर्म दो भागों में विभाजित हो गया। एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बर सफेद वस्त्र धारण करते थे, जो पार्श्वनाथ के अनुयायी माने गये। रूढ़िवादी दिगम्बर कहलाये जो महावीर के अनुयायी माने गये। जैन धर्म में मूर्तिपूजा के प्रमाण मिलते हैं। इस धर्म के अनुयायी ऋषभदेव और महावीर की मूर्तियों को साकार मानकर उनकी पूजा करते हैं। जैन नारी समाज धार्मिक दृष्टि से गुप्तकाल काफी महत्वपूर्ण रहा है। इसी समय जैन धर्म का विस्तार हुआ है। जैन धर्म भी भक्तिवाद के प्रभाव में आने लगा। गुप्तकाल में सभी धर्मों को फलने–फूलने का समान अवसर मिला है। जैन धर्म में स्त्री–पुरुष को समान स्वतन्त्रता दी गयी और मनुष्य को कर्म के अधीन माना गया।

सन्दर्भ सूची–

1. शैलेन्द्र शर्मा एवं ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 42
2. पूर्वोक्त, पृ. 42–43
3. ऋग्वेद, 1/70/5
4. ऋग्वेद, 3/53/6 तथा 2/42/3
5. ऋग्वेद, 3/53/4
6. ऋग्वेद, 7/1/11–12

7. मांस का प्रयोग प्रायः यज्ञीय पशुओं जैसे भेड़–बकरी का होता था और गाय को वध के अयोग्य माना गया। –ऋग्वेद 8/10/1–5
8. पीतासो युध्यन्ते दुर्भदासो स सुरायाम। –ऋग्वेद, 8/2/12
9. शैलेन्द्र शर्मा एवं ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 72
10. ऋग्वेद, 10/86/10
11. अथर्ववेद 10/1/3
12. ऋग्वेद 10/149/4
13. ऋग्वेद 12/85/23 और 24, 26, 42, 47 इसमें पति–पत्नी के मध्य वार्ता है।
14. यज्ञ करने वाले ब्राह्मण मांस न खायें। –ऋग्वेद 10/27/2
    तपस्वी को मांस नहीं खाना चाहिए। –शतपथ ब्राह्मण 14/1/1/29
15. ऋग्वेद 10/34
16. ऐतरेय ब्राह्मण 7/15 तथा कौशी. ब्राह्मण 2/9
17. ऋग्वेद 10/30/6
18. ऋग्वेद 10/27/12
19. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विदन्ते पतिम।
20. ऐतरेय ब्राह्मण 3/23
21. शैलेन्द्र शर्मा एवं ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 90
22. पूर्वोक्त, पृ. 109
23. बोधायन, 2/50–52
24. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
    रक्षन्ति स्थविरै पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति। वशिष्ट, 1, 2
25. शैलेन्द्र शर्मा एवं ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 115
26. पूर्वोक्त

Role of Law in Women Empowerment: A Sociological Analysis

Neha Kumari
UGC-NET, M.A. Sociology
Ranchi University, Ranchi
Jharkhand

Abstract

The role of law in advancing women's empowerment represents a complex interplay between constitutional ideals, legislative reforms, judicial interventions, and sociocultural realities. Present article explores how the legal framework in India has functioned both as a protective mechanism and as a transformative force in redefining gender relations. Beginning with constitutional provisions such as Articles 14, 15, 16, 39, and 51A, the discussion demonstrates how equality, non-discrimination, and justice have been positioned as guiding principles for women's rights. Legislative measures including the Dowry Prohibition Act, the Protection of Women from Domestic Violence Act, the Sexual Harassment of Women at

Workplace Act, and criminal law amendments are examined for their role in addressing systemic injustices. From a sociological standpoint, the article highlights how laws influence social attitudes, confront entrenched patriarchal traditions, and shape institutional practices. It also identifies challenges such as limited awareness, stigma, rural–urban disparities, and weak enforcement that often hinder effective implementation. By combining legal analysis with sociological perspectives, the article underscores that empowerment cannot be achieved by legal frameworks alone but requires cultural transformation, educational advancement, and institutional sensitivity. The conclusion emphasizes that true empowerment lies in bridging the gap between legal provisions and social realities, enabling women to exercise their rights with dignity, autonomy, and agency.

Keywords: *Women's Empowerment, Indian Constitution, Legal Reforms, Gender Equality*

Introduction

The discourse on women's empowerment, both globally and nationally, must be understood not as a mere programmatic agenda but as a profound social transformation that challenges historically entrenched hierarchies of gender. On the global stage, empowerment has been conceptualized as a multidimensional process through which women acquire agency, autonomy, and equal access to resources, opportunities, and decision-making power. International conventions and policy frameworks such as CEDAW, the Beijing Platform for Action, and the Sustainable Development Goals represent milestones in institutionalizing gender equality within the framework of global governance[ix]. Yet, these initiatives also reveal the paradox of contemporary societies: despite legal frameworks and international commitments, women across the world continue to experience systemic marginalization, wage disparities, occupational segregation, and pervasive gender-based violence. This contradiction points to the critical need for examining empowerment not only as a legal or political goal but also as a sociological process deeply embedded within cultural and structural realities. In India, the trajectory of women's empowerment reflects similar tensions between progressive legal frameworks and enduring patriarchal structures. The Constitution established a strong normative basis for equality, ensuring legal protection against discrimination and affirming the principle of equal opportunity. Post-independence legislative measures addressing dowry, domestic violence, inheritance, and workplace harassment have sought to operationalize these constitutional ideals. However, the social reception and implementation of such laws have been far from uniform. Empirical evidence suggests that the transformative potential of legal interventions is often constrained by the persistence of patriarchal norms, lack of awareness, economic dependency, and intersecting inequalities of caste, class, and region. In many rural and marginalized contexts, the gap between law in theory and law in practice remains particularly stark, highlighting how socio-cultural forces mediate the effectiveness of legal reforms.

Thus, women's empowerment in both global and Indian contexts cannot be reduced to a question of legislation alone. While law provides a necessary framework of rights and protections, its impact is contingent upon the broader social structures within which it operates. A purely legalistic understanding of empowerment risks ignoring the social, cultural, and

economic barriers that continue to curtail women's agency. From a sociological perspective, empowerment must therefore be viewed as a contested process, where law, society, and culture interact dynamically sometimes enabling progress, at other times reinforcing hierarchies. This critical lens underscores the need to interrogate not only what laws exist, but also how they are implemented, interpreted, and experienced in everyday life.

The concept of empowerment is widely used in academic and policy discourse, yet it remains complex and multidimensional[x]. At its core, empowerment refers to the process by which individuals or groups gain the capacity to make choices, exercise control over their lives, and influence the social, political, and economic structures that shape their existence. In the context of women, empowerment is not merely about granting formal rights but about enabling substantive agency where women can actively participate in decision-making, challenge discriminatory norms, and access opportunities that lead to self-reliance and dignity. Empowerment is often analysed through various dimensions: economic, political, educational, social and psychological. From a sociological standpoint, empowerment is both an outcome and a process, where structural inequalities must be dismantled for individuals to realize their full potential.

The concept of law, on the other hand, represents the institutional framework through which societies regulate behaviour, resolve conflicts, and establish norms of justice and equality. Law is not limited to statutes and legal codes it also encompasses constitutional principles, judicial interpretations, and policies that influence everyday life. From a sociological perspective, law is both a reflection of social values and a tool for social change. It provides a formal structure for addressing inequalities, protecting rights, and institutionalizing justice. In the context of women's empowerment, law functions as a mechanism to challenge entrenched patriarchal structures by criminalizing practices such as dowry, child marriage, and domestic violence, while simultaneously affirming rights related to education, employment, and political participation. However, law also operates within the constraints of society its effectiveness depends on awareness, accessibility, enforcement, and the willingness of social institutions to embrace change. So, while empowerment emphasizes agency and transformation from within, law represents the external institutional mechanism that seeks to facilitate and safeguard this process. When viewed together, the two concepts highlight the intricate relationship between individual autonomy and structural reform: empowerment requires both internal capacity-building and external legal support, while law attains its true significance only when it translates into lived empowerment for individuals.

The relevance of examining the role of law in women's empowerment from a sociological perspective lies in understanding that law, while formally codified and universally binding, does not operate in isolation from society. Sociology emphasizes that social institutions, cultural norms, and power relations significantly influence how laws are interpreted, implemented, and experienced by individuals. In the case of women's empowerment, the presence of progressive legal provisions such as constitutional guarantees, protective legislations, and gender-sensitive policies does not automatically ensure equality. Instead, the effectiveness of

these laws is mediated by the social environment in which they are embedded. Issues like patriarchal family structures, unequal access to education and resources, and cultural stigmas often restrict women from utilizing their legal rights. Thus, sociology provides the analytical tools to study not just the existence of laws but their social consequences.

From a sociological lens, law is both a mechanism of social control and a potential instrument of social change. On one hand, legal norms regulate behaviour and maintain order on the other, they can be transformative by challenging entrenched inequalities and legitimizing new patterns of social relations. In the context of women, laws against practices such as child marriage, domestic violence, and workplace harassment symbolize more than legal prohibitions; they embody a societal shift towards recognizing women as autonomous individuals with rights equal to men. The persistence of gender-based violence, underreporting of crimes, and reluctance to challenge patriarchal authority indicate that the gap between law on paper and law in practice remains wide. Sociology thus helps us interrogate why this gap exists, how social structures perpetuate it, and what forms of collective action are necessary to bridge it. Likewise, the sociological significance of the topic also rests on its multidimensionality. Empowerment is not confined to the legal or political domain it intersects with class, caste, religion, and rural-urban divides. For instance, a law guaranteeing workplace equality may benefit urban, educate women but remain inaccessible to women in informal or agrarian sectors. Similarly, marginalized women may face double or triple layers of discrimination that limit the reach of legal safeguards. A sociological analysis captures these complexities by situating women's empowerment within broader structures of inequality, highlighting that empowerment is not only a matter of legal reform but also of social transformation.

Role of Law in Women's Empowerment

The role of law in women's empowerment is both foundational and transformative. Legal provisions serve as the bedrock upon which gender equality and women's rights are formally recognized and enforced in society. While empowerment is essentially a multidimensional process involving social, cultural, economic, and political dimensions, law provides the institutional framework through which these aspirations can be safeguarded and legitimized. In the Indian context, the constitutional framework, along with specific legal enactments and judicial pronouncements, reflects a conscious effort to dismantle patriarchal structures and advance gender justice.

Constitutional Provisions

The Indian Constitution provides a comprehensive foundation for women's empowerment, embedding principles of equality, justice, and non-discrimination at the heart of the legal order. Among its provisions, Articles 14, 15, 16, 39, and 51A are of particular significance. Article 14 embodies the doctrine that every individual is entitled to equality before the law and to the equal protection of legal provisions without any form of discrimination. For women, this provision guarantees that the state shall not deny equality in any sphere be it political participation, employment, education, or access to justice. Sociologically, this article challenges the deeply entrenched patriarchal notion that women occupy a secondary status in

society. However, while the provision establishes formal equality, substantive equality often remains elusive because social hierarchies and gendered norms continue to constrain women lived experiences.

Article 15 safeguards individuals by forbidding any form of discrimination based on religion, race, caste, sex, or place of birth, thereby promoting inclusiveness and social justice[xi]. Importantly, Article 15(3) empowers the state to make special provisions for women and children, thereby recognizing that formal equality is insufficient without affirmative measures. This article legitimizes gender-sensitive policies such as reservation of seats for women in local governance, scholarships for girls, and maternity benefits. From a sociological standpoint, it demonstrates the state's acknowledgment of historical disadvantages faced by women and the need for compensatory mechanisms to create a level playing field.

Article 16 ensures equality of opportunity in public employment, a crucial area of empowerment[xii]. Women's inclusion in civil services, judiciary, and other state institutions has been significantly facilitated by this provision. However, sociological realities indicate that despite constitutional safeguards, women remain underrepresented in leadership roles due to glass ceiling effects, workplace biases, and the dual burden of professional and domestic responsibilities.

Article 23 of the Indian Constitution addresses the abolition of human exploitation by explicitly prohibiting practices such as trafficking in human beings, begar, and other forms of forced labor. This provision is not confined to any particular community or class but extends universally, ensuring protection for vulnerable groups, including women, who have historically been subjected to exploitation under social, economic, and patriarchal structures. For women, this article carries profound significance as it establishes a constitutional shield against coercive practices that undermine personal liberty and dignity. It also empowers the State to legislate against exploitative customs and practices that perpetuate gender-based subjugation, thereby reinforcing the broader framework of women's empowerment[xiii].

Article 24 complements this protection by prohibiting the employment of children below the age of fourteen in factories, mines, or hazardous occupations. Although it directly concerns child rights, its implications are deeply connected with women's empowerment. The restriction addresses the cycle of poverty and exploitation that disproportionately affects women and children in marginalized communities[xiv]. By curbing child labor, this provision indirectly reduces the burden on women who often suffer from intergenerational cycles of deprivation. It also supports women's agency by fostering a legal environment in which children are safeguarded, thereby enabling mothers to participate more actively in social and economic life without the pressure of child exploitation.

Article 39, under the Directive Principles of State Policy, directs the state to ensure that men and women equally have the right to adequate means of livelihood and that there is equal pay for equal work[xv]. Although these principles are non-justiciable, they provide a normative guide for governance and policymaking. For example, laws concerning equal remuneration and maternity benefits derive legitimacy from Article 39. The sociological implication is that the

state accepts responsibility for promoting structural equality, although its actual implementation often encounters resistance from employers and institutions.

Article 42 emphasizes the responsibility of the State to secure humane working conditions and provide maternity relief[xvi]. As part of the Directive Principles of State Policy, it reflects a welfare-oriented vision aimed at protecting the dignity and health of workers, with special consideration for women. Its relevance to women's empowerment lies in the recognition of their dual roles within society and the need for institutional safeguards that prevent workplace discrimination linked to maternity. By mandating provisions such as maternity benefits and gender-sensitive labor policies, Article 42 advances economic participation and secures women's rights within the workforce. In essence, it contributes to the broader framework of gender justice by ensuring that motherhood does not become a barrier to equality, thereby reinforcing the constitutional commitment to social justice and empowerment.

Article 51A, which enumerates the Fundamental Duties, obligates every citizen to renounce practices derogatory to the dignity of women[xvii]. While often overlooked, this provision holds sociological significance because it moves beyond state responsibility and places the burden of ensuring gender equality on citizens themselves. It implicitly acknowledges that legal reforms alone cannot transform society without active participation and attitudinal change among people.

Taken together, these constitutional provisions lay a strong foundation for gender equality. Yet, sociology reminds us that law on paper and law in practice diverge considerably. The persistence of gender-based violence, wage disparity, and underrepresentation in politics suggests that while the Constitution articulates progressive ideals, societal transformation remains gradual and contested.

Major Legal Acts and Reforms

The constitutional framework has been complemented by a series of legislative enactments aimed at addressing specific forms of gender-based discrimination and violence. These laws illustrate how the Indian legal system has progressively sought to empower women by criminalizing harmful practices, safeguarding rights, and providing remedies against injustices.

Hindu Marriage Act, 1955

The Hindu Marriage Act, 1955 serves as a significant instrument in promoting women's empowerment by addressing historical inequalities within marriage and personal relationships. The Act codifies provisions related to monogamy, divorce, maintenance, and judicial separation, enabling women to assert autonomy and protect their rights against patriarchal constraints[xviii]. By prohibiting polygamy and allowing women to seek divorce on grounds such as cruelty, desertion, and adultery, it provides legal mechanisms to challenge exploitative marital practices. Maintenance and support provisions further ensure economic security, reinforcing the principle of social justice. Beyond legal protection, the Act influences societal attitudes by legitimizing women's agency and fostering greater recognition of gender equality within the family structure. In the broader context of empowerment, it exemplifies how law functions not only as a

regulatory framework but also as a tool for social transformation, contributing to the realization of women's constitutional and human rights in India.

Hindu Succession Act, 1956

The Hindu Succession Act, 1956 represents a transformative step in securing women's property rights and promoting economic empowerment within Indian society. The Act codifies the rules of inheritance and succession among Hindus, ensuring that women daughters, widows, and mothers are entitled to inherit ancestral and self-acquired property on an equal basis with male family members[xix]. By granting legal recognition to women's ownership and control over property, the Act challenges traditional patriarchal norms that historically restricted women's access to economic resources. This legal framework not only provides financial security but also strengthens women's agency, enabling them to participate more fully in social and economic decision-making. In the context of women's empowerment, the Hindu Succession Act exemplifies how legislation can act as a powerful instrument for equality, dismantling structural barriers and facilitating women's independence, dignity, and social status within both the family and society at large.

Dowry Prohibition Act, 1961

The Dowry Prohibition Act was a landmark legislation that sought to address one of the most pervasive social evils in Indian society. Dowry, deeply embedded within patriarchal traditions, not only commodified women in marriage but also exposed them to harassment, violence, and in extreme cases, death[xx]. The Act criminalized the giving and taking of dowry, thereby challenging this entrenched custom. From a sociological perspective, the Act was significant as it symbolized the state's intervention into private family practices, which were historically shielded from legal scrutiny. So that, the limitations of the Act are equally important. Despite legal prohibition, dowry continues in various forms, often disguised as gifts or voluntary transfers. The persistence of dowry demonstrates that legal reforms alone cannot eradicate practices rooted in social expectations and economic transactions. Moreover, underreporting of dowry-related crimes reflects women's fear of social stigma, lack of economic independence, and mistrust in legal institutions. Thus, while the Act marked an important step, its sociological impact remains partial and contested.

Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986

The Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986 is a significant legal measure aimed at protecting women from exploitation, objectification, and derogatory portrayal in media and advertising[xxi]. The Act prohibits the indecent representation of women through visual, print, or electronic media, recognizing that such portrayals reinforce gender stereotypes, perpetuate discrimination, and undermine women's dignity. By criminalizing the publication or distribution of materials that depict women in a sexually exploitative or derogatory manner, the law seeks to create a social environment that respects women's rights and promotes gender equality. In the context of women's empowerment, this legislation plays a crucial role by addressing cultural and social dimensions of gender-based subordination. It not only safeguards women's moral and psychological well-being but also influences societal attitudes, discouraging

practices that objectify or demean women. The Act demonstrates how law can operate as both a protective and transformative tool, reinforcing the constitutional vision of equality, dignity, and respect for women in Indian society.

Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005

The Protection of Women from Domestic Violence Act (PWDVA) expanded the legal understanding of violence within the household. Unlike earlier laws that narrowly defined domestic abuse, the PWDVA recognized physical, emotional, sexual, and economic abuse as forms of violence. It granted women the right to seek protection orders, residence orders, and monetary relief, thus addressing the intersection of personal safety and economic security. Sociologically, the Act was groundbreaking because it acknowledged that the private sphere of the family long considered beyond the purview of law is a site of power imbalance where women are vulnerable. By intervening in the domestic sphere, the law challenged patriarchal assumptions that violence within families is a "private matter." Nevertheless, challenges remain. The effectiveness of the Act is hindered by inadequate awareness, lack of trained protection officers, and slow judicial processes. Furthermore, many women hesitate to report abuse due to social stigma, fear of family breakdown, and economic dependency. This reveals the complex interplay between law and social norms: while law can create protective frameworks, its impact depends on women's ability to access and utilize these mechanisms without facing social backlash.

Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013

The Sexual Harassment of Women at Workplace Act emerged from growing recognition of gendered vulnerabilities in professional spaces. Building upon the Supreme Court's Vishaka Guidelines (1997)[xxii], the Act mandated the establishment of Internal Complaints Committees in organizations, outlined procedures for grievance redressal, and defined sexual harassment in broad terms to include verbal and non-verbal conduct. From a sociological standpoint, the Act represented a shift in recognizing that women's empowerment in workplaces cannot be achieved without addressing structural power imbalances. It provided a framework for ensuring safe working environments, which are essential for women's participation in economic life. However, the Act's limitations highlight the tension between law and practice. Many organizations, particularly in the informal sector, have failed to implement its provisions. Women often fear retaliation, character assassination, or career stagnation if they file complaints. The underreporting of workplace harassment reflects both structural and cultural barriers, demonstrating that legal empowerment remains incomplete without social support and institutional accountability.

Amendments in Criminal Laws (Criminal Law (Amendment) Act, 2013)

The Criminal Law (Amendment) Act, 2013, was a watershed moment in India's legal history, prompted by the nationwide outrage following the brutal Delhi gang rape of 2012. The amendment broadened the definition of sexual offences, introduced stringent punishments for rape and assault, criminalized stalking and voyeurism, and emphasized the importance of victim

protection. It marked a legal acknowledgment of the urgency of addressing gender-based violence in public spaces. Sociologically, the amendment symbolized a moment of collective consciousness where public outrage translated into legal reform. It reflected the role of social movements, media, and civil society in shaping legislative responses to gender injustices. At the same time, the Act revealed the limitations of reactive law-making: while stricter punishments were introduced, the deeper structural issues such as police insensitivity, delayed trials, and the stigma attached to survivors remain largely unaddressed. The amendment thus demonstrates that while law can act as a catalyst for change, it cannot alone transform the social conditions that perpetuate violence against women.

The cumulative impact of constitutional provisions and legislative reforms demonstrates that law is indispensable in advancing women's empowerment. So far, from a sociological perspective, it becomes clear that empowerment through law is not a linear or automatic process. Legal reforms create the necessary framework for rights and protections, but their effectiveness is mediated by factors such as awareness, access to justice, institutional efficiency, and societal attitudes. The persistence of dowry, domestic violence, workplace harassment, and sexual offences underscores that legal provisions must be accompanied by cultural transformation, education, and economic empowerment to achieve substantive equality. Additionally, law interacts with intersecting dimensions of identity such as caste, class, and rural-urban divides. Women from marginalized communities often face multiple layers of discrimination that limit their ability to access legal remedies. Thus, a purely legalistic understanding of empowerment risks overlooking these complexities. A sociological analysis highlights that law, while necessary, is not sufficient; true empowerment requires both structural reforms and grassroots social change. The role of law in women's empowerment is undeniably crucial. Constitutional guarantees and gender-specific legislations have provided women with formal recognition of their rights and protection against injustices. However, the translation of these rights into lived realities is mediated by deep-rooted social norms, economic inequalities, and institutional barriers. Law serves as a foundation, but its transformative potential depends on the synergy between legal reforms and sociological change. Therefore, a comprehensive understanding of women's empowerment necessitates analysing not only the legal frameworks but also the social contexts within which they operate. Empowerment, in this sense, emerges as a dynamic process one that requires the constant negotiation between law, society, and culture.

Sociological Analysis

The empowerment of women cannot be understood solely through legal texts or judicial pronouncements. It requires a deeper sociological examination of how legal provisions interact with everyday social practices, cultural traditions, and power hierarchies. Law as an institution has the potential to reshape societal attitudes, but its impact depends on the broader structures within which it operates. This analysis seeks to explore how laws influence perceptions of women, the gap between reform and practice, the interaction of legal frameworks with entrenched cultural norms, and the balance of progress and persistent limitations.

Influence of Laws on Social Attitudes Towards Women

Legal frameworks in India have consistently articulated the principles of equality and non-discrimination. Provisions within the Constitution and various gender-specific enactments convey a strong message that women are entitled to dignity, security, and participation in public life. These formal declarations hold symbolic significance, shaping collective consciousness by setting standards of acceptable behaviour. For instance, legislation addressing domestic violence or workplace harassment conveys that such practices are not private matters but public wrongs requiring intervention. When laws declare equality, they redefine women not merely as dependents within households but as individuals possessing rights and agency. This reorientation alters the discourse surrounding women's roles, encouraging wider acceptance of their participation in education, labour markets, and governance. Over time, such recognition fosters gradual shifts in perception, particularly among younger generations who internalize equality as a normative value. Thus, law acts as a cultural instrument that legitimizes women's autonomy, dislodging longstanding assumptions of subordination. However, the influence of law on social attitudes is not uniform. In many contexts, communities interpret legislation through the lens of pre-existing customs and resist changes that challenge patriarchal authority. For example, laws banning dowry or child marriage have existed for decades, but the persistence of these practices indicates that legal declarations alone cannot eradicate deeply embedded beliefs. Sociologically, this illustrates the tension between formal equality and social reproduction of inequality. Laws may redefine ideals, but actual transformation requires collective acceptance, education, and persistent engagement with everyday practices.

Legal Reforms and the Problem of Implementation

India has enacted progressive laws targeting issues such as sexual harassment, domestic violence, trafficking, and gender discrimination in employment. These reforms signal the state's intent to create a just society. Still, the effectiveness of such laws depends not on their existence but on mechanisms of enforcement. A recurring challenge lies in the gap between legislative intent and practical application. Institutions responsible for implementing gender-sensitive laws often face shortages of resources, inadequate training, and bureaucratic inefficiency. For instance, the Domestic Violence Act of 2005 mandates protection officers and shelter homes, but many states struggle to provide sufficient infrastructure. Similarly, workplace harassment committees sometimes exist only on paper, discouraging women from seeking redress. In criminal justice, delays in investigation and trial processes often dishearten victims, who eventually withdraw complaints. This divergence between legal reform and social reality reveals a critical sociological insight empowerment cannot be legislated into existence. It requires robust institutional capacity, accountability, and community awareness. Without these elements, laws risk becoming symbolic instruments rather than transformative tools. Implementation challenges also highlight the persistence of power imbalances, where victims from marginalized backgrounds often face compounded barriers in accessing justice compared to women from more privileged groups.

Intersection of Law with Culture, Tradition, and Patriarchy

The relationship between law and culture in India remains complex. On the one hand, law seeks to challenge oppressive traditions, such as dowry, child marriage, or discriminatory inheritance practices. On the other hand, many customs are deeply entrenched in the collective consciousness and are often defended in the name of religion or community identity. When legal frameworks directly oppose traditional norms, resistance from conservative sections often emerges, creating friction between modern ideals and inherited practices. Patriarchy functions not only as an individual mindset but also as a structural system embedded within family, economy, and politics. This makes legal intervention a challenging process, as patriarchal structures adapt themselves to circumvent formal equality. For example, even when women inherit property under legal provisions, families often exert social pressure on them to relinquish their share. Similarly, despite prohibitions on dowry, it continues under the guise of "gifts." These patterns demonstrate how cultural practices absorb and reinterpret law to sustain existing hierarchies. From a sociological standpoint, this intersection underscores that women's empowerment cannot be achieved through law alone. Transformation must involve questioning patriarchal norms, reshaping community attitudes, and creating spaces where women's choices are respected. Law provides legitimacy to this struggle, but cultural negotiation determines the pace and depth of change.

The sociological analysis of women's empowerment through law reveals that legislation is a necessary but insufficient instrument of social transformation. Laws influence attitudes by articulating ideals of equality, yet they encounter resistance when confronted with entrenched cultural traditions. Implementation challenges expose the gap between normative commitments and institutional realities. While progress is evident in many areas, structural patriarchy continues to dilute the impact of reforms. From a sociological perspective, law should be viewed as both a symbol of aspiration and a catalyst for gradual change. It legitimizes women's rights, creates opportunities for collective mobilization, and provides tools to challenge discrimination. At the same time, empowerment requires sustained efforts in education, community engagement, and institutional reform. Only through the combined strength of legal frameworks and societal transformation can the vision of gender equality move closer to realization.

Challenges and Gaps

The effectiveness of law in advancing women's empowerment is deeply connected with its accessibility, implementation, and social reception. While progressive legislation and constitutional guarantees exist, their impact remains uneven because of structural deficiencies and sociocultural barriers. A sociological analysis reveals that the pathway from legal recognition to practical empowerment is not linear but shaped by obstacles that restrict women from realizing their rights in daily life. These challenges include inadequate awareness of legal remedies, the weight of social stigma, systemic weaknesses in enforcement, and sharp rural–urban disparities in access to justice.

Lack of Awareness and Accessibility of Legal Remedies

One of the most pressing issues in the legal empowerment of women is the limited knowledge about existing rights and mechanisms for redress. Many women, particularly in

marginalized communities, are unaware of constitutional safeguards or specific legislations dealing with domestic violence, workplace harassment, dowry prohibition, or equal inheritance. The absence of widespread legal literacy diminishes the reach of these frameworks, leaving women vulnerable to exploitation. Accessibility also remains a critical concern. Courts, police stations, and legal aid centres are concentrated in urban spaces, while women in rural or tribal areas struggle to approach such institutions. Even when services are available, complicated procedures and the use of technical language discourage participation. Legal aid systems, though mandated, are often underfunded and understaffed, reducing their ability to effectively guide victims. The gap between law in principle and law in practice thus widens when individuals lack both knowledge and institutional support. This situation reflects a sociological reality empowerment requires not only the presence of rights but also the ability to claim them. Without awareness, rights remain abstract ideals rather than lived experiences. Efforts to expand literacy programs, community-based awareness campaigns, and localized legal aid mechanisms become essential in bridging this gap.

Social Stigma and Fear of Retaliation

The enforcement of women-cantered laws is severely constrained by the stigma associated with reporting violations. In many communities, women who approach courts or police stations are labelled as disobedient or dishonourable, facing judgment not only from society but often from their own families. Fear of retaliation further discourages victims from seeking justice. Instances of harassment, threats, or violence against women who pursue legal remedies are common, reinforcing the perception that silence is safer than resistance. This culture of silence is deeply rooted in patriarchal social structures where honour is tied to women's behaviour, and any public disclosure of violence or harassment is seen as a source of shame. Families often pressure victims into compromise, fearing damage to social reputation. As a result, crimes such as domestic violence or sexual harassment remain underreported, and perpetrators continue without accountability. From a sociological lens, the weight of stigma functions as a mechanism of social control, maintaining traditional hierarchies despite progressive legal reforms. For empowerment to take meaningful shape, efforts must aim not only at legal protection but also at dismantling these deeply internalized notions of honour and obedience that restrict women from exercising their rights.

Implementation Issues: Corruption, Procedural Delays, and Insensitivity

Even when women overcome barriers of awareness and stigma, the implementation of legal provisions presents another significant challenge. Corruption within law enforcement agencies and judicial systems undermines trust in institutions. Bribery and favouritism often determine how quickly or seriously a case is addressed, creating unequal access to justice. Those with financial resources or social influence secure favourable outcomes, while marginalized women remain sidelined. Procedural delays are another major obstacle. Lengthy investigations, adjournments, and backlogged courts prolong the legal process, forcing victims to endure extended periods of uncertainty. The stress of long litigation often discourages women from pursuing cases to conclusion, leading many to withdraw complaints. In such circumstances,

justice delayed becomes justice denied, eroding faith in the legal system. Equally problematic is the insensitivity of officials toward women's issues. Police personnel may trivialize complaints of harassment or domestic violence, encouraging reconciliation rather than filing charges. Courtroom environments often lack sensitivity, subjecting victims to hostile questioning and character judgment. These experiences reinforce gender stereotypes rather than challenge them, diminishing the empowering potential of legal frameworks. Sociologically, such implementation failures highlight how institutions reflect and reproduce existing hierarchies. Unless institutional culture undergoes reform, the promise of gender equality embedded in laws remains compromised. Effective training, accountability mechanisms, and gender-sensitive practices within enforcement agencies are crucial to overcome these systemic flaws.

Rural–Urban Divide in Legal Protection

Disparities between rural and urban areas create another significant challenge in the role of law in women's empowerment. Urban women often have better access to legal institutions, awareness programs, and support networks, while rural women encounter multiple barriers ranging from geographical isolation to lack of infrastructure. Police stations, courts, and legal aid clinics are typically located in district headquarters, requiring rural women to travel long distances, incurring both financial and social costs. In rural contexts, social norms are often more rigid, reinforcing traditional gender roles and discouraging women from asserting their rights. Practices like child marriage or dowry continue in many rural communities despite legal prohibitions, with violations rarely reported or addressed. Even when cases are filed, local power structures, such as caste hierarchies or panchayat decisions, override formal legal systems. In contrast, urban women, though not free from discrimination, generally find stronger institutional backing and greater societal acceptance of legal redress. This rural–urban divide highlights the uneven geography of empowerment, where location significantly determines access to justice. It also underscores the necessity of context-specific strategies, such as mobile legal clinics, village-level awareness campaigns, and community-based mediation, to ensure that the benefits of legal reforms extend beyond metropolitan centres.

The challenges and gaps in the role of law in women's empowerment underscore the complexity of translating formal equality into lived realities. Lack of awareness and accessibility restrict many women from even approaching the legal system. Stigma and fear of retaliation silence those who might otherwise seek redress. Implementation failures caused by corruption, delays, and insensitivity weaken institutional credibility. Rural–urban disparities further intensify inequalities in access to justice. A sociological perspective reveals that these obstacles are not isolated administrative flaws but are rooted in broader power relations, cultural norms, and structural inequalities. Law has immense potential to act as a catalyst for empowerment, but without parallel efforts to address awareness, institutional reform, and social attitudes, its transformative promise remains limited. Bridging these gaps requires sustained collaboration between state institutions, civil society, and communities to create an environment where women can exercise their rights without fear or restriction. Only when these challenges are systematically addressed can the vision of gender justice become a shared social reality.

Conclusion

The role of law in shaping women's empowerment illustrates both its strength and its limitations. Legal frameworks in India have provided a structural base for equality, offering constitutional guarantees and statutory protections that seek to dismantle discrimination and gender-based injustices. These measures, supported by judicial interpretation, have widened the scope of women's rights and contributed to a gradual transformation of societal perceptions. At the same time, empowerment cannot be reduced to the presence of legal safeguards alone. Persistent barriers such as lack of awareness, stigma, administrative inefficiency, and deep-rooted patriarchal traditions restrict the capacity of women to fully access and benefit from these provisions. A sociological view highlights that empowerment requires more than formal entitlements; it calls for shifts in cultural attitudes, community practices, and institutional behaviour. Laws acquire significance when they change everyday realities, encourage women to exercise agency, and foster environments that accept equality as a lived practice. The true measure of empowerment lies in bridging the gap between legal rights and their practical realization. Sustainable progress will depend on comprehensive strategies that integrate law with education, awareness programs, institutional sensitivity, and grassroots engagement. Empowerment becomes meaningful when women not only hold legal recognition but also the confidence, autonomy, and supportive structures necessary to claim those rights without fear or constraint. Law provides the framework, but the transformation of society into an equitable space requires collective commitment, continuous reform, and cultural acceptance of women as equal partners in every domain of life.

References: -

[i]Hiremath, Sumanth, S. (2021), Women Empowerment In The 21st Century: A Sociological Perspective, Blue Diamond Publishing, Chattisgarh, Pg-08-12

[ii]. Banu, A,.Rajina (2020), Indian Feminism: Theory and Practice, Krishna Publication House, Gujrat, Pg-18-27

[iii]. Sahay, Sushama (1998), Women and Empowerment: Approaches and Strategies, Discovery Publishing House, New Delhi, Pg-34-38

[iv]. Yadav, Hridai, Ram (2015), Women Empowerment (Volume 1), Concept Publishing Company Pvt. Limited, New Delhi, Pg-28-41

[v]. Ray, Kasturi, Bhadra (2016), Status Of Women Migrants, Smriti Publishers, West Bengal, Pg-110-119

[vi]. Kak, Manju, Tripathy, Prajnashree, Lal, Manjula (2007), Whose Media? a Woman's Space: The Role of the Press in Projecting the Developmental Needs of Women, Concept Publishing Company, New Delhi, Pg-62-92

[vii]. Latha, A.P., Chaaru, Emimah, S. (2023), Women Empowerment in Nation Building, Shanlax Publications, Tamilnadu, Pg-54-59

[viii]. Kumar, Ravinder (2025), A Paradigm Change in Women's Empowerment Role of Leadership Innovation and Technology Adoption, Alborear (OPC) Pvt. Ltd., Maharashtra, Pg-08-12

[ix]. Bhukta, Anindya, Hazra, Somnath (2020), Sustainable Development Goals: An Indian Perspective, Springer International Publishing, Switzerland, Pg-82-84

[x]. Gandhi, Monica, Passano, Paige, Dworkin, Shari (2017), Women's Empowerment and Global Health A Twenty-First-Century Agenda, University of California Press, U.S., Pg-19-21

[xi]. Murugan, K.R. (2019), Safety And Security For Women, MJP Publisher, Tamilnadu, Pg-94-96

[xii]. Boraian, M. P. (2008), Empowerment of Rural Women: The Deterrents & Determinants, Concept Publishing Company, New Delhi, Pg-19

[xiii]. Sinha, Udai, Prakash (2015), Exploring the Engagement and Empowerment of Women: Multidisciplinary Perspectives, Concept Publishing Company Pvt. Limited, New Delhi, Pg-76

[xiv]. Dadhich, Vishnupriya (2025), Indian Constitution : A pillar of Women Empowerment, Chyren Publication, Haryana, Pg-86-87

[xv]. Kumar, Brijesh (2024), Empowering Women: Strategic Approaches To Gender Equality, Uttkarsh Prakashan, Uttar Pradesh, Pg-14

[xvi]. Kumar, Brijesh (2024), Empowering Women: Strategic Approaches To Gender Equality, Uttkarsh Prakashan, Uttar Pradesh, Pg-15

[xvii]. Prasanna, S, Shah, Raj, Vyas, Varsha, Kolekar, Yogesh (2025), Women's Rights and Legal Reforms, Institute of Legal Education, Tamilnadu, Pg-93

[xviii] Ram, K. V. (2016), Indian Women Empowerment from Harappa-Mohenjo Daro Period to Modern Time, Niruta Publications, Karnataka,Pg-36-38

[xix]. Sinha, Udai Prakash (2015), Exploring the Engagement and Empowerment of Women: Multidisciplinary Perspectives, Concept Publishing Company Pvt. Limited, New Delhi, Pg-96

[xx]. Shukla, Aradhana, Bano, Nazish (2019), Social Justice Among the Women, Concept Publishing Company, New Delhi, Pg-130-134

[xxi] Sarkar, Siuli (2016), Gender Disparity in India: Unheard Whimpers, Prentice Hall India Pvt., Limited, U.S., Pg-316

[xxii]. Chauhan, Abha, Niumai, Ajailiu (2022), Gender, Law and Social Transformation in India, Springer Nature, Singapore, Pg-126-128